उड़ियो पंख पसार

प्रवचन-क्रम

1. श्रद्धा के पंख...2
2. क्रांति का आह्वान...21
3. संन्यासः जीवन का महारास..42
4. तुम बहते जाना भाई..62
5. सत्य की अग्नि-परीक्षा..83
6. श्रद्धा यानी अंतर्यात्रा..102
7. व्यक्ति होना धर्म है..123
8. विद्रोह और ध्यान...144
9. सत्य का निमंत्रण...164 10...कोई ताजा हवा चली है अभी 185

उड़ियो पंख पसार
पहला प्रवचन

श्रद्धा के पंख

पहला प्रश्न: ओशो,
सोबत हौ केहि नद्ध, मूरख अग्यानी।
भोर भये परभात, अबहिं तुम करो पयानी।।
अब हम सांची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार।
छुटि जैहो या दुक्ख तें, तन-सरवर के पार।।
ओशो, हमें संतश्रेष्ठ धनी धरमदास के इस पद का अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें। हम तो धरती पर भी पांव घसीटकर चलते हैं; आप यहां किस आकाश और किन पंखों की बात कर रहे हैं?

आनंद मैत्रेय! मनुष्य बना ही है आकाश में उड़ने को। न उड़े आकाश में तो फिर पैर घसीट कर ही चलना पड़ेगा। जमीन पर ही चलते रहना मनुष्य के स्वभाव के प्रतिकूल है, अनुकूल नहीं। इसलिए जीवन इतना बोझिल है, इतना भारग्रस्त है। जीवन में दुख का एक ही अर्थ है कि हम स्वभाव के अनुकूल नहीं हैं, प्रतिकूल हैं। दुख सूचक है कि हम स्वभाव से चूक रहे हैं; कहीं हम मार्ग से उतर गए हैं; कहीं पटरी से उतर गए हैं। जैसे ही स्वभाव के अनुकूल होंगे, वैसे आनंद, वैसे ही अमृत की वर्षा होने लगेगी। लेकिन मनुष्य के पंख पक्षियों जैसे पंख नहीं हैं कि प्रगट हों; अप्रगट हैं। देह के नहीं हैं, चैतन्य के हैं। और जिस आकाश की बात चल रही है, वह बाहर का आकाश नहीं, भीतर का आकाश है--अंतराकाश है। जैसा आकाश बाहर है, वैसा ही आकाश भीतर है--इससे भी विराट, इससे भी विस्तीर्ण, इससे भी अनंत-अनंत गुना बड़ा। बाहर के आकाश की तो शायद कोई सीमा भी हो। वैज्ञानिक अभी निश्चित नहीं हैं कि सीमा है या नहीं।
अलबर्ट आइंस्टीन का तो ख्याल था कि सीमा है; हम सीमा तक पहुंच नहीं पाए हैं, कभी न कभी पहुंच जाएंगे। क्योंकि विज्ञान की दृष्टि में, कोई भी वस्तु असीम कैसे हो सकती है? वस्तु है तो सीमा होगी ही। सीमा ही तो वस्तु को निर्मित करती है। नहीं तो वस्तु की परिभाषा क्या? अगर असीम हो तो न होने के बराबर हो जाएगी।
लेकिन बाहर के आकाश की बात वैज्ञानिकों पर छोड़ दो। उस गोरखधंधे में अध्यात्म के खोजी को पड़ने की जरूरत भी नहीं है। वह उसकी चिंता का विषय भी नहीं है, न वह उसकी जिज्ञासा है। न निर्णय हो जाए कि बाहर के आकाश की सीमा है या सीमा नहीं है, तो उसे कुछ मिलेगा। उस निष्पत्ति से कुछ सार नहीं है। लेकिन भीतर के आकाश की कोई सीमा नहीं है। यह तो निश्चित हो गया, क्योंकि जो भी भीतर गया है-किसी देश में, किसी काल में-उस सभी का निरपवाद रूप से एक ही अनुभव है, एक ही साक्षात्कार है कि भीतर का आकाश अनंत है। उस भीतर के आकाश में उड़ने की क्षमता लेकर आदमी पैदा होता है; और चलता है बाहर के आकाश में, इससे घसिटता है। क्षमता में और वास्तविकता में मेल नहीं हो पाता। यह जो तालमेल नहीं है, यही हमारा दुख है। यही पीड़ा है, यही संताप है। तालमेल हो जाए, दुख मिट जाए, संगीत का जन्म हो, छंद उपजे, रस बहे, फूल खिलें।
ऐसा ही समझो कि जैस गुलाब के पौधे में कोई जुही के फूल लगाने की चेष्टा कर रहा हो। न लगेंगे फूल। आए कितना ही वसंत, हो कितनी वर्षा, उमड़-घुमड़ मेघ कितने ही मल्हार गाएं, माली कितना ही खून-पसीना करे--नहीं, गुलाब में जुही के फूल न लगेंगे, चम्पा के फूल नही लगेंगे। गुलाब में तो गुलाब के ही फूल लग सकते हैं। और अगर जुही के फूल लगाने की चेष्टा की तो खतरा यही है कि कहीं ऐसा न हो कि गुलाब के फूल भी न लगें। क्योंकि तुम्हारी चेष्टा तो जुही के लिए होगी। तुम तो लगती हुई कलियों को भी तोड़ ड़ालोगे कि ये तो जुही की नहीं हैं। तुम तो खिलते फूलों को भी नष्ट कर दोगे, क्योंकि वे तुम्हारी अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं होंगे, कि वे तुम्हारी आकांक्षाओं के परिपूरक नहीं होंगे।

जो हो सकता है, वही हो सकता है। जो नहीं हो सकता, वह नहीं हो सकता। और मनुष्य की यहा दुविधा है, यही संकट है कि वह जो नहीं है, नहीं हो सकता है, वही होने की कोशिश में लगा है। जो है और हो सकता है, उस दिशा में उसकी आंख भी नहीं; उस दिशा में पैर भी नहीं पड़ते; उस दिशा में पंख भी नहीं खोलता। फिर रोता है, छाती पीटता है और हजार-हजार बहाने खोजता है कि शायद इस कारण सुख नहीं है; शायद धन कम है, इसलिए सुख नहीं। मगर बहुत हैं जिनके पास धन है, सुख कहां? सोचता है पद नहीं है, शायद इसलिए सुख नहीं है। फिर बहुत हैं जिनके पास पद भी हैं, पर सुख कहां?
थोड़ा धनियों की आंखों में तो झांको। थोड़ा पद पर जो प्रतिष्ठित हैं उनके प्राणों में तो टटोलो। उनके जीवन को तो थोड़ा परखो, पहचानो। उनके जीवन में भी सुख नहीं है। तो तुम सिर्फ बहाने न खोजते रहो कि समाज की व्यवस्था ठीक नहीं है इसलिए सुख नहीं है, कि आर्थिक वितरण समान नहीं है इसलिए सुख नहीं आया। और रूस से मुझे पत्र आते हैं। सुख तो दूर, स्वतंत्रता भी खो गयी। पत्र भी चोरी-छिपे आते हैं। पत्र भी सीधे नहीं आ सकते। किसी यात्रा को देते हैं लोग कि रूस के बाहर जाकर तुम ड़ाल देना, ताकि पहुंच जांए। और पत्रों की एक ही पीड़ा है कि हम सुख को कैसे पाएं, ध्यान क्या है, शांति कैसे उपलब्ध होगी!
यह जान कर तुम चकित होओगे कि रूस में भी जगह-जगह लोगों ने संन्यास लिया है। नहीं गैरिक वस्त्र पहन सकते, नहीं माला पहन कर बाहर निकल सकते, क्योंकि जीवन खतरे में पड़ जाएगा। मेरी किताबों पर पाबंदी है। मेरी किताबें प्रवेश नहीं कर सकतीं। लेकिन प्रविष्ट हो गयीं। लोग संन्यस्त हैं। रात चोरी से गैरिक वस्त्र पहन कर, माला पहन कर ध्यान कर लेते हैं, कि अपने तलघरों में मिलते हैं। रूस में अनुवादित कर ली हैं उन्होंने किताबें, हाथ से लिख कर किताबें एक हाथ से दूसरे हाथ में जा रही हैं। तो समानता भी आ जाए तो भी सुख तो नहीं आता।
और अमरीका में कितना धन है! अम्बार लग गए हैं। मनुष्य-जाति के पास कभी इतना धन इतिहास के किसी काल खण्ड में, किसी देश में, कभी भी नहीं था। लेकिन जीवन एकदम खाली-खाली है, थोथा है। जितना थोथा अमरीका में जीवन अनुभव होता है शायद कहीं और नहीं होता; कहीं और नहीं सकता। भिखारी को तो आशा रहती है कि आज नहीं कल, होना धन पास तो सुख के द्वार खुल जाएंगे, कि स्वर्ग फिर मेरा है। लेकिन जिसके पास सब है उसकी तो आशा भी मर गयी। उसके तो आशा में भी अब अंकुर नहीं आ सकते हैं। अब तो उसकी निराशा सघन है, परिपूर्ण है। अब तो वह जानता है भलीभांति कि धन हो, कि पद हो, कि प्रतिष्ठा हो, नहीं सुख मिलेगा; कोई और मार्ग खोजना होगा।
इसलिए गरीब देशों में उतनी अशांति नहीं मालूम होती। पश्चिम से मेरे पास इतने लोग आते हैं-लाखों की संख्या में। चकित होते हैं यह देख कर कि भारत के लोग बड़े शांत मालूम होते हैं! इनके पास कुछ भी नहीं है, फिर इतने शांत क्यों? और भारत के थोथे पंडित हैं, पुरोहित हैं, तथाकथित महात्मा हैं, वे इस बात का उल्टा ही अर्थ समझाते हैं। वे समझाते हैं कि भारत के लोग इसलिए शांत मालूम होते हैं कि इनके जीवन में धर्म है। यह सरासर झूठी बात है, बकवास है। धर्म के कारण यह शांति नहीं है। यह शांति है केवल गरीबी के कारण, क्योंकि गरीब को आशा होती है। इनको भी अमीर हो जाने दो और इनकी भी शांति नष्ट हो जाएगी। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति अमीर हुआ कि एक बात साफ हो जाती है कि यह आशा व्यर्थ थी; यह मृग-मरीचिका सिद्ध हो गयी; अब मरुस्थल ही मरुस्थल है। वह जो आदमी मरुस्थल में दौड़ रहा है और शांत दिखता है, समझ लेना कि उसे मृग-मरीचिका दिखाई पड़ रही है, कि वह रही; पास ही तो है जल का स्रोत, अब पहुंचा तब पहुंचा, अभी पहुंचा जाता हूं, थोड़ी देर और, दो कदम और! मगर जो आदमी इन सारी मृग-मरीचिकाओं में पहुंच चुका है और जाकर पाया कि सिवाय मरूस्थल के कुछ भी नहीं है, उसकी निराशा को समझोगे, उसकी हताशा को समझोगे? उसकी आंखों से चमक चली जाएगी। उसकी आंखों से आशा के दीए बुझ जाएगें। उसके जीवन में सपने अब नहीं पल सकते। अब कल्पनाओं में उसे कोई रस नहीं रहा। अब वह जानता है कि सब सरासर झूठ है। अब वह जहां है वही बैठा रहेगा। उठने तक साहस नहीं रह जाएगा, कदम बढ़ाने तक ही हिम्मत न रह जाएगी।

तो जिनके पास धन है उनको गौर से देखो। जिनके पास पद है उनको जरा गौर से देखो। तब तुम पाओगे कि तुमने अपने दुख के जितने कारण सोच रखे हैं वे सच्चे कारण नहीं हैं, वे केवल बहाने हैं। बहाने हैं वैसे ही बने रहने के जैसे कि तुम हो।
दुख का केवल एक ही कारण है, जो बहाना नहीं है, कारण है--और वह कारण है स्वभाव के प्रतिकूल होना। जो हमारी नियति नहीं है उससे अन्यथा होने की चेष्टा में दुख है। और हम सब वही होने में लगे हैं। हमारी नियति है परमात्मा होना। हमारी नियति है आत्म-आविष्कार। हमारी नियति है अंतर्तम के आकाश में उड़ना।
इसलिए धरती पर हम पैर घसीट कर चलते हैं, आनंद मैत्रेय। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि हम बने हैं आकाश में उड़ने को।
ऐसा ही समझो कि जैसे किसी नामसमझ के हाथ में हवाई जहाज पड़ जाए। मैंने सुना है कि ऐसा दूसरे महायुद्ध में हुआ। बर्मा के एक जंगल में एक छोटा हवाई जहाज छूट गया दूसरे महायुद्ध में। जंगल में रहने वाले आदिवासियों के हाथ में पड़ गया। अब आदिवासी हवाई जहाज का क्या करें! हवाई जहाज है, यह भी उनकी समझ में न आए। वे तो बैलगाड़ी को ही जानते थे, सो उन्होंने हवाई जहाज में बैल जोत लिए। सोचा कि नये ढंग की बैलगाड़ी है। और बैल जोत कर उससे काम भी लेने लगे। छोटा-सा हवाई जहाज था, होगा दो सीट का हवाई जहाज, तो उसमें बैल जोत कर और उसको चलाने भी लगे। महीनों हवाई जहाज बैलगाड़ी ही रहा। तुम उस हवाई जहाज की दुर्दशा समझो। अगर हवाई जहाज को जरा भी होश होता तो जार-जार रोता, तो उसकी आंखों से आंसू टपकते कि यह मेरी क्या गति हो रही है! इसके लिए मैं बना हूं? ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर... बैल जुते हवाई जहाज में। मुढ़ों के हाथ में पड़ जाएगा तो यही होना था।
फिर शहर से कोई आदमी आया। उसे भी हवाई जहाज का भाव अनुभव तो नहीं था, लेकिन बस और ट्रक उसने देखे थे। उसने कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो! इसमें बैल जोतने की जरूरत नहीं है। यह तो छोटी बस है।
उसने कोशिश करके चलाने की चेष्टा की, दो-चार दिन में चल गया हवाई जहाज। तो बस की तरह कुछ दिन चला। आदिवासी बहुत प्रसन्न हुए कि बिना बैल के गाड़ी चल रही; बैल नहीं, गाड़ी चल रही है! देखने आते आदिवासी दूर दूर से। फिर उस आदमी ने जब शहर गया तो वहां लोगों को कहा कि ऐसा ऐसा मामला हुआ, तब किसी ने उससे कहा कि पागल, वह बस नहीं है। तू जैसा वर्णन कर रहा है, वह हवाई जहाज है।
तो एक पायलट को लेकर वह आदमी जंगल पहुंचा और तब वह हवाई जहाज आकाश में
उड़ सका। तब तो आदिवासियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।
मनुष्य जैसा है, उतने पर समाप्त नहीं है। हम बैलगाड़ी ही बनाए हुए हैं उसे। घसीट रहे हैं। चिल्लाते हैं बुद्धपुरुष कि नहीं तुम इसके लिए बने हो। अनंत सम्पदा के तुम मालिक हो। प्रभु का राज्य तुम्हारा है। मगर हम सुनते नहीं। सुनें कैसे? हमने इस बाहर के जगत में अपने बहुत-से न्यस्त स्वार्थ जोड़ रखे हैं। हमने न मालूम कितने सपनों के जाल बुन रखें हैं! सुनें तो सब जाल छोड़ने पड़ें। सुनना महंगा है। सुनते हैं और अनसुनी करते हैं। सुन भी लेते हैं और सुनते भी नहीं।
धनी धरमदास ठीक कह रहे हैं। धरमदास कोई धनी नहीं थे, लेकिन भीतर के धन
को पाकर "धनी धरमदास" कहलाए। नहीं था कुछ उनके पास, लेकिन जो उनके पास आया उसने ही पाया कि भीतर कुछ अहर्निश बरस रहा है, कोई रसधार बह रही है! जो आया उसने पीया। जो आया पी कर वही जीया। नए जीवन को जीया! उनके ये वचन प्यारे हैंः "सोवत हौ केहि नद्ध!" कैसी नद्ध में सोए हो, क्या कर रहे हो? क्या होने को आए थे, क्या हो गए हो! यह कैसी नद्ध? सपने को सच मान लिया! सच का विस्मरण कर दिया! अपने को भूल बैठे हो, औरों के पीछे दौड़ रहे हों! और सब कहीं जाते हो, सिर्फ अपने भीतर नहीं जाते। यह कैसी नद्ध? और सब जुटाते हो, सिर्फ एक ध्यान नहीं जुटाते। और वही एकमात्र धन है। उसे ही पाओ तो धनी हो जाओ। सब जुटा लोगे, मगर दीन रहोगे, दरिद्र रहोगे। खाली हाथ आए, खाली हाथ जाओगे। रोते जीए, रोते आए, रोते मरोगे।

हंसते हुए भी जीया जा सकता है। हंसने का तुम्हारा जो अनुभव है वह वास्तविक नहीं है। तुम हंसते भी हो तो उस हंसी में आनंद नहीं होता, शायद आंसुओं को छिपाने की व्यस्था है वह।
फ्रेड्रिक नीत्से ने कहा है कि लोग मुझसे पूछते है कि तुम क्यों हंसते रहते हो? तो मैं उनको क्या कहूं? इसलिए हंसता रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। अगर न हंसू तो आंसू टपकने लगेंगे। इसलिए किसी तरह हंस कर अपने को भुलाए रखता हूं।
जिसको तुम मनोरंजन कहते हो, वह क्या है और अपने को भूलाने के सिवाय? कोई चला फिल्म में, कोई चला नाटक में, कोई चला नृत्य में। पूछो-कहां जाते हो? कहते हैं-मनोरंजन को जाते हैं। मनोरंजन की इतनी क्या जरूरत पड़ी है? मनोरंजन की जरूरत ही किसको पड़ती है? जो दुखी है उसी को पड़ती है। सुखी को मनोरंजन की क्या जरूरत है? आनंदित को मनोरंजन की क्या जरूरत है? आनंदित व्यक्ति तीन घंटे किसी सिनेमागृह की गंदगी में बैठने को राजी नहीं होगा, कि जहां लोग सिगरेट और बीड़ी का धुआं उड़ा रहे हैं, जहां की सीटों में न मालूम कितनी बीमारियों के रोगाणु भरे हुए हैं, खटमलों का आवास है जहां, जहां न मालूम कहां-कहां किस-किस तरह के गंदे लोग रोज आकर बैठते हैं!
और तीन घंटे तुम क्या देख रहे हो? पर्द पर केवल धूप-छाया का खेल! उसमें
रो भी लेते हो, हंस भी लेते हो, उदास भी हो जाते हो, प्रसन्न भी हो जाते हो। मूर्खता की भी कोई सीमा होती है! और जानते भी हो भलीभांति कि पर्दा है खाली। जब आए थे तब भी देखा था खाली है; जब आओगे तब भी देखोगे खाली है-लेकिन बीच में भरमा लिया अपने को। और इसको कहते हो मनोरंजन! और इसके लिए पैसा भी चुकाते हो! इसके लिए कतार में खड़े होते हो, धक्कम-धुक्की खाते हो।
"सोवत हौ केहि नद्ध!" कैसी नद्ध है तुम्हारी? क्या कर रहे हो? लोग ताश खेल रहे हैं, शतरंजें बिछाए बैठे हैं। उनसे पूछा-क्या करते हो? कहते हैं-"समय काट रहे हैं।" जैसे समय तुम्हारे पास बहुत ज्यादा है! इतना ज्यादा कि काटे नहीं कट रहा है!
पागलो, समय तुम्हें काट रहा है और तुम कहते हो, हम समय काट रहे हैं! और मौत जब द्वार पर दस्तक देगी, तब एक क्षण की भी भीख मांगोगे तो एक क्षण भी न मिलेगा। रोओगे, गिड़गिड़ाओगे, एक क्षण भी न मिलेगा।
सिकंदर जब भारत आया और एक फकीर से मिलने गया... सिकंदर अपनी अकड़ में था। जीतता चला आ रहा था, कहीं हारा ही नहीं था। हार उसने जानी ही नहीं थी। हार उसका अनुभव ही नहीं बनी। इसलिए तो उसे महान सिकंदर कहते हैं। नेपोलियन को हारना पड़ा। दुनिया में कोई दूसरा आदमी नहीं हुआ जिसने कभी न कभी हार न चखी हो। सिकंदर अकेला आदमी है जिसने हार नहीं चखी; जिसने विजय ही विजय चखी। कहना ही होगा महान उसको।--... लेकिन उस फकीर ने उसको ऐसे देखा नीचे से ऊपर तक जैसे कोई पुलिस वाला किसी चोर को देखे! सिकंदर थोड़ा तिलमिलाया भी। उसने कहा: "ऐसे कैसे देखते हो? मैं हूं महान सिकंदर!"
फकीर ने कहा: "चुप! नासमझ! किस बात से तू महान है?"
सिकंदर ने कहा कि किस बात से! सारी दुनिया को विजय किया हूं।
फकीर ने कहा: "एक बात सुन। मरूस्थल में तू खो जाए, रास्ता भटक जाए, प्यास तुझे लगे और मैं अपना यह लोटा (एक लोटा ही था फकीर के पास)... इस लोटे में पानी लेकर हाजिर हो जाऊं और तू गिड़गिड़ाए कि मुझे पानी दे दो और मैं कहूं कि क्या देगा पानी के बदले में? तो तू बोल, ज्यादा से ज्यादा कितना दे सकेगा?"
सिकंदर ने कहा: "अगर ऐसी हालत हो कि मरूस्थल में मर रहा होऊं, पानी के लिए तड़प रहा होऊं, प्यासा होऊं, तो अपना आधा राज्य दे दूंगा।"
लेकिन फकीर ने कहा: "आधे में मैं बेचता नहीं। तूने समझा क्या कि मैं बेच दूंगा ऐसे सस्ते में? ऐसा मौका मैं भी छोडूंगा? कुछ और आगे बढ़! लेना ही हो तो हिम्मत कर, कंजूसी न चलेगा।"
सिकंदर ने कहा: "अगर ऐसी ही हालत आ जाए तो अपना पूरा राज्य भी दे सकता हूं।"

तो उस फकीर ने कहा: "तो बस हो गया मतलब हल। मेरे लोटे भर पानी की कीमत
है तेरे राज्य की। तो मेरा लोटा तेरे राज्य से कुछ छोटा नहीं है। तो तू क्यों अकड़ा हुआ है? ऐसी क्या अकड़! एक लोटे पानी में बिक जाएगा।"
और मैं तुमसे कहता हूं-उस फकीर ने कहा-कि जब मौत द्वार पर दस्तक देगी
तो तू पूरा राज्य भी देगा तो भी एक क्षण नहीं पा सकेगा। और यही हुआ। सिकंदर जब वापिस जा रहा था भारत से तो रास्ते में मर गया। मरते वक्त सिर्फ अपने घर के चौबीस घंटे का फासला था। चौबीस घंटे और। और अपनी मां को वायदा करके आया था कि कुछ भी हो जाए, लौट कर आऊंगा और सारी दुनिया के राज्य को तेरे चरणों पर चढ़ा दूंगा। अपने वजीरों से, अपने वैद्यों से उसने कहा कि जो भी चाहो ले लो, लेकिन किसी तरह चौबीस घंटे मुझे बचा लो। उसके वैद्यों ने कहाः "असंभव है। कुछ भी किया नहीं जा सकता। मौत आ ही गयी। अब कोई उपाय नहीं। चौबीस घंटे भी नहीं बचा सकते।"
सिकंदर हंसने लगा। उन्होंने कहा: "क्यों हंसते हैं?" उसने कहा: "मुझे
उस फकीर की बात याद आती है। तब तो मैंने उसकी बात पर ज्यादा ध्यान न दिया था कि है फकीर। और फकीर तो उल्टी-सीधी बातें करते ही हैं, सधुक्कड़ी, तो उल्टी-सीधी बातें कर रहा है। लेकिन आज याद आती है उस फकीर की। वह ठीक कहता था। आज पूरा राज्य देकर चौबीस घंटे भी नहीं खरीद सकता हूं। तो क्या कमाया? यह जिन्दगी पानी में गयी। पानी पर रेखाएं खींचता रहा।"
"सोवत हौ केहि नद्ध!" धनी धरमदास कहते हैं: यह कैसी नद्ध है, जिसमें तुम सोए हो? "मूरख अग्यानी!" और क्या मूढ़ता होगी?
और एैसा ही मत समझना कि तुम्हीं सोए हो, तुम्हारे पंडित सोए हैं, तुम्हारे पुरोहित सोए हैं, तुम्हारे साधु सोए हैं, तुम्हारे महात्मा सोए हैं। सब सोए हैं। तुमने अपने साधु-महात्माओं की अकड़ देखी? अहंकार देखा? वही का वही-वही रोग, वही बीमारी, जो आम आदमी को है। और बढ़-चढ़ कर उनके सिर पर सवार है। कहीं कुछ फर्क नहीं होता। संसार भी छोड़ देते हैं, मगर अकड़ नहीं जाती। और अकड़ ही असली बात है। संसार छोड़ो या न छोड़ो, अकड़ छूटनी चाहिए। कुछ लोग हैं, जो धन के कारण अकड़े हैं कि इतना हमारे पास धन है; और कुछ इसलिए अकड़े हैं कि हमने इतना धन छोड़ा है। लेकिन दोनों की अकड़ का कारण धन है।
जैन शास्त्रों को पढ़ो तो महावीर ने इतने घोड़े, इतने हाथी, इतने महल छोड़े... इतनी संख्या बताते हैं कि भरोसा नहीं आता कि इतने हाथी घोड़े और इतने महल महावीर के पास रहे हों! छोटी-मोटी जमद्धारी थी। कोई बहुत बड़े सम्राट नहीं थे महावीर, क्योंकि महावीर अगर न होते तो शायद उनके वंश का पता भी नहीं होता किसी को, इतिहास में कहीं उनके लिए पाद-टिप्पणी भी नहीं मिलती। अब भी महावीर के पिता का क्या नाम था, सिवाय जैनियों के कौन जानता है? और वह भी महावीर के कारण। दो हजार राज्य थे भारत में महावीर के समय में। दो हजार राज्यों में भारत बंटा हो तो समझ लो कि एक जिला के बराबर जागीरदारी रही होगी। इसमें इतने हाथी घोड़े खड़े कहां करोगे? मगर इतने हाथी-घोड़े हमको गिनाने पड़े, क्योंकि न गिनाएं तो त्याग छोटा हो जाता है। और मजा यह है कि जैसे जैसे समय बीतता है वैसे-वैसे संख्या बढ़ती जाती है। जितना पुराना शास्त्र है उतनी संख्या कम है, क्योंकि बौद्धों से विवाद चल रहा था। उधर बौद्ध भी अपने हाथी-घोड़े बढ़ाए जा रहे थे, तो जैन भी बढ़ाए जा रहे थे। कोई पीछे रह सकता था! अगर बुद्ध ने इतने हाथी त्यागे तो महावीर ने उससे दुगने त्यागे। छोटे बच्चों का खेल! जैसे छोटे बच्चे अपने-अपने बाप की तारीफ करने में एक-दूसरे से आगे बढ़ते जाते हैं। जो बहुत होशियार होते हैं वे कह देते हैं कि हमारे बाप सदा तुमसे एक कदम आगे; तुम जो भी कहो, उससे एक कदम आगे। वही पागलपन है। वही पागलपन सारे धर्मां में है।
महाभारत के युद्ध की कथा कहती है कि एक अरब से ज्यादा आदमी कुरूक्षेत्र के मैदान में मरे। कुरूक्षेत्र के मैदान में एक अरब आदमी खड़े भी नहीं हो सकते, मरेंगे तो गिरेंगे। एक अरब आदमी, तुम कल्पना करते हो! अभी भारत की आबादी एक अरब हुई नहीं, होने के करीब है। पूरे भारत की आबादी इस सदी के पूरे होते-होते एक अरब होगी। यह पूरे भारत की आबादी कुरूक्षेत्र के छोटे-से मैदान में इकट्ठी खड़ी भी नहीं कर सकते उसे। हां, एक आदमी के ऊपर दूसरा, दूसरे के ऊपर तीसरा, इस तरह खड़ा करो तो बात अलग। सीढ़ियां बना दो, ढेर

लगा दो तो बात अलग; नहीं तो आदमियों को खड़े भी नहीं कर सकते। और युद्ध के मैदान में फिर लड़ने वगैरह के लिए, तलवार वगैरह चलाने के लिए जगह भी छोड़ोगे कि नहीं? जेब काटना तक मुश्किल हो जाएगा, गर्दन काटना तो बहुत दूर और फिर हाथी घोड़े भी हैं और रथ भी हैं। निहायत पागलपन की बात है।
बुद्ध के और महावीर के समय में भारत की आबादी कुल दो करोड़ थी, तो कृष्ण
के समय में तो भारत की आबादी एक करोड़ से ज्यादा भी नहीं हो सकती। एक अरब आदमी लाए कहां से ये? एक अरब तो सारी दुनिया की भी आबादी नहीं हो सकती उस समय। अभी भी सारी दुनिया की आबादी चार अरब है केवल। पांच हजार साल पहले सारी दुनिया की आबादी करोड़ों में रही होगी, अरबों का सवाल नहीं उठता। और वह भी कुरूक्षेत्र में मैदान में! कुरूक्षेत्र का मैदान कितना बड़ा है? हां, कोई हाकी-फुटबॉल खेलना हो तो समझ में आता है, कि इकट्ठे हो गये कौरव और पांडव, खेलने लगे हॉकी, कि फुटबाल का मैच हो गया। यह समझ में आ सकता है, मगर बाकी सब बातें बकवास हैं। अठारह अक्षौहिणी सेना! खड़ी भी नहीं हो सकती। मगर हमारी आदतें... धन से ही हम तौलते हैं। दिखाना होगा तो संख्या बड़ी करनी पड़ेगी। तो महावीर ने इतना छोड़ा, बुद्ध ने इतना छोड़ा। छोड़ने पर त्याग तय होगा। त्याग की तौल भी धन से ही होगी। तराजू वही है, तराजू में फर्क नहीं पड़ता। तो अकड़ में भी फर्क नहीं पड़ सकता है।
"सोवत हौ केहि नद्ध मूरख अग्यानी!"
कुछ लोग हैं जो धन की अखड़ में हैं, कुछ लोग हैं जो ज्ञान की अकड़ में हैं। किन्हीं को गीता याद है, किन्हीं को बाइबिल याद है, किन्हीं को उपनिशद कंठस्थ हैं-उनकी अकड़। तोते हैं केवल। तोतों से ज्यादा इनका कोई मूल्य नहीं है। मशीनें ये काम कर लें, इसमें अकड़ने जैसा कुछ भी नहीं है। लेकिन आदमी कोई भी बहाना खोज ले, बस अहंकार को भरने के लिए बहाना चाहिए। और जब अहंकार है तब तक नद्ध है; अहंकार है, तब तक तुम मूर्ख हो, अज्ञानी हो। कितना ही ज्ञान तुम्हारे पास हो, तुम्हारी मूढ़ता नहीं कटेगी उससे। तुम्हारा ज्ञान भी तुम्हारी मूढ़ता को भरने का कारण हो जाएगा।
"भोर भये परभात!"
मनुष्य का जन्म सुबह की तरह है। कितनी सदियां लगीं। कितने-कितने जन्मों के बाद कितनी योनियों में भटकने के बाद, पशुओं में, पक्षियों में, न मालूम कितनी यात्राओं के बाद यह सुबह हुई कि तुम मनुष्य हुए! कितनी रात और कितना अंधेरा बिता कर तुम आए हो और सुबह हुई। और तुम अब भी सोए हो! अब भी न जागे तो कब जागोगे?
धरमदास ठीक कहते हैं: "भोर भये परभात!" सुबह हो गयी, लेकिन तुम्हारा प्रभात कब होगा? मनुष्य भी हो गए, लेकिन तुममें अभी मनन पैदा नहीं हुआ। इसलिए तुम नाममात्र के मनुष्य हो। अभी मनन का जन्म ही नहीं हुआ। मनन का जन्म तो तुम मन के पार जाओ तब होता है। मन के भीतर जो छिपा है उसमें प्रवेश करो तब होता है। मनातीत जो है, उसके अनुभव से ही तुम वस्तुतः मानवीय होते हो, नहीं तो नाममात्र के मनुष्य हो।
डायोजनीज--एक यूनानी फकीर--जीवन भर जलती हुई लालटेन लेकर घूमता रहा। नंग-धंड़ग! महावीर जैसा आदमी था। पश्चिम में बस महावीर के मुकाबले यही एक आदमी हुआ-डायोजनीज, जो नग्न रहा। और मैं तो कहूंगा कि महावीर से भी उसके नग्न रहने का मूल्य ज्यादा है, क्योंकि भारत में नग्न रहना बहुत आसान है। गरम देश है, यहां तो कपड़े पहनना मुश्किल है; नग्न रहना इतना मुश्किल नहीं है। लेकिन पश्चिम में जहां खून जम जाए, वैसी सर्दी में नग्न रहना-- ड़ायोजनीज जरूर हिम्मत का आदमी रहा होगा। महावीर अगर नग्न रह बिहार में तो कुछ बड़ी बात नहीं। फिर यहां तो नग्न रहने की बड़ी पुरानी परम्परा है। हिन्दुओं में नागा साधु सदियों से होते रहे हैं। यहां नग्न होना कोई नयी बात नहीं है। और वैसे भी यहां आदमी करीब नंगे हैं। है ही क्या पास! वैसे ही लंगोटी लगाए हुए हैं।
लेकिन डायोजनीज नग्न रहा पश्चिम में। लेकिन एक लालटेन हाथ में रखता था-जलती हुई, दिन में भी। इससे लोग बड़े हैरान होते थे। जो भी देखे वही पूछे। न पूछो, यह हो न, यह बात बने न। तुम्हें भी मिल जाता डायोजनीज तो जिज्ञासा उठती ही-कितना ही समझाते अपने को कि अपने को क्या लेना देना,

हमें क्या प्रयोजन, जो इसको करना हो करे! उसकी नग्नता से भी ज्यादा पूछने योग्य बात हो गयी उसकी लालटेन, कि दिन में तू भैया लालटेन क्यों लिए है? और जलती हुई लालटेन! और कुछ तेरे पास नहीं है, यह तुझे क्या सूझा है?
तो लोग पूछते ही उससे कि लालटेन किसलिए लिए हो। तो डायोजनीज कहता कि मैं आदमी की तलाश कर रहा हूं। अभी तक मुझे आदमी मिला नहीं।
जब डायोजनीज मर रहा था, लालटेन उसके बगल में रखी थी-वही जलती हुई लालटेन। किसी ने पूछा कि डायोजनीज, अब तो तुम मर रहे हो, आदमी मिला कि नहीं? डायोजनीज ने कहा: "आदमी तो नहीं मिला, लेकिन परमात्मा का धन्यवाद है किसी ने मेरी लालटेन नहीं चुरायी, यही क्या कम है? अब तो इसी धन्यवाद से मर रहा हूं कि बड़ी कृपा थी लोगों की, कि नजरें सबकी लगी रहीं, मगर किसी ने लालटेन न चुरायी! यही बहुत है। आदमी तो नहीं मिला। हरेक आदमी की आंख में लालटेन उठा कर देखता था।"
हम केवल देखने भर के आदमी हैं। जब तक अंतर-प्रवेश न हो, तब तक ज्ञान इकट्ठा करो, धन इकट्ठा करो, पद पर बैठ जाओ, प्रतिष्ठित हो जाओ, सारे जगत में नाम हो जाए-किसी काम का नहीं, दो कौड़ी का है।
"भोर भय परभात!" यह घड़ी छोड़ने जैसी नहीं है। यह सुबह सोने जैसी नहीं है। मगर अक्सर ऐसा होता है कि सुबह उठने का मन नहीं होता। जो रात भर जागे रहे हों वे भी सुबह-सुबह सो जाते हैं। आदमी ऐसा बेबूझ है, आधी-आधी रात तक जगे रहेंगे, मगर सुबह एकदम कंबल तान लेंगे! सुबह होने लगेगी तो एकदम बिस्तर में सिकुड़ने लगेंगे; सोचने लगेंगे, एक करवट और! अलार्म बजेगा तो बस नद्ध में ही बंद कर देंगे; या अलार्म बजेगा तो नद्ध में ही एक सपना अलार्म के आसपास बुन लेंगे कि मंदिर में गए हैं और मंदिर की घंटियां बज रही हैं, ताकि अलार्म से बचना हो जाए।
मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जिन्होंने अपनी अलार्म की घड़ियां फोड़ दीं गुस्से में! खुद ही भर कर सोए थे रात कि सुबह सुबह अलार्म उठा देगा। और सुबह क्रोध में... क्योंकि सुबह उठने का मन नहीं होता, ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी; मन होता है कि एक करवट और, बस थोड़ी देर, एक आधा घड़ी। मगर वह आधा घड़ी का कभी अंत नहीं आता। और जिन्दगी में भी वही हो रहा है। आधा घड़ी आधा घड़ी करके पूरे जीवन बीत जाता है। कहते हैं कल!
कल कभी आता है? कल कभी आया है? सोचते रहते हैंः "कल करेंगे ध्यान, आज
तो फुर्सत नहीं।" मगर आज के सिवाय तुम्हारे हाथ में कुछ भी नहीं है। कल का भरोसा न करो। कल कौन जाने आए न आए। कहते हैं: "कल ले लेंगे संन्यास। कल करेंगे साधना।"
अहंकार बड़ा अद्भुत है आदमी का! वह यह भी नहीं मानना चाहता कि हमें साधना करनी नहीं है। करनी तो है, निश्चित करनी है; हम कोई नासमझ हैं जो साधना न करें? हम कोई पागल हैं जो ध्यान में न उतरें? उतरेंगे! ऋषि- मुनियों की संतान हैं! उस देश में पैदा हुए हैं जहां देवी-देवता पैदा होने को तरसते हैं!
अब तो मैं कभी कभी सोचता हूं कि अब देवी देवता कहां से पैदा होते होंगे! तेतीस करोड़ कुल देवी देवता हैं, सत्तर करोड़ पैदा ही हो चुके हैं भारत में, अब ये और देवी देवता कहां से चले आ रहे हैं, सब देवी-देवता तो पैदा ही हो चुके। अब तो यह ही समझो कि शैतान और शैतान के शिष्य चले आ रहे हों, इसके सिवा और तो कोई उपाय नहीं। अब तो नरक से भी लोग दिखता है कि तरसने लगे यहां आने को। या ऐसा लगता है कि नरक में भी जिनको दण्ड देते हैं उनको यहां भेज देते हैं, कि नरक में भी जो कसूर करते होंगे... कसूर करने वाले कहीं रूकने वाले हैं? तुम उनको नरक भेज दो, वहीं कसूर करेंगे, वहीं कुछ हरकत करेंगे।
मुल्ला नसरूद्दीन मरा, मैंने सुना। वह जब नरक गया तो ऐसा अकड़ कर चले
कि शैतान ने कहा कि बड़े मियां, तुम तो ऐसे अकड़ कर चल रहे हो जैसे तुम्हारे बाप का हो नरक! नसरुद्दीन ने कहा: "मेरे बाप का नहीं तो किसका है? मेरी पत्नी ने मुझे नरक दिया है, यह उसकी भेंट है। तू कौन है बीच में गड़बड़ करने वाला? मेरी पत्नी जिंदगी भर कहती रही-अरे मुए, मर और नरक जा! उसी की वजह से

तो आया हूं। अकड़ कर नहीं चलें तो क्यों... क्यों न चलें? अपनी पत्नी की भेंट है।"
यहां से गए आदमी नरक में भी बदलेंगे तो नहीं। और मैंने तो यह भी सुना
है कि अब नरक में वे पूछते हैं, द्वार पर ही पूछ लेते हैं कि महाराज, कहां से आ रहे हैं?
"पृथ्वी से आ रहे हैं।"
तो वे कहते हैं: "तुम नरक काफी भोग चुके, अब तुम स्वर्ग जाओ। अब तुम स्वर्ग भोगो। नरक तो तुम भोग चुके।"
एक आदमी ने दस्तक दी स्वर्ग के द्वार पर। पूछा स्वर्ग के द्वारपाल ने
: "शादी शुदा हो?"
उसने कहा: "हां, शादी-शुदा हूं।"
"तो आजा भैया! नरक तो तू भोग ही चुका।"
दूसरा आदमी उसके पीछे चला आ रहा था, उसने यह सुना, उसने कहा यह तो बड़ी अच्छी तरकीब है। द्वारपाल ने पूछा: "शादी-शुदा हो?"
उसने कहा: "एक बार नहीं, तीन बार।"
उसने कहा: "एक बार तो क्षम्य है। तीन बार क्षम्य नहीं है। एक बार कोई भूल करे, समझ में आता है। तू पागल है। तू वापिस पृथ्वी पर जा। पहले इलाज करवा। यहां हम पागलों को भीतर नहीं लेते।"
पृथ्वी को हमने नरक ही तो बना लिया है, नरक से बदतर बना लिया है। और सब
इस पूरी विकृति का कारण: सुबह हो गयी और हम जागते नहीं। "भोर भये परभात, अबहिं तुम करो पयानी।" अब वक्त आ गया कि तुम चल पड़ो। उठो, यात्रा करो! कौन सी यात्रा? अंतर्यात्रा! मनुष्य होने की यात्रा।
अभी तुम मनुष्य केवल नाममात्र को हो। बीज मात्र हो मनुष्य के। इसे वृक्ष बनाना है। वसंत आ गया और तुम बीज की तरह ही पड़े रहोगे? फूटोगे नहीं? अंकुरित नहीं होओगे? पल्लवित नहीं होओगे? फिर फूल कैसे लगेंगे? फिर गंध कैसे आकाश में उड़ेगी?
"अब हम सांची कहत हैं"-यह बड़ा प्यारा वचन है धनी धरमदास का। कहते हैंः "अब हम सांची कहत हैं!" यह शिष्यों से कही गयी बात है, हर किसी से नहीं। यह हर किसी से कही जा भी नहीं सकती। हर कोई इसे समझेगा भी नहीं। यह कोई आम जनता भीड़-भाड़ में कहने की बात नहीं है। भीड़-भाड़ को तो रामायण की कथा-कि एक हुए राम जी और एक हुई सीता जी... और लोगों को सब कथा मालूम ही है। और रात भर सुनेंगे और सुबह फिर पूछेंगे कि रामचन्द्रजी की सीता जी कौन थीं? आम जनता के लिए तो पुराण हैं, कथा कहानियां हैं। जैसे बच्चों के लिए परियों की कहानियां होती हैं, ऐसे ही आम जनता के लिए धार्मिक कहानियां हैं। यह तो शिष्यों से कहा जा रहा है।
शिष्य का अर्थ है: जो अब तैयार हो गया सुनने को; जिससे अब पते की बात कही जा सकती है; जो बेचैन नहीं होगा; जो चौंकेगा नहीं; जो चौंधिया नहीं जाएगा; जिसको अब रोशनी दिखायी जा सकती है; जिसको अब झकझोरा जा सकता है; जिसकी आंखों पर ठंडा पानी फेंका जा सकता है; जरूरत पड़े तो जिसको पूरा का पूरा ठंडा पानी में डुबाया जा सकता है। शिष्य का अर्थ होता है कि जो सीखने को राजी है।
"अब हम सांची कहत हैं।" उससे ही सच्ची बात कही जा सकती है। नहीं तो फिर झूठी कथाएं हैं। और झूठी कथाओं में लोगों को रस है। लोग सत्यनारायण की कथा! नाम भर सत्यनारायण की कथा है। बस लोग करवाते रहते हैं, पढ़ने वाले पढ़ते रहते हैं, सुनने वालों सुनते रहते हैं। न पढ़ने वालों के जीवन में कोई सत्य आता है, न सुनने वालों के जीवन में कोई सत्य आता है। न पढ़ने वालों को कोई मतलब है, न सुनने वालों को कोई मतलब है।
कैसी-कैसी झूठी बातें लोगों ने गढ़ी रखी हैं, कि अजामिल नाम का पापी मर रहा था और उसने अपने बेटे नारायण को बुलाया! पुराने जमाने में सभी नाम परमात्मा के होते थे। पुराने समय में सारी दुनिया में यह बात थी। समय के अनुसार फैशन बदल जातें हैं। अब फैशन बदला है। अब इस तरह के नाम रखना दकियानूसी मालूम पड़ता है। लेकिन पुराने जमाने में सभी नाम परमात्मा के होते थे। भारत में ही नहीं, और देशों में भी। अरबी में, संस्कृत में,

हिब्रू में, सारे नाम परमात्मा के हैं। नाम मात्र परमात्मा के हैं। यह एक उपाय था कि शायद इससे ही धीरे-धीरे याद आ जाए, किसी दिन चोट पड़ जाए।... तो अजामिल के बेटे का नाम नारायण था। अजामिल महापापी। उसले अपने बेटे को बुलाया। लेकिन कथा कहती है कि ऊपर के नारायण धोखे में आ गए। हद हो गयी! यह तो ऊपर के नारायण की भी बदनामी करवा दी। इनमें इतनी अकल भी नहीं है कि वह अपने बेटे को बुला रहा है, वे समझे कि मुझको बुला रहा है।
अजामिल मरे, सीधे स्वर्ग गए, क्योंकि मरते वक्त उन्होंने परमात्मा का नाम लिया था। और जहां तक सम्भावना इसी बात की है कि अजामिल ने बेटे को बुलाया भी होगा तो किस लिए बुलाया होगा... जन्म भर का पापी, डाकू, लुटेरा, हत्यारा... बुलाया होगा कि बेटा सुन, कहां-कहां धन गड़ाया है, किस-किस को मारा है, किस-किस को मारना है अभी। कुछ दी होगी सीख। कुछ बताए होंगे गुर। कुछ कला अपनी दी होगी। कुछ नुस्खे सिखाए होंगे। जिन्दगी भर का अनुभव मरते वक्त बाप बेटों को दे जाते हैं। देना ही चाहिए। कुछ चाबियां थमायी होंगी-"यह देख, यह चाबी फलां सेठ के ताले में लगती है, कि इस चाबी से राजा का खजाना खुल जाता है, कि इन-इन आदमियों को रिश्वत देना तो जिन्दगी में कभी तकलीफ न आएगी, कि इन-इन को सम्हाले रखना, इन-इन की खुशामद करते रखना तो कभी फंसेगा नहीं। मुझे देख, जिन्दगी गुजार चला, मगर कभी फंसा नहीं। कोई अदालत फांस न सकी। दुनिया जानती है कि चोर, बेईमान, लूटेरा, सब कुछ है मगर, कोई कह तो दे! जिसने कहा उसकी जबान काट ली।"
कुछ बता गया होगा मतलब की बातें। मगर ऊपर के परमात्मा धोखे में अ गए।
अब ये किस तरह के बेईमान इन कहानियों को गढ़ते हैं! और जनता इन कहानियों से बड़ी प्रसन्न होती है। वह प्रसन्न होती है, वह सोचती है कि जब अजामिल तक तर गए तो हम तो तर ही जाएंगे। हमने तो ऐसा कोई बड़ा पाप किया भी नहीं। यूं कभी रिश्वत खा ली कि खिला दी थोड़ी-बहुत; कि कभी बिना टिकट ट्रेन में सफर कर लिया। अब ट्रेन से परमात्मा को क्या लेना-देना है, कि टिकट लेकर बैठे कि नहीं बैठे, परमात्मा कोई टिकट-चैकर थोड़े ही है! और क्या हिसाब रखता होगा कि लाखों लोग बैठे रहे उतर रहे, आ रहे जा रहे, कौन टिकट लिए कौन नहीं लिए हुए है! कि कभी छोटे मोटे कुछ झूठ बोल दिए, तो कौन नहीं बोलता है! कि कभी आश्वासन पूरे नहीं किए। तो यह तो सब स्वाभाविक है इस जगत में। भूल-चूक तो आदमी से होती ही है। इसलिए तो हम प्रार्थना करते रहते है मंदिरों में जा जा कर कि हम पतित हैं, तुम पतितपावन हो, कि हमसे भूल-चूक होगी, यह हमारा स्वभाव है; तुम दया करो, क्षमा करो, यह तुम्हारा स्वभाव है। तुमको एक मौका देते हैं अपना स्वभाव प्रगट करने का। हमारे बिना तुम दया भी किस पर प्रगट करोगे? हम न होंगे, पछताओगे। हम न होंगे, उदास बैठे रहोगे। हम न होंगे, दुकानदारी तुम्हारी गयी। हम हैं तो सब कुछ चल रहा है। हम हैं तो तुम महाकरूणावान हो। राम हो, रहीम हो, रहमान हो! लेकिन हमारे कारण हो, भूल मत जाना!
उमर खैयाम ने बड़ा मीठा पद लिखा है। लिखा है कि मैं नहीं मानता उनकी बातें जो कहते हैं कि शराब मत पीओ। हम तो पीएंगे, क्योंकि हमें पक्का भरोसा है कि परमात्मा महा करूणावान है। ये तो नास्तिक हैं जो कहते हैं कि मत पीओ शराब, नहीं तो नरक जाना पड़ेगा। इनको परमात्मा की करूणा पर भरोसा नहीं है! बात तो पते की कह रहा है। उमर खैयाम बात तो ठीक ही कह रहा है। अगर परमात्मा करुणावान है तो कैसे नरक भेज सकता है? और जरा-सी शराब पी ली, नरक भेज दिया-यह हो ही नहीं सकता। और कम से कम मुसलमान उमर खैयास को तो यह बात जंच ही नहीं सकती, क्योंकि बहिश्त में शराब के चश्मे बह रहे हैं, स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। जब परमात्मा जहां रहता है वहां शराब की नदियां बह रही हों तो छोटे-मोटी शराब पीने वालों को नरक भेज दे, यह कोई बात जंचती है? देवी-देवता शराब में नहा रहे हैं, उछल रहे हैं, कूद रहे हैं, पी रहे हैं, पिला रहे हैं। और जो महात्मा पहुंच जाते हैं स्वर्ग, वे झरने क्या ऐसे ही बहते रहते होंगे? आखिर कोई पीता ही होगा, पिलाता ही होगा! यहां तो कुल्हड़ों में पी जा रही है और नरक भेजे जा रहे हो तुम, अगर इसका इतना दण्ड है तो स्वर्ग में रहने वालों को कितना दंड नहीं मिलेगा फिर!

नहीं; परमात्मा करुणावान है, उमर खय्यास कहता है। हमें उसकी करूणा पर भरोसा है। हम आस्तिक हैं। हम तो पीएंगे और हम तो देखेंगे। उसकी करूणा की भी तो एक जांच होनी चाहिए, कसौटी होनी चाहिए।
आदमी बड़ा होशियार है। वह अपने हिसाब से सब ईजादें कर लेता है। धनी धरमदास ने तो यह शिष्यों से कही है बात। कहा है: "अब हम सांची कहत हैं!" कि अब हम तुमसे सच-सच कह देते हैं, सौ टके सच बात कह देते हैं। और सच्ची बात यह है: उड़ियों पंख पसार! कि अपने भीतर के आकाश में पंखों को पसारो और उड़ो। कथा कहानियों में मत उलझे रहो। शब्द जाल में मत उलझे रहो। यह उधार ज्ञान काम नहीं आएगा। अपने ही पंखों को फैलाओ। महावीर उड़े, बुद्ध उड़े, कृष्ण उड़े कि क्राइस्ट उड़े, इससे तुम नहीं उड़ सकोगे। तुम्हें की उड़ना होगा। अपने ही पंख काम आएंगे।
उड़ियो पंख पसार! पसारो अपने पंखों को। तौलो अपने पंखों को। हिम्मत करो। भय तो लगता है। भीतर जाने में भय लगता है, क्योंकि एकदम अकेले हो जाते हैं हम भीतर। बाहर तो अपने हैं, प्रियजन हैं, बंधु-बांधव हैं, मित्र हैं, पत्नी है पति है, बेटे हैं, मां-बाप हैं, भाई बंधु हैं, सब हैं। बाहर तो सारा संसार है। और भीतर? भीतर न कोई भाई न बंधु, न कोई मित्र न कोई परिचित। तो हम बिल्कुल अकेले हैं। अकेले होने से हम बहुत डरते हैं। अकेले होने में बड़ी घबड़ाहट लगती है। सब सहारे छूट गए, सब सुरक्षा टूट गयी। कहीं डूब न जाएं इस अकेलेपन में! यह एकाकीपन, पता नहीं फिर हम वापिस लौटे सकें न लौट सकें! कहीं गल न जाएं, पिघल न जाएं। सो हम पकड़े रहते हैं दूसरों को। पति पत्नियों को पकड़े हुए हैं, पत्नियां पतियों को पकड़े हुए हैं। और एक जन्म में ही नहीं, कहते हैं कि अगले जन्म में भी, जन्मों-जन्मों तक संग साथ रहेगा।
लोग एक-दूसरे के प्रेम में पड़ जाते हैं तो कहते हैं कि एक जन्म से ही काम नहीं चलेगा, जन्मों जन्मों तक साथ रहेंगे। कल का जिनको भरोसा नहीं है, वे जन्मों-जन्मों की बात कह रहे हैं। ये ही सज्जन कल तलाक देने के लिए अदालत में खड़े मिल जाएंगे। मगर कभी एक दिन पहले कह रहे थे कि जन्मों- जन्मों तक।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी प्रेयसी को कहा कि मैं तेरे लिए मृत्यु का
भी सामना कर सकता हूं। मैं तेरे लिए क्या नहीं कर सकता! अरे मौत से जूझ जाऊं!
संयोग की बात, दूसरे दिन दोनों जंगल में घूमने गए थे कि एक चीता निकल आया झाड़ी में से। मुल्ला एकदम प्रेयसी के पीछे छिप गया। प्रेयसी ने कहा: "यह क्या करते हो नसरूद्दीन? तुम तो कहते थे--तेरे लिए मौत का सामना कर लूंगा?"
मुल्ला नसरूद्दीन ने कहा कि निश्चित, तेरे लिए मौत का सामना कर लूंगा। लेकिन यह चीता जिंदा है। मरा हुआ होता तो देखती, कैसा सामना करता! वह हाथ चलाता!
उस प्रेयसी से तो मामला खतम हो गया उसका, कि ऐसे आदमी से कौन नाता बांधे! यह दगा दे गया। मौके पर काम नहीं आया। दूसरी प्रेयसी से उसने कहा कि मेरा प्रेम अमर है, जन्मों-जन्मों तुझे प्रेम करूंगा! उस प्रेयसी ने कहा कि नसरुद्दीन, मैंने तुम्हारे संबंध में कुछ बातें सुन रखी हैं। तुम सच कहते हो कि तुम्हारा प्रेम अमर है? उसने कहा कि निश्चित, मैं जन्मों- जन्मों तुझसे प्रेम करूंगा। सातवीं मंजिल पर बैठे हुए थे मकान की, उसने कहा: "तो कूद जाओ अच्छा।" उसने कहा: "यह मैं नहीं कर सकता। मैंने तुझसे पहले ही कह दिया कि मेरा प्रेम अमर है, मैं मर नहीं सकता। कभी नहीं! मैं सदा-सदा तुझे प्रेम करूंगा, मैं मर नहीं सकता। मेरा प्रेम अमर है।"
लोग नाते-रिश्ते बना रहे हैं, अमरता के जाल गूंथ रहे हैं। एक-दूसरे को झूठे आश्वासन दे रहे हैं, भरोसे दे रहे हैं। भीतर जाएंगे तो अकेले हो जाएंगे। और भीतर डर लगता है, कि पता नहीं, क्या हो!
फिर भीतर जब कोई पहली दफा प्रवेश करता है तो अधंकार ही मिलता है, प्रकाश नहीं मिलता। प्रकाश तो अंधकार को खोदते-खोदते मिलता है। हमने जन्मों-जन्मों तक तो अधंकार ही इकट्ठा किया है, उसकी पर्ते इकट्ठी हो गयी हैं। गहरी खुदाई करनी पड़ेगी। जैसे कोई कुआं खोदता है, तो एकदम से पानी

नहीं मिल जाता। यद्यपि पानी है, लेकिन पहले तो कंकड़-पत्थर आएंगे हाथ, कूड़ा- कचरा आएगा हाथ, गंदी मिट्टी हाथ आएगी, फिर सूखी मिट्टी हाथ आएगी, फिर गीली मिट्टी हाथ आएगी, फिर गंदा पानी हाथ आएगा। ऐसा खोदते गए, खोदते गए, खोदते गए तो एक दिन निर्मल झरने उपलब्ध होंगे। ऐसी ही अंतर-खुदाई करनी होती है। उतनी प्रतीक्षा नहीं है हम में। उतना धैर्य नहीं है हम में। हम चाहते हैं सब जल्दी हो जाए, सब तत्क्षण हो जाए। कोई दूसरा कर दे। कोई दूसरा कर दे, इस कारण ही तो हम पंडितों पुरोहितों के जाल में पड़े हैं। हम सोचते हैं ये हमारे लिए प्रार्थना कर लें, ये हमारे लिए पूजा कर लें।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं: "हमारे लिए आप परमात्मा से प्रार्थना करें।"
मैंने कहा: यह भी खूब रही! पाप तुम करो, प्रार्थना मैं करूं! पाप करते वक्त नहीं आते मुझसे कहने। प्रार्थना मैं करूं! प्रार्थना तुम्हें करने योग्य लगती नहीं, यह किसी और पर टाल दो, यह बोझ किसी और पर रख दो। और मेरी प्रार्थना तुम्हारे कैसे काम आएगी?
एक सज्जन आते हैं, वर्षों से आते हैं। बस उनका एक ही स्वर हमेशा का-पैर छूकर कहते हैं कि बस आपका आशीर्वाद चाहिए! अरे आपके आशीर्वाद से क्या नहीं हो सकता! मुझे न ध्यान करना है, न मुझप्रार्थना करनी है। मुझे तो बस आपका आशीर्वाद चाहिए। मैंने उनसे कहा कि अगर तुम्हें मेरे आशीर्वाद पर इतना भरोसा है तो तुम ऐसा करो, दुकान भी बंद कर दो, धंधा भी बंद कर दो। कहो कि क्या करना धंधे का, क्या करना दुकान; मुझे तो आपका आशीर्वाद चाहिए! उन्होंने कहा: "यह जरा मुश्किल है।"
तो मैंने कहा कि तुम समझते हो भलीभांति कि धंधा छोड़ा, दुकान छोड़ी तो मेरे आशीर्वाद से क्या होगा-धंधा खतम, दुकान खतम! जो तुम करना चाहते हो वह तो तुम खुद ही कर रहे हो और जो तुम नहीं करना चाहते, वह सोचते हो अगर मुफ्त मिल जाए तो क्या हर्ज! अरे मुफ्त मिले तो ले ही लो। अगर मुफ्त मिलता हो परमात्मा, तो कौन नहीं ले लेना चाहेगा! मगर मुफ्त!
श्रम करने को कोई राजी नहीं। और भीतर श्रम करना होगा, साधना करनी होगी। उड़ियो पंख पसार! पंख उड़ाने, फड़फड़ाने होंगे। और जन्मों-जन्मों से तुमने हिलाए भी नहीं, तो तुम भूल ही गए ही पंख हैं भी तुम्हारे पास।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो पक्षी बहुत दिन तक पींजड़े में बंद रह गया, उसको तुम पींजड़े से छोड़ दो, वह उड़ नहीं सकता; वह भूल ही गया कि उसके पास पंख हैं। अगर उड़ने की कोशिश करेगा तो शायद गिर पड़े, फड़ाफड़ा कर गिर पड़े। अक्सर तोते जो पींजड़ों में कुछ दिन तक रह गए हैं, छोड़ दिए जाने पर जल्दी ही मर जाते हैं। या तो कोई बिल्ली खा जाएगी, या कोई चील झपट्टा मार देगी। अपने को बचा नहीं सकते, क्योंकि वे भूल ही गए कि उनके पास पंख हैं। विस्मरण हो गया। बीच में बड़ा पर्दा पड़ गया विस्मरण का।
तुम कब से अपने भीतर नहीं गए हो, याद है? सोचोगे तो पता चलेगा कि कभी
गए ही नहीं। जब कभी नहीं गए भीतर, तो आज एकदम से जाने में भय लगेगा। अज्ञात में प्रवेश करने में भय लगता है।
इसलिए केवल शिष्यों से यह बात कही जा सकती है। शिष्य का अर्थ होता है, जिसमें साहस है।
अब हम सांची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार!
छुटि जैहो या दुक्ख तें, तन-सरवर के पार।"
अगर खोल सको पंख अपने, उड़ सको अपने स्वभाव में, उड़ सको अपने स्वरूप में, अपनी निजता में, तो हो जाओगे दुख के पार, हो जाओगे इस शरीर के सरवर के पार। यह भवसागर पार हो जाएगा।
ये प्यारे वचन हैं। ये बहुमूल्य वचन हैं।
आनंद मैत्रेय, तुमने पूछा कि इसका अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें! अभिप्राय तो सीधा साफ है, लेकिन अकेला अभिप्राय समझने से कुछ भी न होगा।
अनुभव करना होगा। अनुभव ही एकमात्र अभिप्राय समझा सकता है। मैं अर्थ समझा दूंगा, मगर मेरा अर्थ मेरा अनुभव होगा। तुम सुन लोगे, शब्द तुम्हारे कान तक पहुंच जाएंगे, अनुभव नहीं पहुंचेगा। तुम्हें पंख खोलने पड़ेंगे।
तुम्हें अंतर्यात्रा करनी होगी।

इशारे मैं दे सकता हूं, इंगित मैं दे सकता हूं। कैसे पंख फड़फड़ाओ, कैसे पहला कदम भीतर उठाओ-ये सब सूचनाएं तुम्हें दी जा सकती हैं। मगर यात्रा तुम्हें करनी होगी, कोई ओर तुम्हारे लिए यात्रा नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति को परमात्मा तक स्वयं ही चलकर पहुंचना होता है; यह यात्रा उधार नहीं हो सकती।

दूसरा प्रश्न: ओशो,
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल
जाना है किधर मालूम नहीं
आगाज़े.-सफर पर नाज़ां हैं
अन्जामे-सफर मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल...

कब जाम भरे, कब दौर चले
कब आए इधर मालूम नहीं
उट्ठे भी अगर, ठहरे भी कहां, साकी की नज़र मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल...

हम अक्ल की हद से भी गुजरे, सहरा-ए-जुनूं भी छान लिया अब और कहां ले जाएगी
साकी की नज़र मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल...

मुमकिन हो तो एक लमहें के लिए तकली.फे तबस्सुम कर लीजे हममें से अभी तक कितनों को मफहूमे सहर मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल...

जज़बात के सौ आलम गुजरे
एहसास की सदियां बीत गईं आंखों से अभी उन आंखों तक कितना है सफर मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल...

जाना है किधर मालूम नहीं
आ.गाज़े-सफर पर नाज़ां हैं
अन्जामे-सफर मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल...

स्वभाव! संन्यास का यही अर्थ है--एक अज्ञात यात्रा। भीतर चलना ऐसा नहीं है जैसा बाहर चलना होता है। बाहर तो सीधे-साफ रास्ते हैं। मील के पत्थर लगे हैं। नक्शे उपलब्ध हैं। अतंर्यात्रा तो आकाश की यात्रा है। अभी-अभी धनी धरमदास का पद तुमने सुना ही-उड़ियो पंख पसार! वह आकाश की यात्रा है। आकाश में रास्ते नहीं होते। पगडंडियां भी नहीं होतीं। बनाना भी चाहो तो नहीं बन सकतीं। मील के पत्थर भी नहीं होते। पक्षी आकाश में उड़ते हैं तो उनक पद चिन्ह भी नहीं छूट जाते।
बुद्ध ने कहा है कि बुद्धों का कोई पद-चिह्न नहीं छूट जाता, क्योंकि उनकी यात्रा आकाश की यात्रा है। इसलिए कोई चाहे कि उनके पद-चिह्नों पर चल सके तो नहीं चल सकता। पद-चिह्न बनते ही नहीं आकाश में। तो ऐसे ही चलना होता है अज्ञात में। मंजिल साफ नहीं होती, बहुत धुंधली होती है। सिर्फ एक प्रबल

अभीप्सा होती है, प्राणों में एक प्यास होती है। जल है भी या नहीं, यह भी पक्का नहीं। मगर इतना भर भरोसा होता है कि अगर प्यास है तो जल भी होगा ही। क्योंकि इस जीवन का यह नियम है: यहां भूख है तो भूख के पहले भोजन है। तुमने देखा नहीं, मां के पेट में बच्चा आता है तो जैसे ही बच्चा पैदा होता है वैसे ही मां के स्तन दूध से भर जाते हैं! बच्चे के आते आते, अभी बच्चा आ ही रहा है कि तैयारी हो गयी। अभी बच्चा पैदा भी नहीं हुआ और स्तन दूध से भर गए। अभी बच्चे की भूख भी नहीं जगी और भोजन तैयार हो गया। मां के पेटे में बच्चे की आंखे तैयार हो जाती हैं; अभी देखने को कुछ भी नहीं है। पैदा होगा, तब आंखें खुलेंगी। तब सारा दृश्य, सारा जगत देखने को होगा।
इस जगत का नियम यह है, शाश्वत नियम यह है कि यहां जिस बात की भी अभीप्सा है, अभीप्सा के पहले ही उसका कुछ आयोजन है। यह कोई अराजकता नहीं है। यहां एक गहरी अन्तर-व्यवस्था का नाम ही धर्म है। धर्म का अर्थ है वह नियम, जो सारे जीवन को सम्हाले हुए है। अगर तुम्हारे भीतर सत्य की प्यास है तो सत्य होना ही चाहिए। तो चलना तो ऐसा ही होगा।
"हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल,
जाना है किधर मालूम नहीं।"
मालूम हो भी नहीं सकता। और जिसने सोचा हो कि पहले से सब मालूम कर लेंगे तब चलेंगे, वह चल नहीं सकता। वह कायर है। वह तो ऐसा आदमी है जो कहता है कि जब तक मैं तैरना न सीख लूं तब तक पानी में न उतरूंगा। मगर तैरना सीखोगे कैसे, अगर पानी में न उतरोगे? पानी में उतरोगे, तो ही तैरना सीखोगे। बिना पानी में उतरे कोई तैरना सीख नहीं सकता।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि जब तक हमें पूरा पक्का न हो जाए
कि ध्यान से उपलब्ध क्या होगा, इसका पूरा प्रमाण न मिल जाए, तब तक हम ध्यान न करेंगे। तो मैं उनसे कहता हूं: तुम फिर ध्यान कभी भी न कर सकोगे, क्यों कि ये बातें प्रमाण की नहीं हैं। तुम्हारे भीतर अभीप्सा हो तो तलाश देखो, खोज देखो। इतना तुमसे कह सकता हूं कि मैंने खोजा और पाया। इतना तुमसे कह सकता हूं कि जिन्होंने भी खोजा उन्होंने पाया। जिन खोजा तिन पाइयां! लेकिन खोजने वाले को इतना दुस्साहस तो करना ही होता है कि एक दिन चल पड़ना होता है-सिर्फ अभीप्सा के आधार पर, आकांक्षा के आधार पर, प्यास के आधार पर। "हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल!"
भावना से चलना होता है, तर्क से नहीं। हृदय से चलना होता है, बुद्धि से नहीं। प्रेम से चलना होता है, प्रमाण से नहीं। तर्क से नहीं चलना होता। जो तर्क से चलना चाहेगा, चलता ही नहीं, किनारे पर ही खड़ा रह जाएगा। वह तो विचार ही करता रहेगा, सोच-विचार में ही उलझा रहेगा। वह तो कदम भी नहीं उठा सकता। पहला कदम भी नहीं उठा सकता।
आ.गाज़े-सफर पर नांज़ा हैं,
अन्जामे-सफर मालूम नहीं।"
बस यही जरूरी भी है। यही संन्यास की आधारशिला है कि यात्रा के प्रारंभ पर नाज होना चाहिए, कि हम चल पड़े, कि हमने हिम्मत की, कि हमने साहस जुटाया, कि हमने नाव छोड़ दी अनंत सागर में; अब दूसरा किनारा है भी या नहीं, क्या पता! मगर कहीं एक किनारा होता है? किनारे दो होते ही हैं। दिखे कि न दिखे, धुंध में छिपा हो कि इतने दूर हो कि वहां तक आंख न पहुंचती हो, मगर किनारे तो दो ही होते हैं। दूसरा किनारा भी है। पर अभी तो सिर्फ श्रद्धा, कि दूसरा भी होगा। इसका कोई निर्णीत निश्चय आज नहीं हो सकता।
नाव छोड़नी पड़ती है और तूफान भी है। और इस किनारे पर सुरक्षा भी है, यह
भी ख्याल रखना। नाव बंधी हो किनारे पर, डूबने का डर नहीं है। तिरने की संभावना नहीं है, डूबने का भी डर नहीं है। और जब तैरना चाहोगे, तिरना चाहोगे तो डूबने का खतरा उठाना ही पड़ेगा। हालांकि इतना तुमसे मैं कहना चाहूंगा कि जो हिम्मत से चल पड़े हैं, अगर वे डूब भी जाएं, मझधार में भी डूब जाएं तो भी उन्हें किनारा मिल जाता है। उन्हें डूबने से भी किनारा मिल जाता है। एक ऐसा किनारा भी है जो डूबने से ही मिलता है। एक ऐसा किनारा भी है जो मिटने से ही मिलता है। एक ऐसी पूर्णता है जो शून्य होने से मिलती है। एक ऐसा जीवन है जो अहंकार की मृत्यु से ही उपलब्ध होता है।

"हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल,
जाना है किधर मालूम नहीं
आ.गाज़े-सफर पर नाजां हैं
अन्जामे-सफर मालूम नहीं।"

किसको मालूम है, मालूम हो भी कैसे सकता है अन्जामे-सफर, कि अंत क्या होगा यात्रा का? सिर्फ भरोसा हो सकता है, श्रद्धा हो सकती है; प्रमाण तो कुछ भी नहीं हो सकता। जिन्होंने पा लिया है, उनकी मौजूदगी में प्रीति जग सकती है, श्रद्धा उमग सकती है, प्यास पैदा हो सकती है, मगर प्रमाण नहीं मिल सकता।
बुद्ध से किसी ने पूछा है कि क्या आप प्रमाण दे सकते हैं परम सत्य का? उन्होंने कहा: "नहीं। प्यास दे सकता हूं, प्रमाण नहीं।" और प्यास ही असली चीज है। और प्यास सबके भीतर है। सदगुरू का काम है कि उसे प्रज्ज्वलित कर दे, उसमें ईंधन डाल दे। सदगुरु के शब्द इंर्धन बन जाते हैं। उसकी मुद्रा, उसकी भावदशा, उसकी उपस्थिति ईंधन बन जाती है। तुम्हारे भीतर एक प्यास प्रज्ज्वलित होकर जलने लगती है; पैर तड़फने लगते हैं चल पड़ने को; नाव छूटने को आतुर होने लगती है; जंजीरें टूटने लगती हैं अपने से। दूसरे किनारे की अहर्निश पुकार आने लगती है, कि आओ! जाना ही होगा! ऐसा आमंत्रण सघन हो उठता है, कि सब दांव पर लगाने की तैयारी हो जाती है।

"कब जाम भरे कब, दौर चले
कब आए इधर मालूम नहीं
उट्ठे भी अगर, ठहरे भी कहां,
साकी की नजर मालूम नहीं।"

कुछ भी पहले से तय नहीं हो सकता, स्वभाव। काश तय होता सब तो बात सस्ती
हो जाती। तय होता तो सांसरिक हो जाती। तय होता तो बीमा-कम्पनी बीमा कर देती। तय नहीं हो सकता है। यही तो मजा है, यही तो राज है, यही तो रहस्य है। कुछ पक्का नहीं है-"कब जाम भरे, कब दौर चले!"
जाम लिए बैठे रहो, प्रतीक्षा करो। जाम को साफ करो। अपनी अंजुलि को निखारो और राह देखो-शांत, मौन, प्रार्थनापूर्ण!
"कब जाम भरे, कब दौर चले।"
हमारे हाथ में नहीं कि कब दौर चले। मगर एक बात पक्की है कि जब भी किसी
के भीतर का पात्र तैयार हो जाता है तो दौर चलता है। सदा चला है। तुम्हारे साथ ही अपवाद नहीं हो सकता। जब भी कोई राजी हो गया है परमात्मा को झेलने को, परमात्मा उतर आया है। जब तक न उतरे, जानना कि अभी हम राजी न थे; जानना कि अभी हम तैयार न थे; हमारे पात्र में कहीं खामी थी, कहीं छिद्र थे। देर लगती है हमारे कारण, उसके कारण नहीं।
लोगों ने कहावत बना रखी है कि देर है अंधेर नहीं। देर भी नहीं है, अंधेर भी नहीं है। अगर देर है तो हमारे कारण और अगर अंधेरा है तो भी हमारे कारण। उसकी तरफ से न देर है न अंधेर है। वह तो सुराही लिए खड़ा ही हुआ है। साकी तो मौजूद है, तुम्हारे सामने खड़ा है, मगर तुम आंख बंद किए बैठे हो। और तुम्हारा पात्र अभी इस योग्य नहीं कि उसमें अमृत ढाला जा सके। उसमें तुम जहर ही भरते रहे-घृणा का, ईर्ष्या का, माया का, मोह का, मत्सर का, क्रोध का, घृणा का, लोभ का। तुमने सब तरह के जहर उसमें भरे हैं। तुम्हारे पात्र में जगह भी कहां है?

झेन कथा है, प्रसिद्ध झेन फकीर नानिन के पास एक विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ने जाकर प्रार्थना की कि मुझे ईश्वर के संबंध में कुछ समझाएं, निर्वाण के संबंध में कुछ समझाएं। यह ध्यान का राज क्या है, इस संबंध में कुछ समझाएं!

उसने तो एक सांस में सब कुछ पूछ डाला-ईश्वर, निर्वाण, ध्यान; कुछ बचा
ही नहीं। फकीर ने क्या कहा? फकीर ने कहा: "आप थके मांदे, पहाड़ चढ़ कर आए, माथे पर पसीने की बूंदें, बैठे जाएं, थोड़ा सुस्ता लें। तब तक मैं चाय बना दूं। एक प्याली चाय पी लें, फिर फुर्सत से बात हो। थोड़ा यात्रा का बोझ कम हो जाए, थकान मिट जाए, थोड़ा विश्राम हो जाए, तो फिर बात कर लेंगे। और यह भी हो सकता है कि शायद चाए पीते-पीते ही बात हो जाए।"
अरे कौन जाने--नानिन ने कहा कि प्याली में चाय ढालते-ढालते ही बात हो जाए! प्याली में चाय ढालने में ही बात हो जाए।"
प्रोफेसर तो थोड़ा हैरान हुआ कि आदमी पागल तो नहीं मालूम होता! निर्वाण, ईश्वर, ध्यान-प्याली में चाय ढालते-ढालते बात हो जाएगी! मैं भी कहां चला आया! इतनी लम्बी यात्रा करके आया हूं। भर दोपहरी में पहाड़ा चढ़ा हूं। ठीक, लेकिन अब आ ही गया हूं तो कम से कम चाय तो पी ही लूं। और तो कुछ ज्यादा आशा नहीं दिखती।
नानिन ने चाय बनायी, प्याली हाथ में दी। प्याली में केतली से चाय ढाली
और चाय ढालता ही गया। प्याली भर गयी, प्याली से चाय गिरने लगी। बसी भी भर गयी। फिर तो बसी से भी चाय गिरने को होने लगी तो प्रोफेसर चिल्लाया कि रूकिए, आप होश में हैं, पागल हैं! अब चाय फर्श पर गिर जाएगी। अब एक बूंद भी चाय इस प्याली में नहीं रखी जा सकती।
फकीर ने कहा: "मैं तो सोचता था कि तुम में बुद्धि नहीं है, लेकिन तुम बुद्धिमान आदमी हो! तुम्हें यह बात समझ में आ गयी कि प्याली इतनी भरी है कि इसमें एक बूंद भी चाय नहीं बन सकती। और तुम्हारी भीतर की प्याली में तुम सोचते हो निर्वाण समा सकता है, ध्यान समा सकता है, ईश्वर समा सकता है? तुमने कभी नजर की कि भीतर की प्याली कितनी भरी है? लबालब भरी है! अरे, मेरे फर्श पर चीजें गिर रही हैं तुम्हारे भीतर की प्याली से! तुम जब जाओगे, मुझे फर्श की घिस-घिस कर सफाई करनी पड़ेगी। पहले प्याली साफ करके आओ, फिर पूछना ऐसे गहरे सवाल। ये सवाल नहीं हैं कि जिनके कोई भी जवाब दे दे। पात्रता चाहिए!"
"कब जाम भरे, कब दौर चले!"
स्वभाव, जाम भी भरेगा, दौर भी चलेगा। "कब आए इधर मालूम नहीं!" आना भी होगा उसका। आया ही हुआ है। "उट्ठे भी अगर, ठहरे भी कहां!" मत घबड़ाओ कि साकी कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें छोड़ कर ही चला जाए, कि किसी दूसरे के पात्र में ढाल दे और तुम्हारा पात्र खाली ही रह जाए। साकी की नजर मालूम नहीं, कहां रूके, कहां न रूके, हम पर रूके न रूके।
नहीं, न वहां देर हैं न अंधेर है परमात्मा की तरफ से। परमात्मा चाहो
तो परमात्मा कहो, जीवन का परम नियम कहना चाहो तो परम नियम कहो--तुम्हारी मौज। ये सिर्फ शब्दों की बातें हैं। धर्म कहना चाहो तो धर्म हो। ये सूफियों के शब्द हैं-"साकी की नजर"। ये सूफियों के शब्द हैं--"जाम", "दौर का चलना"। ये सूफियों के प्रतीक-शब्द हैं। यह सूफियाना भाषा है। मगर बड़ी प्यारी! बड़े पते की बातें हैं!
मत घबड़ाओ! बस अपने पात्र को निखार कर रखो। तुम्हारी श्रद्धा में कमी न हो, तुम्हारा समर्पण पूरा हो। फिर बात होती है। होना अपरिहार्य है।
"कब जाम भरे, कब दौर चले
कब आए इधर मालूम नहीं
उट्ठे भी अगर, ठहरे भी कहां
साकी की नजर मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल... ।"
बस तुम चलते चलो। "हम अक्ल की हद से भी गुजरे!" गुजरना ही पड़ता है। अक्ल की हद में जो रह गए, वे तो व्यर्थ जीए और व्यर्थ मरे। अक्ल की हद तो बड़ी छोटी हद है। खोपड़ी की बिसात कितनी! बड़ी छोटी सी चीज है।
हम अक्ल की हद से भी गुजरे
सहरा-ए-जुनूं भी छान लिया
अब और कहां ले जाएगी
साकी की नज़र मालूम नहीं

हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल... ।"
जहां ले जाए उसकी नजर-अक्ल की हद से गुजारेगी, पागलपन में भी ले जाएगी, दीवानेपन में भी ले जाएगी-लेकिन ध्यान रखना, अक्ल के भी पार जाना होता है और दीवानेपन के भी पार जाना होता है! अक्ल से पार जाने के लिए दीवानापन काम आ जाता है। दीवानापन ऐसा ही है जैसे पैर में एक कांटा लगा हो और दूसरे कांटे से हम पहले कांटे को निकाल लें। इसलिए भक्त दीवाना हो जाता है। दीवानेपन से अक्ल का कांटा निकल जाता है। मगर फिर दीवानेपन को मत पकड़ लेना। दोनों कांटे बेकार हैं। दोनों कांटे फेंक देना। अक्ल के भी पार जाना है और दीवानेपन के भी पार जाना है। तभी पहुंचना होता है। दीवानापन भी अक्ल का ही दूसरा पहलू है; इसका ही नकारात्मक पहलू है।
और जहां ले जाए उसकी नजर, चलते चलो। अपने पर भरोसा करके बहुत तो देख लिया, कहां पहुंचे? अब उस अज्ञात पर भरोसा करके देखो। और उस अज्ञात पर भरोसे का मजा ही और है!
"मुमकिन हो तो एक लमहें के लिए
तकली.फे-तबस्सुम कर लीजे
हममें से अभी तक कितनों को
मफहूमे-सहर मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल...
जज़बात के सौ आलम गुजरे
एहसास की सदियां बीत गईं
आंखों से अभी उन आंखों तक
कितना है सफर मालूम नहीं
हम चल तो पड़े हैं जज़बा-ए दिल... ।"
सफर बहुत नहीं है। आंखों में आंखें पड़ी हैं, सामने ही आंखें हैं। मगर हमारी आंखें पर पर्दे हैं, परमात्मा की आंखों पर कोई पर्दे नहीं हैं और न कहीं परमात्मा बहुत दूर है। हमारी आंखों पर पर्दे हैं। हमारी आंखों पर जाले हैं। हमारी आंखों पर न मालूम कितने जाल हैं-सिद्धांतो के, शास्त्रों के, शब्दों के, न मालूम कैसे-कैसे जाल हैं! ये सारे जाल काट देने जरूरी हैं। एक छोटे बच्चे की तरह सरल भाव पैदा कर लेना जरूरी है।
धन्यभागी हैं वे छोटे बच्चों की भांति सरल हो जाते हैं। ध्यान की पूरी प्रक्रिया ही यही है कि तुम्हें छोटे बच्चों की भांति सरल कर दे, निर्मल कर दे, स्वच्छ कर दे, दर्पण से सारी धूल पोंछ डाले। फिर देर नहीं लगती, तत्क्षण आंखों से आंखें मिल जाती हैं। तत्क्षण हृदय से हृदय मिल जाता है। तत्क्षण बूंद उसके सागर में लीन हो जाती है।
और लीन होने में तुम कुछ खोते नहीं, ख्याल रखना। लीन होने में तुम पाते ही हो। बूंद की तरह मिट जाते हो, लेकिन सागर हो जाते हो। यह कोई खोना हुआ? यह तो पाना ही पाना है।
परमात्मा के रास्ते पर पाना ही पाना है, लेकिन अगर बुद्धि से पूछा तो मुश्किल खड़ी हो जाती है। बुद्धि कहती है: "खोना ही खोना है। सम्हलो, बचो!" बुद्धि की दृष्टि से सब खोना ही खोना है; हृदय की दृष्टि से पाना ही पाना है।
ध्यान तुम्हें बुद्धि से हटाता है और हृदय में ले आता है। और जैसे- जैसे तुम हृदय के करीब आते हो वैसे-वैसे ही पात्रता निर्मित होती है। संन्यास का केवल इतना ही अर्थ है, स्वभाव-सरलता, श्रद्धा; यह जो अनंत अस्तित्व है, इस पर आस्था। और वह आस्था मुक्तिदायी है, निर्वाणदायी है, आनंददायी है!

आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
दूसरा प्रवचन

क्रांति का आह्वान

पहला प्रश्न: ओशो, परिवार के भीतर शीलभंग को कैसे निर्मूल किया जाए
और कैसे स्त्रियों को उससे लड़ने का बल प्राप्त हो? निंदा शीलभंग करने वाले की की जानी चाहिए, उसकी नहीं जिसका शीलभंग किया जाता है। लेकिन भारत में आक्रांत की निंदा, होती है और आक्रामक अपना खेल अबाध जारी रखता है और स्त्री मूक होकर दुख झेलती है। छोटी लड़की तक को यह दुख चुपचाप झेलना पड़ता है, जिस कारण आगे चल कर वह अपने पति के साथ वैवाहिक सुख तक भोगने से वंचित रह जाती है। पुरुष बलात्कार, शीलभंग, हिंसा आदि अपनी पाशविक प्रवृत्तियों पर काबू पाने में समर्थ क्यों नहीं हो पाता है?

यश कोहली! यह प्रश्न जटिल है। इसकी जड़ों में जाना होगा। शायद जड़ों तक जाने की तुम्हारी स्वयं भी हिम्मत न हो। ऊपर-ऊपर से देखने पर जो समस्या मालूम होती है, वह समस्या नहीं है, केवल समस्या के बाह्य लक्षण हैं। समस्या गहरे में है और ऊपर से कितनी ही लीपा-पोती करो, समस्या बदलेगी नहीं। लक्षणों को बदलने से कोई समस्या कभी बदली नहीं। जड़ काटनी होती है। और जड़ के संबंध में हमारी मनोदशा बड़ी विरोधाभासी है। जड़ को तो हम पानी देते हैं और पत्तियों को काटते हैं। जड़ को पानी देंगे, पत्तियों को काटेंगे, तो परिणाम यही होगा कि पत्तियां और घनी हो जाएंगी।
इस देश में पांच हजार वर्षों से सदाचार की शिक्षा दी जा रही है, परिणाम क्या है, नैतिकता का इतना धुआंधार प्रचार किया गया है, परिणाम क्या है? लेकिन मूल में जाने की हमारी हिम्मत नहीं पड़ती। और जब भी कोई लक्षण कोईप्रकट होता है, हम लक्षण को दबाने में लग जाते हैं। जैसे किसी आदमी को बुखार चढ़ा, अब बुखार का लक्षण तो है कि उसका शरीर गर्म हो जाएगा। लेकिन यह केवल लक्षण है, बीमारी नहीं। और यह लक्षण दुश्मन नहीं है। यह लक्षण तुम्हारा मित्र है। अगर शरीर गर्म न हो तो तुम्हें पता ही न चलेगा कि भीतर बीमारी है। भीतर की बीमारी की खबर तुम्हें मिल सके, इसलिए यह शरीर का आयोजन है कि वह शरीर को उत्तप्त कर दे, ताकि तुम्हें पता चल जाए, तुम कुछ कर सको। लेकिन ऐसे मूढ़ हैं और हम उन मूढ़ों में अग्रणीय हैं इस पृथ्वी पर कि हम इस लक्षण को बीमारी समझ लेंगे। तो फिर डुबाओ आदमी को ठंडे पानी में, बर्फीले पानी में, ताकि शरीर ठंडा हो जाए। शरीर तो ठंडा हो जाएगा, आदमी भी ठंडा हो जाएगा। समस्या तो नहीं मिटेगी। बीमारी तो नहीं मिटेगी, बीमार मिट जाएगा। यही हम कर रहे हैं।
इस समय जोर से चर्चा है, क्योंकि ये दुर्घटनाएं रोज बढ़ती जा रही हैं। बढ़ती जा रही हैं, ऐसा कहना शायद ठीक नहीं है; ये होती तो रोज रही हैं। लेकिन अखबारों के प्रचार, रेडियो के प्रचार, टेलीविजन के प्रचार, आधुनिक समस्याओं को तत्क्षण सारे देश में पहुंचा देने की सुविधा का परिणाम यह हुआ है कि हमें समस्याओं के प्रति जल्दी से खबर मिल जाती है। ये समस्यांए पुरानी हैं, नयी कुछ भी नहीं है, सदा होती रही हैं। लेकिन पता ही न चलता था। आज पता चलने लगा है। तो सारे देश के मन के सामने यह प्रश्न है।
तुम्हारा प्रश्न यश कोहली, महत्त्वपूर्ण है। लेकिन मुझे पता नहीं तुम कहां तक इसकी जड़ में जाने की तैयारी रखते हो। क्योंकि तुम्हारे प्रश्न में ही मुझे ऐसे संकेत मिलते हैं कि शायद जड़ में तुम जा न सकोगे। जैसे पहली बातः तुम इन वृत्तियों को "पाशविक वृत्ति" कहते हो। पाशविक वृत्ति कहना ही इन वृत्तियों को दबाने का उपाय है, बदलने का नहीं। सदियों से हमने इन वृत्तियों को पाशविक कहा है, जैसे कि पाशविक हो तो निंदित हो जाती है। पशु को भी भूख लगती है, तुम्हें भी भूख लगती है, तो भूख पाशविक हो गयी। पशु को भी प्यास लगती है, तुम्हें भी प्यास लगती है, तो प्यास पाशविक हो गयी। पशु भी सोता है, तुम भी सोते हो, तो सोना पाशविक हो गया। तो फिर पशु जो करता है, वह तुम मत करना, नहीं तो पाशविक हो जाओगे। तब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। तब तो सांस भी न ले सकोगे। सांस लेना भी पाशविक है। उठना, बैठना, चलना सब

पाशविक है। फिर पाशविक क्या नहीं है? तुम्हारा सारा जीवन ही निंदित हो जाएगा।
और तुम्हारा सारा जीवन निंदित किया गया है। निंदा का एक परिणाम होता
है कि आदमी दोहरा हो जाता है, उसके जीवन में दो द्वार हो जाते हैं। वह पाखंडी हो जाता है। बाहर के द्वार पर बंदनवार सजा लेता है, सुंदर फूलों की मालाएं लटका देता है, रंग बिरंगे बंदनवार, सुंगधित फूल, सुस्वागतम लिख देता है। यह द्वार असली नहीं है; इससे वह जीता नहीं। इस पर तो वह मेहमानों का स्वागत करता है। असली द्वार उसका पीछे से है, जहां से वह जीता है। लेकिन वह है पाशविक, उसको प्रकट कर सकता नहीं। उसको प्रकट करना निंदित होना है। तो हम अपने बैठकखानों को सजा लेते हैं और सारा घर गंदा।
इस देश में किसी के भी बैठकखाने को देख कर उसके घर के संबंध में अंदाज
मत लगा लेना। और बैठकखाने में कोई जीता है? बैठकखाने में जो बस मेहमानों से मिलने का इंतजाम रहता है। बैठकखाने जीने के लिए नहीं होते। जहां जीता है, वहां गंदगी है। जहां जीता है, वहां सब कूड़ा-कर्कट है। सब बैठकखाने का कूड़ा-कर्कट हटा कर सारे घर में इकट्ठा कर लिया है। वहां असली जिंदगी है। और बैठकखाना तो केवल दिखावा है। वह तो हाथी के दांत, दिखाने के और, खाने के और।
आदमी की जिंदगी दोहरी हो गयी है। पाशविक कहोगे तो दोहरी हो ही जाएगी। आखिर कौन चाहता है कि कहे कि मैं पशु हूं! मगर आदमी भी पशुओं की ही प्रक्रिया का एक अंग है। श्रेष्ठतम पशु है, मगर है तो पशु ही! परमात्मा हो सके, ऐसी संभावना वाला पशु है, लेकिन है तो पशु ही। इसलिए मुझे पाशविक शब्द में कोई निंदा नहीं मालूम होती।
और "पशु" शब्द बड़ा महत्वपूर्ण भी है। पशु शब्द का अर्थ होता है: जो बंधन में पड़ा है। पाश में पड़ा हो, वह पशु। तो सिवाय बुद्धों को छोड़ कर सभी पशु हैं। सिर्फ जाग्रत पुरुषों को छोड़ कर सभी पशु हैं। धन का बंधन है, पद का बंधन है, मोह के बंधन है, लोभ के बंधन हैं, क्रोध के बंधन हैं--ये सब बंधन हैं। इस पृथ्वी पर बहुत थोड़े से ही मनुष्य हुए हैं जो पशुता के पार गए हैं। जिन्होंने परमात्मा को जाना है बस वे ही केवल पशुता के पार गए हैं। बाकी को तो उचित होगा कि वे अपनी पशुता को स्वीकार करें, क्योंकि स्वीकृति से रूपांतरण हो सकता है। जिस बीमारी को हम स्वीकार करते हैं उसे बदलने के लिए उपाय खोज सकते हैं। अस्वीकार ही कर दिया तो निदान से ही इनकार कर दिया, उपचार कैसे करोगे?
यश कोहली, तुम कहते हो: "पुरुष बलात्कार, शीलभंग, हिंसा आदि अपनी पाशविक वृत्तियों पर काबू पाने में समर्थ हो सकेगा?"
फिर यह भी थोड़ा सोचने जैसा है कि पशुओं में ऐसी वृत्तियां नहीं होतीं, जैसी वृत्तियां तुममें होती हैं। जैसे कोई पशु अपनी ही जाति के पशुओं को नहीं मारता, सिवाय मनुष्य को छोड़ कर। कोई सिंह किसी दूसरे सिंह की हत्या नहीं करता। कोई कुत्ता किसी दूसरे कुत्ते की हत्या नहीं करता। कुत्ते भी इतने गए-बीते नहीं होते। आदमी अकेला है जो दूसरे आदमियों को मारता है। इसको तुम पाशविक कहते हो? कौन पशु ऐसा है? तुम्हें पशुओं का सम्मान सीखना चाहिए। पशु तो ऐसा नहीं करते। यह होता ही नहीं पशुओं की दुनिया में। यही तो बड़ी गैर-पाशविक बात है। अगर पशुता ही बुराई का कारण हो, तो तो मनुष्य बड़े गजब का काम करता है जब वह आदमियों को मारता है, क्योंकि यह गैर-पाशविक काम है। जी खोल कर करो, क्योंकि इससे तुम पशुओं से पार जा रहे हो! नीचे गिर रहे हो भला, मगर कम से कम पशु तो नहीं हो!
पशु कुछ काम करते ही नहीं, जो आदमी ही करता है। जैसे कोई पशु आत्महत्या नहीं करता। तुमने सुना कि किसी कुत्ते ने आत्महत्या कर ली, कि किसी कबुतर ने आत्महत्या कर ली, कि गुटर-गूं गुटर-गूं करते थक गए, ऊब गए और लगा ली फांसी? आत्महत्या तो आदमी ही करता है। यह काम तो बड़ा गजब का है। यह तो तुम्हें एकदम पशुओं के पार ले जाता है।
कोई पशु बलात्कार नहीं करता। कोई पशु बलात्कार नहीं करता-सिवाय उन पशुओं को छोड़ कर, जो आदमियों के सत्संग में बिगड़ जाते हैं! अजायबघर में रहने वाले पशुओं की गिनती मैं नहीं कर रहा हूं, या जिन कुत्तों को तुम पाल

लेते हो उनकी गिनती मैं नहीं कर रहा हूं। लेकिन पाकृतिक अवस्था में जंगल में कोई पशु बलात्कार नहीं करता। तुमने देखा होगा पशुओं को। पुरुष स्त्री के पास जाता है। जब तक स्त्री की यौन ग्रंथि एक विशेष गंध नहीं देती। उसे, तब तक वह उससे-संभोग नहीं करता। वह जो गंध है वह स्त्री की स्वीकृति है। इसलिए पशु-पुरुष स्त्री की योनि को सूंघते हैं। जब तक स्त्री सूचना न दे, स्वीकार न दे... । गंध से सूचना देती है। एक खास गंध खबर दे देती है पुरुष को कि वह राजी है।
लेकिन हमने तो बहुत तरह की गंधे ईजाद कर ली हैं। हमने इतनी गंधे ईजाद
कर ली हैं कि आज तय ही करना मुश्किल है कि कौन सी गंध किस व्यक्ति की सहज गंध है। पुरुषों की स्त्रियां भी, जब किसी पुरुष में उत्सुक होती हैं संभोग के लिए तो उनकी योनि से वैसी ही गंध उठती है जैसी गंध पशुओं की योनियों से उठती है। लेकिन असंभव है उसे पहचानना। साबुनें हैं, डिओडरेंट हैं, परफ्यूम हैं--ये सब छिपाने के उपाय हैं। ये छिपाने के उपाय हैं ताकि पता न चल सके कि स्त्री हां भर रही है। ये हमारी जालसाजियां हैं। ये जालसाजियां हमें करनी पड़ीं, क्योंकि यह हो सकता है कि तुम्हारे घर एक मेहमान आए और तुम्हारी पत्नी की योनि से गंध उठने लगे उस मेहमान के लिए, फिर तुम क्या करोगे? नियमों का, कानूनों का कोई बंधन प्रकृति पर नहीं है। हो सकता है वह आतुर हो जाए, कामातुर हो जाए उस मेहमान के प्रति, तो तत्क्षण उसकी शरीर गंध देगा। लेकिन वह गंध तुम्हारी सारी सामाजिक व्यवस्था को तोड़ देगी। तो उस गंध को छिपाना जरूरी है। तो हम गंधों की पर्ते लेपे हुए हैं अपने ऊपर। फिर उनके ऊपर वस्त्रों को लपेटे हुए हैं, ताकि पता न चल सके। तो ऊपर-ऊपर शिष्टाचार चलता रहेगा।
अब जैसे अगर कोई पुरुष किसी स्त्री में उत्सुक हो जाए तो उसकी जननेंद्रिय तत्क्षण खबर दे देगी कि वह उत्सुक हो गया है। इसलिए वस्त्रों में ढांके रखना जरूरी है, ताकि ऊपर-ऊपर वह शिष्टाचार बताता रहे और भीतर-भीतर जलता रहे कामअग्नि में।
हमने मनुष्य को अप्राकृतिक कर दिया है। पाशविक नहीं, अप्राकृतिक। कोई पशु अजायबघरों को छोड़ कर होमोसेक्सुअल नहीं होते, समलैंगिक नहीं होते। हां, अजायबघरों में हो जाते हैं। अजायबघर की अजीब स्थिति है, इसलिए तो उसको अजायबघर कहते हैं। अब बंदरो को बंदरो के साथ रख दिया, उनको बंदरिएं मिलती नहीं, तो बंदर बंदरों पर हमला करने लगते हैं। मजबूरी है। कोई उपाय नहीं। उनकी नैसर्गिक वृत्ति को कोई तृप्ति नहीं मिल रही है, तो तृप्ति पाने के लिए कोई भी उपाय करेंगे।
जो हम मनुष्यों के साथ करते हैं, वही हम पशुओं के साथ करने लगे। लड़कों
को हॉस्टल में रख दिया, लड़कियों से अलग कर दिया। चौदह साल की लड़की मां बनने के योग्य हो गयी। उसके शरीर की ग्रंथियां संभोग के लिए योग्य हो गयीं। चौदह साल का युवक संभोग के योग्य हो गया। अब इन दोनों को हमने अजायबघरों में बंद कर दिया। लडका रहेगा लड़कों के हॉस्टल में। लड़की रहेगी लड़कियों के हॉस्टल में। और बड़े सख्त पहरे हमने बिठा दिए हैं कि लड़कियों के हॉस्टल में कोई लड़का प्रवेश नहीं कर सकता। करे भी प्रवेश तो रविवार के दिन, दिन में दस से बारह बजे तक-और वह भी अध्यापिकांए मौजूद रहेंगी, उनकी मौजूदगी में कुछ बातचीत करनी हो तो कर लो। और सबूत देना पड़ेगा कि भाई हूं, पिता हूं, रिश्तेदार हूं। अब इसके दुष्परिणाम होंगे। इसके दुष्परिणाम ये होंगे कि लड़के लड़कों के साथ ही लैंगिग व्यवहार शुरू कर देंगे। कौन जिम्मेवार है इसके लिए? तुम जिम्मेवार हो। लड़कों का क्या कसूर? लड़के क्या करें? कामवासना सजग हुई है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि अठारह साल की उम्र में कामवासना अपने शिखर पर होती है। और अठारह साल की उम्र में लड़का हॉस्टल में होता है, जहां स्त्रियों से मिलने का कोई उपाय नहीं। शादी होगी उसकी पच्चीस साल में, सत्ताइस साल में, अठाइस साल में, तब तक कामवासना उतार पर आने लगी। अठारह साल में अपने शिखर पर थी, तब तो वह जला-भुना, तब तो उसने न मालूम क्या-क्या किया! हस्तमैथुन करेगा। कोई पशु हस्तमैथुन नहीं करता, कोई जरूरत नहीं है। यह कोई पाशविक काम नहीं है; यह बड़ा महान मानवीय कार्य है--हस्तमैथुन। यह

कोई पशु नहीं करता। अगर तुम्हें पशुओं से ही तौल करनी है तो इस तरह के कामों का खूब प्रचार करो। महात्माओं को कहो "फैलाओ हस्तमैथुन लोगों में, क्योंकि यह काम तो सिर्फ आदमी ही करता है।"
धन्य है मनुष्य! बड़ेआविष्कारक हैं! लेकिन तुम मजबूर कर रहे हो। अठारह साल में जब कामवासना प्रगाढ़तम है, जब कि युवक एक रात में कम से कम चार से सात बार तक संभोग करने में योग्य है, तब तुम उसे जला रहे हो। अब यह युवक अगर किसी स्त्री को रास्ते पर धक्का दे दे, किसी की साड़ी ही खींच दे, कंकड़ ही मार दे, तो इसको तुम पाशविक व्यवहार कहोगे? मैं कहता हूं: यह तुम्हारा समाज मूढ़ है, जिसका यह परिणाम है। फिर जब यह जलती हुई आग... और वासना आग है। और इस आग को रूपांतरित करने के लिए तुमने युवकों को क्या दिया है? तुमने कोई कला दी उन्हें? तुमने कोई ध्यान दिया उन्हें? तुमने कुछ योग दिया उन्हें, कि वे इस अपनी कामाग्नि को परिवर्तित कर लें, रूपांतरित कर लें? वह तो कुछ नहीं दिया। हां, तख्तियां लटका दी हैं कि ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ जीवन है। तख्तियों से कुछ होता है? महात्मागण आते हैं, वे कहते हैं: "ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ जीवन है।" समझा रहे हैं महात्मागण कि ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ जीवन है। और महात्मागणों के जीवन में भी कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। सबको उनका जीवन भी पता है।
तुम्हारे ऋषि-मुनियों के जीवन में कोई ब्रह्मचर्य नहीं था। छोड़ो ऋषि- मुनियों के, तुम्हारे देवी-देवताओं के जीवन में कोई ब्रह्मचर्य नहीं है। और इन्हीं देवी देवताओं की पूजा चलती है। इनको तुम पाशविक नहीं करते, यश? और आदमी को पाशविक कहते हो! तुम्हारे पुराण उठा कर देखो। तुम्हारे धर्मशास्त्र जला डालने योग्य हैं, जिनकी तुम पूजा करते हो। अगर तुम्हें जड़ बदलनी है तो वहां जाना होगा। तुम्हारे सब देवी-देवता भ्रष्ट हैं। स्वर्ग में तुम्हारे देवता करते क्या हैं? नचा रहे हैं अप्सराओं को- उर्वशी नाच रही है, मेनका नाच रही है। और इतने से भी उनका मन नहीं भरता, तो ऋषि-मुनियों की पत्नियों को सताने आ जाते हैं। चंद्रमा उतर आता है छिप कर किसी ऋषि की... बेचारे ऋषि गए हैं नहाने ब्रह्ममुहूर्त में... तब मैं समझा कि क्यों ऋषियों को ब्रह्ममुहूर्त में नहाने भेजते हैं! भेज दिया अंधेरे में नहाने उनको तो देवी-देवता आ गए! अब देवता हैं तो वे तो कोई भी चमत्कार करें। तो वे ऋषि के वेश में आ गए। पत्नी समझी कि पतिदेव लौट आए हैं। वह तो बाद में पता चला जब पतिदेव लौटे नहा-धोकर। मगर तब तक सब मामला खतम ही हो चुका है। चंद्रमा उनकी स्त्री की इज्जत लूटकर चले गए। ये तुम्हारे देवी देवता हैं!
तुम जरा अपने सारे देवी-देवताओं की लिस्ट तो बनाओ और उनके नाम के आसपास उनके कृत्यों का उल्लेख तो करो! तुम चकित हो जाओगे। इनकी तुम पूजा कर रहे हो! सदियों से इनका गुणगान कर रहे हो! तुम्हारे वेद इनकी स्तुतियों से भरे हैं-"हे इंद्र देवता! हे चंद्रदेव! हे सूर्यदेव!" मगर इनकी कारगुजारियां तो देखो। और अगर साधारण आदमी यही काम करे, कि ऋषि-मुनि गए ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने को और उनकी स्त्रियों से मिलने पहुंच जाए, तो यह पाशविक व्यवहार कर रहा है! और तुम्हारे देवता दिव्य व्यवहार कर रहे हैं!
ये दोहरे मापदंड छोड़ने होंगे। यह बेईमानी छोड़नी होगी।
पशुओं में न तो हस्तमैथुन है, न बलात्कार है। हां, लेकिन दोनों बातें घटती हैं पशुओं में भी अजायबघर में। अजायबघर के जो लोग निरीक्षक हैं, वे लोग चकित हुए हैं कि क्या बात है, जगल में ये बातें नहीं होतीं, अजायबघर में क्यों होती हैं! बात सीधी साफ है, इसके लिए कोई बहुत बड़े शोधकार्य करने की जरूरत नहीं है। छोटी-मोटी बुद्धि का आदमी भी समझ ले कि बात सीधी साफ है। तुमने यहां वही काम कर दिया जो तुमने आदमियों के साथ किया। तुमने बांट दिए, यहां बंदरों को एक कटघरे में कर दिया, बंदरियों को दूसरे कटघरे में कर दिया। उपद्रव शुरू हो जाएगा। अड़चनें शुरू हो जाएंगी।
स्त्रियां भी हस्तमैथुन में पड़ जाती हैं। मगर स्त्रियां पकड़ी नहीं जातीं; उतनी आसानी से नहीं पकड़ी जा सकतीं जितनी आसानी से पुरुष पकड़े जा सकते हैं। क्योंकि स्त्रियों की जो यौन-तंत्र की व्यवस्था है, वह आंतरिक

है। पुरुषों की यौन-यंत्र की व्यवस्था बाह्य है। वे जल्दी पकड़े जा सकते हैं। इसलिए लोग सोचते हैं आमतौर से: अगर दो पुरुषों में बहुत दोस्ती हो और गले में हाथ डाल कर और फिल्मी गीत गाते हुए तुम उनको जाते देखो, तो शक होता है। मगर दो स्त्रियां खूब सहेलियां हों गहरी तो तुम्हें शक नहीं होता। क्यों? उनको कहते हैं, वे सहेलियां हैं। और ये पुरुष, इन पर शक होने लगता है। लेकिन जो इन पुरुषों में हो रहा है वही स्त्रियों में हो रहा है, कुछ फर्क नहीं है। यह दमित वासना मार्ग खोज रही है। यह वासना इतने मार्ग खोज सकती है कि आदमियों की तो बात छोड़ दो, यह वासना पशुओं तक अपने को पहुचा सकती है। चरवाहे अक्सर पकड़े गए हैं पशुओं के साथ संभोग करते, मगर सिर्फ चरवाहे। करेंगे क्या! अब कोई चरवाहा जिंदगी भर भेड़ों को ही चराता रहे! उसके जीवन में भी वासना जगती है और भेड़ों के अतिरिक्त और कोई उपलब्ध नहीं है।
मैंने सुना है कि एक चरवाहे ने-नीग्रो था चरवाहा-अपने अंग्रेज मालिक
से कहा: "मालिक, मेरे घर बेटा हुआ है। मगर बड़ी हैरानी की बात है। मैं भी काला, मेरी पत्नी भी काली-और बेटा बिल्कुल गोरा हुआ है। मुझे बड़ा शक होता है।" उसे शक अपने मालिक पर था।... "क्योंकि मैं तो दिन भर चला जाता हूं जंगल तुम्हारी भेड़ें चराने, पत्नी घर छूट जाती है। मैं जवाब चाहता हूं इसका। यह कैसे हो सका?"
मालिक ने कहाः "अरे तू नाहक गरम हुआ जा रहा है। यह तो कई दफा हो जाता है। तूने देखा होगा... काली भेड़ और काली मादा और काला ही नर और कभी-कभी उनका सफेद बच्चा पैदा हो जाता है। यह कोई खास बात नहीं है। अपने पास ही देख, सब भेड़ें सफेद हैं, लेकिन कभी कभी काला बच्चा पैदा हो जाता है। ऐसे ही यह बात है, पाकृतिक घटना है, इसमें तू इतना परेशान न हो।"
नीग्रो ने कुछ सोचा। उसने कहा कि ठीक है, तो फिर मैं एक बात आपसे कह दूं कि मैं आपके संबंध में चुप्पी रखूंगा। और आप अगर भेड़ों को कभी काला बच्चा पैदा हो, तो उनके संबंध में चुप्पी रखना। न मैं आपके संबंध में कुछ कहूंगा, न आप मेरे संबंध में कुछ कहना।
आदमी पशुओं के साथ संभोग करता हुआ भी पाया जाता है! पशु तो ऐसा नहीं करते हैं। इसलिए पाशविक शब्द में जो निंदा भरी है, उसे छोड़ दो। यह पशुओं के साथ अन्याय है। ये तो मनुष्यों की खूबियां हैं। इनमें बेचारे गरीब पशुओं को मत गिनो।
और ये मनुष्यों की खूबियां कैसे पैदा हुई हैं, इसके लिए जिम्मेदार कौन है? तुम लोगों को पकड़ लेते हो।

मैं विश्वविद्यालय में अध्यापक था। एक दिन बैठा था प्रिंसीपल के कमरे में, एक लड़की को लाया गया। वह रो रही थी। उसने प्रिंसीपल को कहा कि एक लड़का मुझे बहुत परेशान करता है; जहां भी जाती हूं, धक्का-मुक्की करता है; चिट्ठियां लिखता है; मेरा नाम बोर्ड पर लिख देता है बड़े-बड़े अक्षरों में; दीवालों पर मेरा नाम लिख देता है; फिल्मी गाने लिख-लिख कर भेजता है। और आज मैं गुजर रही थी तो उसने मुझे पत्थर मारा। यह पत्थर है। कुछ आपको करना पड़ेगा।
मैं वहां बैठा था। प्रिंसीपल ने कहा कि आप क्या कहते हैं, क्या करना चाहिए? मैंने उस लड़की की तरफ देखा और मैंने कहा कि मैं तुझसे कुछ बातें पूछता हूं। पहली तो बात यह कि अगर कोई लड़का तुझे धक्का न मारे और कोई लड़का तेरी साड़ी न खीचें और कोई लड़का कंकड़ न मारे, कोई लड़का तेरी तरफ देखे ही नहीं, तू है भी या नहीं इसका भी कोई लड़का विचार न करे--उस अवस्था को तू चुनेगी या यह अवस्था जो चल रही है इसको तू चुनेगी?
उसने मेरी तरफ गौर से देखा। उसके आंसू सूख गए। उसने कहा: "मैंने इस तरह कभी सोचा नहीं।" एम. ए. की विद्यार्थिनी थी, समझदार लड़की थी। उसने कहा: "मैंने इस तरह कभी सोचा नहीं।" मैंने कहा: "फिर तू सोच कर आ, क्योंकि मुझे उन लड़कियों का भी पता है जिनको कोई धक्के नहीं मारता। उनके प्राणों में एक ही आकांक्षा है कि कोई धक्का मारे। मैं उन लड़कियों को भी जानता हूं जिनको कोई कंकड़ नहीं मारता। कोई कंकड़ मारता ही नहीं, भूल से भी नहीं मारता! मैं

उन लड़कियों को जानता हूं जिनको हरेक लड़का अपनी बहन मानता है। और उनका दुख भी मैं जानता हूं। मुझसे एक लड़की ने कहा है कि "मैं क्या करूं, क्या न करूं, जो देखो वही मुझसे कहता है--बहनजी! मेरे भाग्य में यही लिखा है? कभी कोई मुझे प्रेम करेगा या नहीं करेगा!" उसकी शक्ल ही ऐसी थी कि उसको देख कर कोई भी बहनजी कहे। उसका पति भी होगा तो उसको बहनजी ही कहेगा।
और मैंने पूछा कि से लड़के कंकड़ मार रहे हैं, फिल्मी कवितांए लिखते हैं, दीवाल पर तेरा नाम लिखते हैं, इसे तू सच बोल, ईमान से बोल, कसम खा कर बोल-तेरे भीतर कुछ प्रसन्नता होती है या नहीं होती?
उसने कहा: "आप भी किस तरह की बातें पूछते हैं! मैं रोती हुई आयी हूं।" मैंने कहा: "मैं तेरा रोना देख रहा हूं, वह ऊपर-ऊपर है। मैं तेरे भीतर
तक देख रहा हूं। तेरे रोने के भीतर एक तरह की गरिमा है, एक तरह का गौरव है; वह भी मैं तेरे आसुओं में भीतर छिपा देखता हूं।"
मैंने कहा: "यह प्रिंसीपल की समझ में नहीं आएगा। इनकी बुद्धि मारी गयी है। ये पिटी-पिटायी लकीरों के मालिक हैं। ये लकीर के फकीर हैं, इनकी बुद्धि में नहीं घुसेगी बात। लेकिन मैं तुझसे पूछता हूं, तेरी बुद्धि अभी भी इतनी नहीं सड़ गयी है, तू मुझे साफ-साफ कह।"
उसने कहा: "आप कहते हैं तो मुझे स्वीकार करना पड़ता है भीतर तो मुझे अच्छा लगता है।"
तो फिर मैंने कहा: "शिकायत किसलिए?"
असल बात यह है यह शिकायत करनी भी अच्छी लगती है। इस शिकायत से ही तो पता चलता है औरों को भी कि देखो वे लोग पत्थर मार रहे हैं, कि लोग धक्के मार रहे हैं, कि लोग फिल्मी गीत लिख रहे हैं!
मैंने सुना है एक कैथलिक पादरी के पास एक स्त्री हर रविवार को आती थी। कैथलिक धर्म में तो कन्फेशन होता है, तो कोई पाप किए हों तो हर रविवार को जाकर पुरोहित के सामने उनको स्वीकार कर लेने से क्षमा हो जाते हैं। वह कैथलिक पादरी घबड़ा गया था इस औरत से। न तो देखने-दिखाने में ठीक थी। सुंदर स्त्रियां हों तो कैथलिक पादरी को भी उनको पाप सुनने में आनंद आता है, रस ले-ले कर सुनता है, विस्तार में पूछता है कि फिर क्या हुआ... फिर और क्या हुआ... फिर और आगे बताओ! मगर यह स्त्री उसकी जान खाए जा रही थी। देखने में भी बदशक्ल थी, भयानक थी और हर रविवार बेचूक मौजूद हो जाती थी। एकदम मन खट्टा हो जाता था। रविवार की पुरोहित बेचारा प्रतीक्षा करता था। कैथलिक पुरोहित रविवार की प्रतीक्षा करता है। रविवार ही उसका सुख का दिन है, क्योंकि रविवार को ही लोग अपने पाप बताने आते हैं। उनमें ज्यादातर स्त्रियां ही होती हैं।
जब बहुत घबड़ा गया इस स्त्री से तो एक दिन उसने कहा कि बाई, यही का यही पाप तू कितनी दफे सुना चुकी है, मैनें तुझसे कितनी दफे कह दिया कि माफ हो गया यह तो! एक ही पाप है, वह भी तुमने कोई तीस साल पहले किया था। अब क्या बार-बार जिंदगी भर... कुछ और भी करेगी कि बस इसी इसी का... ! मैं भी थक गया। एक ही पाप... तीस साल पहले कि किसी पुरुष से उसने प्रेम किया था। वही-वही सुनाती है। तो तू क्यों सुनाती है? यह तो कब का माफ हो चुका! अब इसको बार बार सुनाने की जरूरत नहीं है।
उस स्त्री ने कहा: "लेकिन इसे सुनाने में मुझे इतना मजा आता है कि दिल बाग-बाग हो जाता है। फिर उसके बाद तो कुछ बात घटी ही नहीं। फिर उसके बाद तो कुछ बात बनी ही नहीं। बस जो कुछ है वहीं अटका है। और रविवार की राह देखती हूं। और तो कोई सुनने को राजी भी नहीं। तुमको तो सुनना ही पड़ेगा। और मैं तो जब तक जिंदा हूं तब तक कन्फेशन करूंगी, कि मैंने यह पाप किया था कि एक रात एक पुरुष के साथ सोयी थी!"
लोग इतनी विकृति में हैं, यश-उसका कारण? सदियों से सड़ी-गली धारणाओं में उनको पाला गया है। लड़के और लड़कियों को साथ-साथ बड़ा होने दो और नब्बे प्रतिशत बेवकूफियां विदा हो जाएंगी। कुछ और करना न पड़ेगा। उनको साथ साथ बड़ा होने दो; एक ही छात्रावासों में बड़ा होने दो; एक ही स्कूलों में पढ़ने दो। स्वभाविक जीवन को स्वीकार करो। कुछ पाप नहीं है, कुछ बुराई नहीं है।

और यह उचित ही है कि इसके पहले कि कोई लड़की विवाह करे, कोई लड़का विवाह करे, उनके संबंध कुछ लड़के लड़कियों से हो जाएं।
तुम किस डाक्टर के पास जाकर आपरेशन कराना पंसद करते हो? जिसने कुछ आपरेशन किए हों।
मुल्ला नसरुद्दीन आपरेशन कराने गया था डर रहा था, घबड़ा रहा था। डाक्टर ने कहा: "क्यों घबड़ता है भाई? बिल्कुल मत घबड़ा। लेट।"
नसरूद्दीन लेट तो गया, मगर उसके हाथ-पैर कंप रहे हैं। ऐसे तो पसीना पसीना हो रहा है गरमी की वजह से, मगर हाथों में कंपन, पैरों में कंपन, जैसे सर्दी लग रही हो! डाक्टर ने कहा: "तू क्यों इतना घबड़ाता है? क्या बात है?" उसने कहा: "मैं इसलिए घबड़ा रहा हूं डाक्टर साहब कि यह मेरा पहला ही आपरेशन है।"
उसने कहा: "तू बिल्कुल ही निश्चिंत हो, अरे मेरा भी यह पहला ही आपरेशन है! देख मैं घबड़ा रहा हूं? तो तू क्यों घबड़ाता है?"
तुम उस डाक्टर से आपरेशन कराने जाओगे, जिसे आपरेशन का अनुभव हो। इस दुनिया में विवाह इसीलिए बरबाद होते हैं कि दोनों गैर-अनुभवी होते हैं-न पुरुष ने किन्हीं स्त्रियों को जाना है, न स्त्री ने किन्हीं पुरुषों को जाना है। यह पहली ही पहचान है। कोई अनुभव नहीं; दोनों गैर-अनुभवी हैं। यह खतरनाक धंधा है, जो हमने शुरू किया है। दो गैर-अनुभवी लोगों को साथ-साथ जोड़ देना, बांध देना उनके पल्लू, गांठें लगा देना, सात चक्कर लगवा देना--जैसे कि बस पर्याप्त हो गया! और तुम देखते हो, सब कहानियां यहीं खत्म हो जाती हैं! शहनाई बज रही है, चक्कर सात पूरे हुए, कहानी खतम! कहानी नहीं, फिल्में तक खतम यहीं होती हैं! शहनाई बजती जाती है, और चक्कर लगते जाते हैं, मंत्रोच्चार हो रहा है और फिल्म खतम! और कहानियां कहती है: "उसके बाद दोनों सुख से रहने लगे।" उसके बाद कोई कभी सुख से रहा है? इससे बड़ा झूठ तुमने सुना है? उसके बाद फिर कहां जिंदगी!
मुल्ला नसरूद्दीन की शादी हुई। पांच-सात दिन बाद एक मित्र मिलने आए-चंदूलाल और उन्होंने कहा कि भाईजान, स्वागत है, अभिनंदन है।
मुल्ला ने कहा कि "भाईजान" कहना बंद करो। अब तो बस भाई ही भाई बचे है, जान कहां! बस कोरे भाई ही भाई। गुजराती भाई समझो। जान वगैरह तो गयी। वह तो उसी दिन चली गयी जिस दिन विवाह हुआ।
गैर-अनुभवी लोगों को साथ जोड़ दोगे तो उसके कई दुष्परिणाम होने वाले हैं। अपनी पत्नी से परिचित नहीं, अपने पति से परिचित नहीं, और किन्हीं दूसरे पुरुषों को जाना नहीं, और किन्हीं स्त्रियों से पहचान नहीं हुई-तो इसका एक परिणाम तो यह होता है कि मन भागा-भागा फिरता है, कि पता नहीं कोई दूसरी स्त्री तृप्ति दे देती! पुरुष का मन सोचता है कि इस स्त्री से तो तृप्ति मिल नहीं रही, यह स्त्री तो गलत साबित हो गयी, यह स्त्री तो बोझ हो गयी, यह तो उबाने वाली साबित हो रही है, शायद कोई और स्त्री! और चारों तरफ सजी-बजी स्त्रियां घूम रही हैं, तो आकर्षण स्वाभाविक है। स्त्री के मन में भी होता है, हालांकि स्त्री इतने प्रगट रूप से नहीं कह सकती। क्योंकि स्त्रियों को पांच हजार साल से दबाया गया है; इतना दबाया गया है कि उनको खुद भी पता नहीं रहा है कि उनके अचेतन में क्या-क्या छिप गया है। मगर वह भी सपने देखती है। उसके सपने में भी दिलीप कुमार... इत्यादि-इत्यादि प्रकट होते हैं। कोई पुरुषों के ही सपने में हेमामालिनी आती है, ऐसा नहीं है। मगर सपनों की बातें...
और ये आकांक्षाएं तुम प्रकट रूप से देखोगे पुरुषों में; स्त्रियों में अप्रकट रूप से देखोगे। स्त्रियां घर में तो रणचंडी बनी बैठी रहती हैं, लेकिन घर के बाहर जब जाती हैं तो उनका साज-सिंगार देखो। क्योंकि पति में तो उन्हें कोई रस है नहीं, लेकिन बाहर! बाहर वे भी दिखलाना चाहती हैं कि हम भी कुछ हैं! बाहर उनका रस है। बाहर के पुरुषों में रस है। बाहर के पुरुष उन्हें आकर्षित करते हैं। अपना पुरुष तो बिल्कुल ही फिजूल मालूम पड़ता है कि कहां दुर्भाग्य से, किन कर्मो के फल से ये सज्जन मिल गए! मगर अब गुजारना पड़ेगा। यह जिंदगी तो गुजारनी ही पड़ेगी।

वह तो स्त्रियां बलात्कार नहीं कर सकती, क्योंकि उनके शरीर की व्यवस्था बलात्कार करने की नहीं है। करना भी चाहें तो बलात्कार नहीं कर सकतीं। नहीं तो स्त्रियां भी बलात्कार करतीं। पुरुष बलात्कार कर सकता है। इसलिए पुरुष बलात्कार करता है।
हम बलात्कार की तो निंदा करते हैं, लेकिन हम यह नहीं पूछते कि बलात्कार पैदा ही क्यों होता है। हम जड़ में नहीं जाते। बस हम लक्षणों के ऊपर फिकर कर लेते हैं।
मैं भी विरोधी में हूं बलात्कार के, लेकिन मैं जड़ से विरोध में हूं। मैं चाहता हूं एक और ही तरह की समाजिक व्यवस्था होनी चाहिए, एक और ही तरह की मन की आयोजना होनी चाहिए। कुछ आदिवासी समाज हैं, जैसे बस्तर का आदिवासी समाज है, वहां बलात्कार कभी नहीं हुआ। कोई उल्लेख नहीं है। तुम पूछोगे: "क्यों?" अगर बस्तर के आदिवासियों के बीच बलात्कार नहीं होता, तो तुम तो सभ्य हो, सुसंस्कृत हो, तुम्हारे बीच तो बलात्कार होना ही नहीं चाहिए। मगर जितने सभ्य, जितने सुसंस्कृत उतना ज्यादा बलात्कार। सच तो यह है कि बलात्कार के हिसाब से तुम पता लगा सकते हो कि कितने सुसंस्कृत हो और कितने सभ्य हो; वही मापदंड है। आदिवासी जंगली हैं, मगर बलात्कार नहीं करते। क्या कारण होगा?
मैं तो बस्तर गया इस जांचने, देखने, रहा बस्तर कि क्या राज होगा, क्योंकि इस तरह के कबीले दुनिया से खो गए हैं। बस्तर का कबीला भी खोया जा रहा है, मिटा जा रहा है, क्योंकि हम उसको बचने नहीं देंगे। हम समझते हैं ये अशिष्ट हैं, असभ्य हैं। हम स्कूल खोल रहे हैं, अस्पताल खोल रहे हैं। ईसाई मिशनरी जा कर उनको शिक्षा दे रहे हैं। ये ही मूढ़, जिनने तुम्हें बरबाद किया है, वे उनको बरबाद करने पहुंच रहे हैं। और बड़ी आशा से कि उनकी सहायता कर रहे हैं, सेवा कर रहे हैं। जल्दी मर जाएंगे ये लोग; बच नहीं सकते, कैसे बचेंगे? हमारे पास खूब साधन हैं और हम उनको प्रलोभित कर लेते हैं आसानी से। हम उनको पकड़ा देंगे रेडिओ और हम उनको पकड़ा देंगे ट्रांजिस्टर सेट और पकड़ा देंगे उनको साइकिलें और पकड़ा देंगे सारी बीमारियां, ताकि अस्पताल जरूरी हो जाएं। और पकड़ा देंगे उनको शिक्षा, स्कूल और महत्वाकांक्षाएं और अहंकार की दौड़ कि बस सब खत्म हो जाएगा। और वहां हमारे पादरी और मिशनरी और हिंदू पंडित और पुरोहित... क्योंकि वे भी पीछे नहीं रह सकते, उनको भी डर है कि ये सब कहींईसाई न हो जाएं। तो आर्य-समाजी भी पंहुच गए हैं।
मेरे एक आर्य-समाजी संन्यासी मित्र हैं, वे भी वहां अड्डा जमाए थे। मैंने पूछा: "तुम यहां क्या कर रहे हो?"
उन्होंने कहा: "हम कैसे पीछे रह सकते हैं! ये सब ईसाई बनाए डाल रहे हैं, हम इनको आर्य समाजी बना कर रहेंगे।"
ये गरीब बच नहीं सकते। और इनका सबका हमला किस बात पर है? जिस बात पर हमला है, वही कारण है वहां बलात्कार के न होने का। तुम चकित होओगे जान कर। बस्तर के आदिवासियों में एक व्यवस्था है, उस व्यवस्था का नाम है--घोटूल। हर छोटे गांव में, छोटे-छोटे गांव हैं, जहां कहीं दो सौ आदमी रहते हैं, कहीं तीन सौ आदमी रहते हैं ज्यादा से ज्यादा एक घोटूल होता है। गांव के बीच में एक सार्वजनिक मकान होता है। जैसे ही बच्चे उम्र पर आ जाते हैं, काम की दृष्टि से, यौन की दृष्टि से प्रौढ़ होने लगते हैं-लड़कीयां तेरह साल की, लड़के चौदह साल के--बस उनको घोटूल में सोना पड़ता है। उनको फिर घर नहीं सूलाते। उनको घोटूल भेज देते हैं। दिन भर वे घर रहें, काम करें, लेकिन रात घोटूल में सोएं। तो सारे गांव की लड़कीयां और सारे गांव के लड़के रात घोटूल में सोते हैं। और उनको पूरी स्वतंत्रता है कि वे प्रेम करें, संबंध बनाएं। हालांकि कुछ नियम हैं, बड़े अद्भुत नियम हैं! एक नियम यह है कि कोई भी लड़का किसी स्त्री के साथ तीन दिन से ज्यादा न रहे, ताकि सारी स्त्रियों का अनुभव कर सके। स्वभावतः सारी स्त्रियां भी सारे पुरुषों का अनुभव कर लेंगी। गांव के सारे पुरुष और सारी स्त्रियां एक-दूसरे से परिचित हो जाएंगे। दो वर्ष घोटूल में रहने के बाद वे तय करेंगे कि तुम्हें कौन सी लड़की पंसद है, किस लड़की को कौन-सा लड़का पसंद है? फिर उनकी शादी की जाएगी। ये शादी बड़ी वैज्ञानिक मालूम होती है। इन्होंने गांव की सारी लड़कियां

पहचान लीं, सारे लड़के पहचान लिए, तब निर्णय लिया है। अब आकर्षण आसान नहीं रहा। अब इनको भलीभांति पता है, हर लड़की पता है, हर लड़का पता है। इसलिए अब दूसरे की पत्नी इनको आकर्षित नहीं करेगी। इन्होंने सारे अनुभव के बाद निर्णय लिया है। निणर्य कोई जन्मपत्री देख कर नहीं लिया गया है और निर्णय किसी पंडित-पुरोहित ने, बाप-दादों ने नहीं लिया है; निर्णय खुद लिया है और अनुभव से लिया है। और अपनी पहचान से लिया है। कौन-सी लड़की ने किस लड़के को सर्वाधिक तृप्ति दी और कौन-से लड़के ने किस लड़की को सर्वाधिक आनंद दिया। कौन दो एक-दूसरे से मिल कर तालमेल हो गए।
और तीन दिन से ज्यादा एक साथ रहना नहीं है, ताकि मोह पैदा न हो, आसक्ति पैदा न हो। ये देखते हैं-अनासक्ति का प्रयोग! और अगर तीन दिन से ज्यादा रहोगे तो फिर और लड़कीयों से वंचित रह जाओगे। और फिर ईर्ष्या भी पैदा होगी। समझ लो कि एक सुंदर लड़की है, उसके साथ एक लड़के का मेल बन गया, वह उसको छोड़े ही नहीं, तो गांव के दूसरे लड़के उस सुंदर लड़की के प्रति आतुर होने लगेंगे, ईर्ष्या जन्मेगी, संघर्ष पैदा होगा। नहीं तो तीन दिन के बाद लड़कियां-लड़के अपना संबंध बदल लेंगे। एक-एक लड़की से दो साल के भीतर कई बार संबंध आएगा, मगर तीन दिन से ज्यादा नहीं।
ये घोटूल की व्यवस्था को ईसाई मिशनरी भी कहता है पाप, तुम भी कहोगे पाप, हद हो गयी पाप की! और आर्य-समाजी भी कहता है महापाप! यह घोटूल तो बंद होना चाहिए। ये तो वेश्यालय हैं। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि ये घोटूल सारी दुनिया के हर गांव में होने चाहिए, तभी दुनिया से बलात्कार मिटेगा, नहीं तो नहीं मिट सकता।
इसलिए मैं कहता हूं कि यश, तुमने प्रश्न तो पूछा है; मेरा उत्तर पचा पाओगे कि नहीं, यह जरा मुश्किल है। मैं भी बलात्कार का विरोधी हूं। लेकिन मेरे कारण और हैं। यह बलात्कार जो चलता है दुनिया में इसके लिए जिम्मेवार तुम्हारे धर्मगुरु हैं। आर्यसमाजी और ईसाई और जैन और बौद्ध और हिंदू--ये सब इस उपद्रव के पीछे हैं। इन सब मूढ़ों ने तुम्हें आदमी की जो आज की विकृत दशा है, वह दी है। मगर इन्होंने इतने तर्क इकट्ठे किए हैं सदियों में और तुम उन तर्कों को सुनते-सुनते इतने आदी हो गए हो कि तुमने पुनर्विचार करना बंद कर दिया है।
बस्तर में कभी बलात्कार नहीं हुआ है। अंग्रेजों ने अपनी रिपोटों में
यह बात उल्लेख की है कि बस्तर में कभी कोई बलात्कार का उल्लेख नहीं आया है आज तक। अंग्रेजों के इतने दिन के इतिहास में बस्तर में बलात्कार नहीं हुआ है। बस्तर में बलात्कार होता ही नहीं, होने का कारण ही नहीं रहा। बात ही समाप्त हो गयी। जीवन सहज हो गया, स्वाभाविक हो गया।
अनुभव ही तुम्हें इस मूढ़ता से मुक्ति दिला सकता है। नहीं तो बात बहुत कठिन है। पशुओं में बलात्कार नहीं होता, क्योंकि पशु मुक्त हैं; एक दूसरे से संबंध बनाने को मुक्त हैं। पुरुषों में, स्त्रियों में यह उपद्रव खड़ा होता है। यह उपद्रव नैसर्गिक नहीं है, पाशविक नहीं है-धार्मिक है। मत कहो यश कोहली कि यह पाशविक है। कहो कि धार्मिक है, सांस्कृतिक है। यह पतन धार्मिक और सांस्कृतिक है। यह तुम्हारे तथाकथित आध्यात्मिक नेताओं की दी गयी वसीयत है। यह जो तुम बोझढो रहे हो, यह तुम्हारी सदियों की सड़ी-गली परंपरा का परिणाम है। और यह तुम्हें सड़ाएं डाल रहा है, तुम्हें मारे डाल रहा है।
इससे मुक्त हुआ जा सकता है। और अब तो और भी आसानी से हुआ जा सकता है, क्योंकि घोटूल में तो एक खतरा था। हालांकि यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि यह भी कभी नहीं घटा वहां, कि घोटूल में लड़के और लड़कियां एक-दूसरे से संभोग संबंध करते हैं, मगर कभी नहीं यह घटना घटी कि कोई लड़की गर्भवती हो गयी हो। यह भी एक हैरानी की बात है। क्यों। कोई लड़की गभर्वती नहीं हुई? यह तो मनोवैज्ञानिकों के लिए बड़े शोध का काम है। होना ही चाहिए था।
मेरा अपना दृष्टिकोण यही है कि चूंकि न तो युवकों की इच्छा थी कि पिता बनें और न युवतियों की इच्छा थी अभी मां बनने की, इनके मनोविज्ञान ने ही विरोध पैदा किया। इनका मनोविज्ञान ही अभी राजी नहीं था। तो देह के संबंध तो हुए, लेकिन चूंकि मनोविज्ञान इनका विपरीत था, अभी ये मां-बाप बनना नहीं

चाहते थे, अभी तो ये अनुभव से गुजरना चाहते थे, इसलिए यह गर्भ संभव नहीं हो सका।
इस पर खोज करने की जरूरत है कि क्या मनोवैज्ञानिक रूप से यह संभव है?
यह संभव है कि अगर मन राजी न हो तो कोईस्त्री गर्भवती नहीं हो सकती। अगर मन ही राजी न हो, अगर मन ही भीतर इनकार कर रहा हो गर्भवती होने से... लेकिन शायद ऐसे मन को पैदा करना तो अब बहुत मुश्किल होगा, क्योंकि हमने तो जो मन पैदा किया है, हम तो हर बच्ची को यह समझा रहे हैं कि तुझे मां बनना है। शादी हुई नहीं कि हम राह देखते हैं कि कब मां बनो, कब बाप बनो। अगर दो-तीन साल बीत जाएं और बच्चे पैदा न हों तो गांव में चर्चा होने लगती है कि मामला क्या है, कुछ गड़बड़ हो गयी है, कुछ गड़बड़ है। लोग संदेह की आंखें उठाने लगते हैं। लोग हंसने लगते हैं कि शायद लड़के में कोई खराबी है, बच्चे क्यों पैदा नहीं हो रहे? बच्चे तो होने ही चाहिए।
हमने एक मनोविज्ञान पैदा किया है कि शादी होते ही से बच्चे होने चाहिए। इस मूढ़ता के कारण बच्चे शीघ्रता से होने शुरू हो जाते हैं। नहीं तो मनोवैज्ञानिक रूप से भी संतति-नियमन हो सकता है। घोटूल और बस्तर में चल रहा सदियों पुराना प्रयोग इस बात का सबूत है।
मगर अब शायद मनोविज्ञान को बदलना इतना आसान नहीं होगा। ये सदियों पुराने संस्कार हैं। पर अब कोई जरूरत भी नहीं है। अब तो विज्ञान ने साधन जुटा दिए हैं। अब लड़के-लड़कियों को इतना दूर-दूर रखने का पागलपन छोड़ो। और कुछ मूढ़ताएं हमने पाल रखी हैं। कुआंरी कन्या को हम बड़ा मूल्य देते हैं। किसलिए? कुआंरी कन्या में ऐसा क्या है? लेकिन अभी भी हमारे दिमाग में वह सवार है। तो लड़कियों को बचा कर रखते हैं, मिलने-जुलने नहीं देते। जब तुम लड़कियों को बचा कर रखोगे तो तुम उनकी रीढ़ तोड़ देते हो, उनको तुम कमजोर बना देते हो।
हम बचपन से ही लड़कीयों को सिखाने लगते हैं कि तुम लड़की हो। अगर लड़कीयां वृक्षों पर चढ़े तो नहीं चढ़ने देते, कि लड़कियों का यह काम नहीं है। लड़कीयां अगर नदी तैरने जाएं तो नहीं तैरने देते। लड़कीयां अगर पहाड़ पर चढ़ना चाहें तो नहीं चढ़ने देते-"यह तुम्हारा काम नहीं। तुम्हारा काम तो गुड्डे-गुड्डियां बनाना, उनका विवाह रचाना, इत्यादि इत्यादि है। तुम्हारा काम तो शुरू से ही यही है कि तुम्हें पत्नी बनना है, मां बनना है।" तो छोटी-छोटी बच्चियां अपनी गुड्डियों को लिए बैठी हैं, दूध पिला रही है। न दूध है न स्तन है, कुछ भी नहीं है, मगर छोटी-छोटी बच्चियों को दूध पिलाने का खेल चल रहा है। छोटी छोटी बच्चियां विवाह रचाती हैं।
दो बच्चों ने एक घर पर दस्तक दी-एक छोटी बच्ची और एक छोटा बच्चा। बच्ची की उम्र होगी कोई पांच साल और लड़के की उम्र होगी कोई छःसाल। बड़े सजे- बजे आए थे। विवाह का खेल खेल कर आए थे। दरवाजा खोला गृहणी ने, देखा कि दोनों सजे-बजे खड़े हैं। लड़की वैसी सजी जैसे दुल्हन, लड़का ऐसा सजा जैसे दूल्हा। कहा: "आइए-आइए!" उसने भी खेल में भाग लिया। "विराजिए! विवाह कब हुआ?" तो उन्होंने विवाह बताया कि "अभी-अभी हुआ है। और सोचा कि आपके घर मिल आएं, आपको खबर भी कर आएं।" चाय-नाश्ता करवाया। फिर लड़की एकदम से बोली कि अब हमें जाना है। तो गृहणी ने कहाः "इतनी क्या जल्दी है?" तो उन्होंने कहा: "कुछ भी नहीं, मेरे पतिदेव ने पाजामे में पेशाब कर ली।" खेल शुरू! बस यह खेल फिर जिंदगी भर चलना है।
लड़कियों को हम चढ़ने नहीं देगें वृक्षों पर, घोड़ों पर। और फिर हम चाहते हैं यश, कि लड़कियों कैसे अपनी रक्षा करें। रक्षा कैसे करेंगी? लड़के और लड़कियों को समान भाव से बढ़ने दो। यह बात ही छोड़ दो कि कौन लड़का है कौन लड़की। उनको समान भाव से बड़ा होने दो, साथ खेलने दो, साथ बड़ा होने दो। कबड्डी में, खो खो में, फुटबाल में, बॉलीबाल में उनको साथ जूझने दो।
मगर मूढ़ताओं का कोई अंत है? अभी पाकिस्तान से खबर आयी है कि जनरल जिया
ने अभी निर्णय लिया है कि पाकिस्तान में अब कोई स्त्रियां सलवार-कमीज पहने बिना खेलों में भाग न लें सकेंगी, क्योंकि छोटे छोटे पैंट पहनती हैं तो उनकी जांघे उघड़ जाती हैं। तो उघड़ जाने दो, जांघे उघड़ने से क्या होने

वाला है? लोग उनकी जांघें देख लेंगे! अरे तो देख लेने दो! देख लेंगे तो देखने की आकांक्षा मिट जाएगी।
विक्टोरिया के समय में इग्लैंड में स्त्रियां ऐसे घाघरे पहनती थीं कि उनके पैर भी न दिखाई पड़ें, पंजा भी न दिखाई पड़े, घाघरा जमीन को छूना चाहिए! जो बहुत रईस होती थीं, उनके घाघरे को तो उनकी नौकरानियां उठा कर चलती थीं, क्योंकि वह घाघरा इतना बड़ा होता था कि जमीन पर फीट दा फीट सरकता था। बर्ट्रेंड रसेल ने लिखा है कि उस समय अगर कभी किसी स्त्री के पैर की अंगुलियां भी दिखाई पड़ जाती थीं, तो मन कामोत्तेजना से भर जाता था। भर ही जाएगा। मगर अब? अब स्त्रियों के पैर की अंगुलियां देख कर तुम्हारा मन कामोत्तेजना से भरता है? जो चीज देख ली, उसमें रस चला जाता है।
लेकिन पाकिस्तान ने तय किया है कि अब स्त्रियां टैनिस खेलें तो भी सलवार-कमीज पहन कर खेलें। क्या खाक टैनिस खेलेंगी? फरिया भी ओढ़नी पड़ेगी, नहीं तो कहीं स्तन वगैरह दिखाई पड़ जाएं किसी को हिलते-डुलते! और दूसरा फिर और इंतजाम कि स्त्रियों के खेलों में पुरुष दर्शक नहीं हो सकेंगे।... यह बीसवीं सदी चल रही है! ... और स्त्रियां केवल स्त्रियां के साथ ही खेल खेल सकेंगी। अब पुरुषों के साथ खेल नहीं खेल सकेंगी। इसलिए ओलिंपिक वगैरह में अब पाकिस्तान की स्त्रियां भाग न ले सकेंगी।
यह क्या मूर्खता है? मगर यह मूर्खता चलती है। वह तो बड़ी उनकी कृपा है
कि उन्होंने यह तय नहीं किया कि स्त्रियां बुरका पहन कर हॉकी खेलें, नहीं तो बड़ा मजा आ जाएगा। अगर एकाध भी गोल हो जाए तो चमत्कार समझो। भूल-चूक से ही हो सकता है। जैसे कोई अंधेरे में तीर चलाए और लग जाए। लग जाए तो तीर, नहीं तो तुक्का। और कहीं पाकिस्तान में कोई विरोध नहीं हुआ है, क्योंकि यह तो कुरान के बिल्कुल अनुकूल है। स्त्रियों को छिपकर रहना चाहिए। यह तो बड़ी धार्मिक बात है।
तुम्हारा धर्म ही तुम्हारे उपद्रवों की जड़ है। तुमने जिसको धर्म समझा है, धर्म कम है, रोग ज्यादा है; उपचार कम है, औषधि कम है, वही बीमारी की जड़ है। मैं चाहूंगा कि निश्चित बलात्कार मिटे। लेकिन बलात्कार के मिटने का एक ही उपाय है कि स्त्री-पुरुषों को करीब लाओ, उनकी दूरी मिटाओ, उनको एक-दूसरे से परिचित होने दो। ये जो पुरुष स्त्रियों को धक्के दे रहे हैं, ये धक्के बंद हो जाएंगे। अगर स्त्रियां और पुरुष स्विमिंग पूल में और नदियों पर वस्त्र उतार कर स्नान करते हों, तो कौन धक्के देगा, किसलिए धक्के देगा? जब तुम जानते हो स्त्री के शरीर को, तो तुम किसलिए धक्के दोगे? यह धक्का भी स्त्री के शरीर से परिचित होने का एक उपाय है--गलत उपाय है, क्योंकि और उपाय बचे ही नहीं, सिवाय गलत उपाय के। कोई भीड़ में स्त्री को धक्के दे कर चलेगा, यह इसी बात का सबूत है कि स्त्री के पास होने के तुमने और कोई सुगम उपाय छोड़े नहीं। सुगम उपाय दो, ये बातें खत्म हो जाएंगी।
मगर हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता कि हमारी बीमारी की जड़ें कहां हैं। सारी दुनिया में चर्चा होती है कि वेश्याएं मिटनी चाहिए, लेकिन वेश्याएं तभी मिटेंगी जब तुम्हारी विवाह की धारणाए बदलेंगी, नहीं तो नहीं मिट सकतीं। जब तक तुम जबरदस्ती दो व्यक्तियों को--एक स्त्री और पुरुष को-- विवाह में बांधे रखोगे, तब तक वेश्याएं जिंदा रहेंगी। वेश्याएं विवाह की उत्पत्ति हैं। मैं भी वेश्याओं को मिटाना चाहता हूं, क्योंकि यह अपमानजनक है कि कोई स्त्रियों को अपना शरीर बेचना पड़े। लेकिन क्या करो? अगर कुछ लोगों को मजबूरी में किसी स्त्री के साथ रहना पड़ रहा है--बच्चों के लिए, परिवार के लिए, प्रतिष्ठा के लिए, मां-बाप के लिए; या नहीं जुटा पाते हिम्मत अलग होने की, या कानून मौका नहीं देता अलग होने का, या अलग होना मंहगा सौदा है--तो क्या करें? इस स्त्री से उनको कोई रस नहीं है, तो वे कोईस्त्री खोजेंगे। खरीद लेंगे किसी स्त्री की देह। अब स्त्री की देह खरीदोगे, उससे कुछ तृप्ति मिल जाएगी? उससे तृप्ति मिलने वाली नहीं है। तो फिर कोई और स्त्री खोजो।
और हिंदुस्तान में तो सिर्फ स्त्रियां वेश्याएं होती हैं; तुम यह जान
कर हैरान होओगे कि पश्चिम के मुल्कों में, जहां कि स्त्रियां अब स्वतंत्र होने लगी हैं, जहां उन्होंने समानता का हर दिशा में अधिकार मांगना शुरू

किया है, वहां पुरुष-वेश्याएं भी होनी शुरू हो गयी है। उनको वेश्याएं नहीं कहनी चाहिए, वैश्य कहना चाहिए। क्योंकि जब स्त्रियां शरीर बेचती हैं तो क्यों न पुरुषों के शरीर खरीदे जाएं? लंदन में सड़कों पर अब पुरुष भी खड़े होते हैं। स्त्रियां कारें रोक कर देखती हैं कि है योग्य खरीदने के या नहीं और जैसे स्त्रियों वेश्याओं की तरह अपने शरीर का प्रदर्शन करती हैं, हाव भाव प्रगट करती हैं--भद्दे, अश्लील-वैसे ही पुरुष भी कर रहे हैं। वे भी बिकने को तैयार खड़ें हैं, खरीदे कोई। आदमी को तुमने बाजार में बिकने वाली चीज बना दिया। मगर कौन जिम्मेवार है?
आमतौर से यश कोहली, तुम और सारे लोग यही सोचते हैं कि यह आदमी की पशुता जिम्मेवार है। नहीं, यह आदमी की तथाकथित धार्मिकता जिम्मेवार है।
मैं तुम्हारे प्रश्न को फिर से पढ़ता हूं, ताकि एक-एक मुद्दे को तुम खयाल में ले सको। तुमने पूछा: "परिवार के भीतर शीलभंग को कैसे निर्मूल किया जाए?" जो पति अपनी पत्नी से तृप्त नहीं है, वह खतरनाक है, वह अपनी बेटी के साथ उपद्रव कर सकता है। लेकिन अगर वह अपनी पत्नी से तृप्त है तो यह कल्पनातीत है, यह कल्पना के बाहर है कि वह अपनी बेटी के साथ संबंध बनाने का विचार भी लाए। जो पत्नी अपने पति से तृप्त नहीं है, अतृप्त है और बाहर जाने का कोई उपाय भी नहीं है, वह अपने देवर से संबंध बना लेगी। तुम "देवर" शब्द पर ध्यान देते हो? उसका मतलब ही यही होता है-नंबर दो का पति। "देवर" दूसरा पति! पहला काम न पड़े तो यह काम पड़ेगा। इसलिए देवर को मौका है कि वह अपनी भाभी के साथ अश्लील मजाक करे, कर सकता है। उसको हमने छुट्टी दी है। दूसरा पति है, नंबर दो का ही है, कोई ज्यादा दूर का फासला नहीं है। सिर्फ सवाल सीनियारिटी का है। अगर घर में देवर भी नहीं है तो नौकर-चाकर। अगर नौकर-चाकर भी नहीं हैं, तो तुम व्यक्तियों को मजबूर कर रहे हो कि वे परिवार में किसी तरह के नाते बनाने शुरू करें। स्त्रियां बाहर तो जा नहीं सकतीं। स्त्रियां बाहर जाएं तो खतरा है, अपमानजनक है। तो घर में ही कुछ उपद्रव शुरू होगा। तो हो सकता है बेटे से संबंध कोई मां बना ले। ऐसी घटनाएं रोज अखबारों में आती हैं। किसी बाप ने, किसी मां ने... ये अभद्र है, अमानवीय हैं। लेकिन पाशविक मैं न कहूंगा। इतना ही मैं कहूंगा कि इनके लिए जिम्मेवार तुम्हारे धर्म हैं, तुम्हारी सामाजिक धारणाएं हैं।
दो पुरुष स्त्री तभी तक साथ रहने के लिए हकदार हैं जब तक उनके भीतर प्रेम जीवित है; जिस दिन प्रेम का दीया बुझ जाए उस क्षण उन्हें अलग होने की उतनी ही सुविधा होनी चाहिए जितनी हमने इकट्ठा करने की सुविधा की थी। सच तो यह है, विवाह कठिन होना चाहिए और तलाक आसान होना चाहिए। विवाह अभी सरल है और तलाक बहुत कठिन है। अभी किसी को विवाह करना हो तो बस एकदम बैंड-बाजे बजाने लगते हैं हम और किसी को तलाक देना हो तो हर एक व्यक्ति विरोध में हो जाता है। तलाक देने वाला आदमी ही गलत। बात दूसरी ही होनी चाहिए: अगर कोई विवाह करना चाहे तो उससे कहना चाहिए कि साल दो साल रूको, जल्दी क्या है? साल दो साल साथ रहो, मिलो-जुलो, साथ जीओ, पहचानो एक-दूसरे को। क्योंकि छोटी- छोटी चीजें बिगाड़ कर देती हैं। कोई बहुत बड़ी-बड़ी चीजें नहीं हैं जिंदगी में, बड़ी छोटी-छोटी चीजें हैं, जिनका ऐसे कोई मूल्य नहीं मालूम होता। रोमांस से नहीं जीया जा सकता। यह कोई कविता नहीं है जीवन। जीवन बड़ा यथार्थ है।
एक युवती--एक बहुत बड़े परिवार की युवती--एक गरीब परिवार के लड़के के प्रेम में थी। उसने मुझसे कहा: "मैं क्या करूं? मेरे पिता विरोध में हैं, मेरी मां विरोध में हैं?"
मैंने कहा: "मैं विरोध में नहीं हूं, लेकिन मैं तुझसे यह कहूंगा कि तू पहले इस व्यक्ति के साथ कुछ दिन रह कर देख ले।"
उसने कहा: "इससे क्या होगा?" मैंने कहा: "इससे कुछ बातें साफ हो जाएंगी तुझे। जिंदगी छोटी-छोटी चीजों पर तय है। तु शानदार ढंग से रहने की आदी है। इस लड़के के घर में बाथरूम भी नहीं है। यह तो नदी बाहर... बाथरूम यानी नदी बाहर। स्नान यानी नदी।... तो तैयारी है तेरी कि सुबह पांच बजे उठ कर तू पाखाने के लिए गांव के बाहर जा सकेगी? पांच बजे कभी जिंदगी में उठी है?"

उसने कहा: "मैं तो आठ बजे के पहले कभी उठती ही नहीं।" मैंने कहा: "आठ बजे के बाद अगर नदी हो गयी तो जिंदा नहीं लौटेगी। और नदी में स्नान कर सकेगी।"
उसने कहा: "मुझे तो गरम पानी चाहिए।"
नदी में कहां से गरम पानी आएगा? अभी भारत में बाल्टी भर पानी गरम करना
तो मुश्किल मामला है, पूरी नदी को गरम कैसे करेंगे? इसलिए तो भगवान बुद्ध कह गएः अपने दीये खुद बनो, क्योंकि यह भारतीय विद्युत का कोई भरोसा नहीं, कब आए कब चली जाए! वे पहले ही से कह गए। यही तो द्रष्टाओं का काम है कि ढाई हजार साल पहले उन्होंने देख लिया कि मामला क्या होगा भारतीय विद्युत का। उसने कहाः "यह मैंने कभी सोचा नहीं। मैंने बाथरूम इत्यादि का विचार
ही नहीं किया। मगर आप भी... मैं प्रेम की बातें कर रहीं हूं, आप बाथरूम की बातें उठा रहे हैं।
मैंने कहाः "प्रेम वगैरह तो बातचीत है, वक्त पर बाथरूम ही सवाल बनेगा।
तू खाना बनाना जानती है?"
उसने कहा: "मैं खाना बनाना बिल्कुल नहीं जानती।"
मैंने कहाः "तो फिर मेरे अनुभव से सुन। मैंने सिर्फ एक दफा चाय बनायी
है जिंदगी में। और उससे जो मैंने अनुभव लिया, उससे मैं बुद्ध से राजी हो गया कि जीवन दुख है। चूल्हा ही न जले। आंखों से आंसू बह गए, धुआं ही धुआं। चाय बनी ही नहीं। फिर मैंने दुबारा कभी कोशिश ही नहीं की। फिर मैंने कहा कि सारी ताकत इसी में लगाओ कि आवागमन से छुटकारा हो, क्योंकि फिर लौट कर आना पड़े, फिर क्या पता चाय फिर बनानी पड़े। तुने कभी चाय बनाई है? घर में बैरा है, वह हर चीज लेकर हाजिर हो जाता है। ये सब बातें तू सोच ले। सात दिन बाद आकर मुझे कहना।"

सात दिन बाद आ उसने कहा कि मैंने मामला खत्म कर दिया, आप ठीक कहते हैं।
ये काम मुझसे नहीं हो सकते।
और मैंने कहा कि प्रेम कविताओं से नहीं होता--जिंदगी का यथार्थ। अगर आदमी कविताओं से जी सकता तो बड़ी आसान बात हो जाती। लेकिन जीवन यथार्थ से जीता है।
जीवन का यथार्थ हमारा क्या है? हमने स्त्रियों को एकदम अपंग बना दिया है। अपंग बनाने में हमने फायदा पाया, क्योंकि वे पुरुष पर निर्भर हो गईं। इससे पुरुष के अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। हम स्त्रियों को कहते हैं: "अबला!" शरम भी नहीं आती पुरुषों को स्त्रियों को अबला कहने में। और भलीभांति जानते हैं कि घर में किसकी चलती है। घर के बाहर सीना फुला कर चलते हैं। जब घर में आते हैं तब देखो! एकदम पूंछ दबा कर अंदर आते हैं! और फिर भी स्त्रियों को अबला कहते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी में झगड़ा हो रहा था। झगड़ा इस बात का
था कि घर का मालिक कौन है। पत्नी ने कहाः "मैं तुझे बताती हूं घर का मालिक कौन है!" वह लेकर बेलन उसके पीछे दौड़ी। मुल्ला भागा और बिस्तर के नीचे घुस गया। पत्नी है मोटी-तगड़ी, सो वह बिस्तर के नीचे तो घुस ही नहीं सकती। सो वही उसकी एकमात्र शरण है। जब भी कभी ज्यादा खतरा हो जाए, वह बिस्तर के नीचे। और वहां पत्नी की पहुंच नहीं। वह बिस्तर के नीचे बैठ गया पदमासन लगा कर। पत्नी ने कहाः "निकल बाहर।" मुल्ला ने कहाः "नहीं निकलते, हम अपने मालिक हैं! अरे घर का मालिक कौन है? कौन हमें निकाल सकता है? नहीं निकलते। कर ले जो तुझे करना हो।" तभी कोई मेहमान ने द्वार पर दस्तक दी, पत्नी ने कहा कि निकलो बाहर, निकलो! कोई मेहमान है।
"आने दो", मुल्ला ने कहा कि आज मेहमानों को भी पता चल जाए कि घर का मालिक कौन है। रख बेलन नीचे और घिसट नाक जमीन पर, तो बाहर निकलूंगा। नहीं तो आ जाने दे आज मेहमानों को और बुला ला मुहल्ले वालों को भी। ज़ाहिर ही हो जाए, एक दफा तय ही हो जाए मामला-इस तरफ या उस तरफ, कि घर का मालिक कौन है। यह घर की मालकियत है--बिस्तर के नीचे छिपे हैं! और स्त्रियों को अबला बता रहे हैं। हर पुरुष को पता है कि स्त्री बलवान है। स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा जीती हैं-पांच साल ज्यादा-औसत। स्त्रियां पुरुषों से कम बीमार

पड़ती हैं। स्त्रियां कम पागल होती हैं। स्त्रियों कम आत्महत्या करती हैं। पुरुष जरा में टूट जाता है। जरा-सा दिवाला निकल गया कि खतम, एकदम मरने की सोचने लगते हैं! इलेक्शन हार गए, रस्सी खरीदने लगते हैं कि फांसी लगा लेंगे। स्त्रियों की प्रतिरोधक शक्ति बड़ी है, नहीं तो नौ महीने बच्चे को पेट में रखना, जरा सोचो तो पुरुष हो कर रखना पड़े नौ महीने बच्चे को पेट में! अरे नौ महीने की तो छोड़ो, नौ घंटे जरा बच्चे को गोद में तो रखो! छठी का दूध याद दिला देगा।
नसरुद्दीन अपने बेटे को घुमाने ले गया था छोटी सी बग्घी में बिठाल कर। सर्दी के दिन और बेटा चीख रहा है और चिल्ला रहा है और रो रहा है। और नसरुद्दीन कह रहा है: "नसरुद्दीन, शांति रखो! धैर्य रखो!"
एक महिला यह सुन रही थी, वह भी घूमने गयी थी। उसने कहा: "बड़ा प्यारा बेटा है! और तुम भी बड़े धैर्यवान हो।"
वह महिला पास आयी, उसने बेटे के सिर पर हाथ रखा और कहा कि नसरुद्दीन, बेटा शांत हो जाओ।
नसरुद्दीन ने कहा: "माई, तू गलत समझ रही है। नसरुद्दीन उसका नाम नहीं, मेरा नाम है। मैं तो अपने को समझा रहा हूं कि नसरुद्दीन शांत रहो। दिल तो हो रहा है कि इस दुष्ट का गला दबा दूं!"
एक रात अपने बच्चे को तो ले कर सो जाओ, या तो खुद खिड़की से कूद जाओगे या बच्चे की गर्दन दबा दोगे। और स्त्रियों को कहते हो-"अबला"! तुमने बनाने की कोशिश जरूर की है, मगर जीत नहीं पाए। बाहर से तुमने पंगु कर दिया, तो उनकी सारी की सारी शक्ति तुम पर टूट पड़ी है।
स्त्रियों को मौका दो। उनकी जिंदगी को सारे विस्तार में फैलने दो। मगर तुम्हारी ईर्ष्या, तुम्हारा अहंकार, तुम्हारा दंभ तुम्हारी जान खाए जा रहा है। स्त्रियों को फैलने दो जिंदगी में। मगर यह भी एक घबड़ाहट है कि कहीं कोई शीलभंग न कर दे उनका! उस डर से भी उनको घर में छिपा कर रखो। कई बार ऐसा होता है कि तुम्हारे उपाय ही उपद्रव के कारण होते हैं। अगर स्त्रियां बाहर हों, मुक्त हों, सारे काम-धाम में लगी हों, जगह जगह उपलब्ध हों, किसको पड़ी है शील भंग करने की? मगर स्त्रियां मिलती मुश्किल से हैं। और जब मिल जाती हैं कभी इक्की दुक्की एकांत में किसी अवसर में, तो फिर पुरुष भी सोचता है कि मौका छोड़ना ठीक नहीं है, फिर मिले मौका न मिले! फिर वे एकदम से उसे ऋषियों की बातें याद आती हैं: "काल करंते आज कर, आज करंते अब। पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब।" फिर वह सोचता है, अब कर ही गुजरो। अब जो करना हो सो कर ही लो। फिर कौन जाने दुबारा यह अवसर हाथ आए न आए।
यह हमारा जो झूठा विभाजन है स्त्री-पुरुष के बीच, उसने ही सारा उपद्रव खड़ा किया है। यह विभाजन गिराओ। यह विभाजन बिल्कुल हटाओ। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सौ प्रतिशत शीलभंग की घटनांए समाप्त हो जाएंगी। लेकिन निन्यान्नबे प्रतिशत समाप्त हो जाएंगी। हां, एक प्रतिशत घटनाएं घटती रहेंगी, तो उनको इतना मूल्य मत दो जितना मूल्य देते हो। इतने मूल्य जैसी कोई बात ही नहीं है। शीलभंग में भी खाक भंग हो जाता है! इतना क्या शोरगुल मचाए हुए हो? क्यों इतने ज्यादा कामवासना के ऊपर आरोपित हो गए हो? क्या बिगड़ गया?
मेरी एक संन्यासिनी ईरान में थी। और ईरान की हालत तो तुम देखते हो, कि
इस समय अगर दुनिया में कोई देश सबसे ज्यादा पागलपन की अवस्था में है तो वह ईरान है। अयातुल्ला खोमैनी जैसा पागल आदमी दुनिया में दूसरा इस समय तो नहीं है। मेरी एक संन्यासिनी, कमल, ईरान में थी। वह अपने प्रेमी के साथ किसी जलप्रपात पर स्नान करने गयी थी एकांत में। अमरीकन हैं तो सारे वस्त्र उतार कर वे स्नान कर रहे थे, वहां कोई और था नहीं, कि आए गए चार ईरानी, उन्होंने उस के प्रेमी को तो पकड़ लिया, कमल के, उसको तो रस्सी से बांध दिया एक वृक्ष से और उसके साथ बलात्कार किया। जाकर उन्होंने पुलिस में रिपोर्ट की। पुलिस ने कहा कि हम उनको पकड़े लेते हैं। अगर वे पकड़े गए तो तुम्हें अदालत में बयान देना पड़ेगा। बस इतना बयान काफी है कि उन्होंने तुम्हारे साथ बलात्कार किया कि उन चारों को फांसी हो जाएगी।
अभी तो ईरान में कोई आदमी को मूलियों की तरह काटा जा रहा है।

कमल ने मुझे तार भेजा कि मैं क्या करूं? क्या चार आदमियों को कटवा दूं? माना कि उन्होंने मुझे सताया, मगर बात आयी और गयी हो गयी। मेरा क्या बिगड़ गया! चार आदमियों को कटवा दूं?
मैंने उसे लिखा: "जो तुझे ठीक लगे, क्योंकि इस संबंध में मैं तेरे ही निर्णय पर बात छोड़ता हू। मैं कुछ भी कहूंगा तो पीछे हो सकता है तुझे पछतावा हो। अगर मैं कहूं कि छुड़वा दे तो तू शायद पीछे शायद सोचे कि छुड़वाना नहीं था। और मैं कहूं कि फांसी लगवा दे तो शायद पीछे सोचे कि चार आदमियों की हत्या, एक छोटी-सी बात के लिए, जिसका कोई मूल्य नहीं है, जिसका कोई भी मूल्य नहीं! तू खुद ही निर्णय कर ले।"
मैं बहुत खुश हुआ, जब वह लौट कर आई, तो उसने अदालत में इनकार कर दिया। उसने कहा कि नहीं, मेरे साथ कोई बलात्कार नहीं हुआ। जब वह आयी तो मैंने उससे पूछा। उसने कहा कि मैं इतनी आनंदित हूं कि मैं माफ कर सकी, क्योंकि बात में रखा भी क्या था!
शीलभंग में क्या हुआ जा रहा है? अगर तुम्हारा हाथ कोई पकड़ ले तो क्या बिगड़ता है? योनि-प्रवेश से भी क्या बिगड़ता है? बहुत ही ज्यादा हो तो डूस ले कर सफाई कर लेना। इतना मूल्य मत दो। अतिशय मूल्य दे रहे हो। जिंदगी में और जरूरी चीजें हैं।
मैं खुश हुआ। मैंने उसे आशर्वाद दिया कि मैं प्रसन्न हूं, तूने ठीक निर्णय लिया। चार आदमियों की जिंदगी का मूल्य बहुत ज्यादा है। और मैंने कहा: "उन पर क्या गुजरी?" उसने कहा कि उनके चेहरे देखने लायक थे। आंखों से उनके आंसू गिरने लगे। जब हम अदालत से बाहर आए, उन चारों ने मेरे पैर छुए और कहा कि हमें क्षमा कर दो। हम मूढ़ हैं! बस हमसे भूल हो गयी। हमने यह आशा ही नहीं की थी। हम तय करके ही आए थे कि अब यह मौत... क्योंकि स्त्री का कह देना काफी है ईरान में।
मगर तुम क्या कहते हो, कमल ने ठीक किया या नहीं? क्या चार आदमियों को मारना... ? माना कि ये मूढ़ हैं, बेवकूफ हैं और माना कि इन्होंने गलती की, लेकिन ये भी क्या जिम्मेवार हैं, इनके पीछे हजारों अयातुल्लाओं का हाथ है। जो अयातुल्ला खोमैनी इनको फांसी लगवाएंगे उन्हीं के सिद्धांतों और शिक्षाओं का यह परिणाम है।
यहां बड़ा अदभूत काम चल रहा है इस दुनिया में! जो यहां सबसे ज्यादा उपद्रव के कारण हैं, वे पूजे जा रहे हैं। मेरी ऐसी दृष्टि नहीं है। निन्यान्नबे प्रतिशत शीलभंग तो समाप्त हो जाएगा, एक प्रतिशत रहेगा, क्योंकि कुछ न कुछ विक्षिप्त लोग कभी भी हो सकते हैं। मगर उनकी मानसिक चिकित्सा की जा सकती है। और उतना हमें स्वीकार करके चलना चाहिए, क्योंकि आदमी कोई परिपूर्ण नहीं है, उसमें थोड़ी भूल-चूकें होती रहेंगी। मगर भूल-चूकें भूल-चूकें हैं; उनको इतना मूल्य देना कि जैसे सारा जीवन ही उन्हीं पर आधारित है, गलत है। और उसी मूल्य के कारण अड़चन खड़ी होती है।
अब तुम कहते हो कि "निंदा शीलभंग करने वाले की की जानी चाहिए; उसकी नहीं जिसका शीलभंग किया जाता है।" निंदा किसी की भी नहीं की जानी चाहिए। निंदा की जानी चाहिए उस व्यवस्था की, जिसमें शीलभंग करने वाला पैदा होता है और शीलभंग करवाने वाले पैदा होते हैं। निंदा होनी चाहिए उस व्यवस्था की, उस संस्कार की, उस संस्कृति की। उसकी तुम बात नहीं उठा रहे हो, यश कोहली तुम चाहते हो इन दोनों में से तय हो जाना चाहिए।
निंदा दोनों की नहीं होनी चाहिए। दोनों एक अर्थ में निर्दोष हैं। दोनों का क्या कसूर है? एक नकारात्मक रूप से भागीदार है, एक विधायक रूप से भागीदार है, मगर दोनों निर्दोष हैं। दोशी है तो व्यवस्था है।
तुमने पूछाः "भारत में आक्रांत की निंदा होती है और आक्रमक अपना खेल अबाध जारी रखता है।"
यह सारी दुनिया में ऐसा है, क्योंकि पुरुष सारी दुनिया में आक्रमक रहा है। और सारे पुरुषों ने ही धर्म-शास्त्र बनाए हैं; उन्होंने ही नियम रचे, नीति रची। इसलिए स्त्रियों के लिए कोई जगह नहीं छोड़ी। "स्त्रियां नरक के द्वार हैं!" और तुम अभी भी बाबा तुलसीदास जैसे लोगों को पूजे चले जाते

हो। "स्त्रियां नरक के द्वार हैं! ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी!"
ये बाबा तुलसीदास इतने नाराज क्यों हैं स्त्रियों पर? और सच यह है कि इनकी स्त्री ने ही इनको बोध दिया था। ये खुद ही कामातुर थे। स्त्री गयी थी मायके, नहीं रोक सके अपने को। पहुंचे बाबा रहे होंगे! पहुंच गए बरसात में। नदी आयी हुई थी, मुर्दे को पकड़ कर नदी पार कर ली। कामांध रहे होंगे, मुर्दे को समझा कि लक्कड़ है। और फिर सांप को पकड़ कर चढ़ गए मकान के पीछे से। बाबा लोग हमेशा मकान के पीछे से चढ़ते हैं! सांप को समझा कि रस्सी है। अरे बाबा लोग तो मस्त रहते हैं, उनको क्या फर्क-रस्सी में सांप देखें, सांप में रस्सी देखें! उनके खेल का तुम कुछ पूछो ही मत!
स्त्री ने उनको चौंकाया, उनको जगाया। स्त्री ने कहाः "यह क्या करते हो? काश इतना प्रेम तुम्हारा राम से होता तो सर्वस्व पा लेते, जितना तुम्हारा मुझसे प्रेम है!" चोट खाकर लौट पड़े। उसी चोट का बदला ले रहे हैं। स्त्री ने स्वर्ग का रास्ता बताया, स्त्री को कह रहे हैं--नरक का रास्ता! उसकी गिनती ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी में कर रहे हैं, कि उसको पीटो। वह स्त्री ने जो पिटाई कर दी उस दिन, वह याद भूलती नहीं, उसका घाव गहरा बैठा गया है।
ये तुम्हारे सब ऋषि-मुनि समझाते हैंः "स्त्री नरक का द्वार है।"स्त्री नरक का द्वार क्यों होने लगी? मगर ये ऋषि-मुनियों का मन स्त्री में उलझा है। ये बैठे हैं धूनि रमाए वगैरह, राम-नाम की माला जप रहे हैं और भीतर काम ही काम उबल रहा है। घबड़ा रहे हैं, भयभीत हैं, बेचैन हैं, परेशान हैं। डर के कारण, अपने भीतरी डर के कारण स्त्री को गालियां दे रहे हैं। और इन्हीं ने सब शास्त्र बनाए, इन्हीं ने सब नियम बनाए, यही तुम्हारी छाती पर सवार हैं। इसलिए आक्रामक की निंदा होती है, क्योंकि आक्रामक पुरुष है और आक्रांता स्त्री है।
जब तक तुम यह सारी पुरानी परंपरा को उलटोगे नहीं, इस कचरे को एकबारगी
आग ही लगा दो, एकबारगी होली में जला दो, एकबारगी अतीत से छुटकारा कर लो, एक दफा सफाई कर लो अपने मन की--तो अड़चन न रह जाए, चीजें साफ हो जाएं। लेकिन साफ नहीं हो पातीं, कयोंकि यही लोग तो तुम्हारे विचारों के निर्माता हैं।
इन्हीं के आधार पर तो तुम सोचते हो। इन्हीं की लकीरों पर तो तुम दौड़ते हो। इन्होंने पटरियां बिछा दी हैं, उन्हीं पर तुम्हारे विचार की ट्रेनें दौड़ा करती हैं--आगे-पीछे।
कैसा मजा है, युधिष्ठिर को तुम कहते हो कि धर्मराज हैं! जुआ खेलें ये। स्त्री तक दांव पर लगा दिया, तो भी धर्मराज हैं! दुर्योधन को गाली देते हो और युधिष्ठिर को धर्मराज कहते हो! क्योंकि दुर्योधन हार गया और युधिष्ठिर जीत गए। जो जीत जाता है, वह नियम बनाता है। जो हार जाता है, वह कैसे नियम बनाएं, कौन उसके नियम बनाए? तो वे धर्मराज हो गए। खूब धर्मराज हैं! एक स्त्री को बांट लिया है पांच भाइयों ने, लेकिन जीत गए, तो बंटी हुईस्त्री भी पांच महाकन्याओं में एक गिनी जाती है। जो मर्जी हो करवाओ। जीत जिसकी है... जिसके हाथ में लाठी उसकी भैंस।
पुरुष के हाथ में लाठी है, क्योंकि धन है, पद है, प्रतिष्ठा है। इसलिए
जो मर्जी है, करवाए। इसलिए यह होता है कि आक्रमक की प्रशंसा या प्रशंसा नहीं तो कम से कम उपेक्षा। और जिस पर आक्रमण होता है, उसकी लोग निंदा करते हैं। स्त्री को लोग गाली देते हैं। लेकिन इसके बहुत पहलू हैं।
स्त्री जब अपने पति के साथ सती हो जाती है तब तुम सम्मान करते हो। लेकिन एक पुरुष "सता" नहीं हुआ। सदियां बीत गयीं, इतनी सतियां हुई, एक पुरुष को भी सता होने की इच्छा पैदा न हुई। और ये पुरुष सतियों के चौरे बना देते हैं। और ये पुरुष झांकियां सजाते हैं।
बंबई में कुछ पागलों की जमात है! मैं हमेशा अखबार में खबरें देखता हूं--ढांढन सती की झांकी! ये पता नहीं कौन पागल ढांढन सती की झांकी मना रहे हैं! आए दिन कुछ न कुछ उपद्रव मचाए रखते हैं ढांढन सती के नाम पर! और स्त्रियां बड़े मनोभाव से सुनेंगी यह बात कि जब पुरुष मर जाए तो स्त्री को मर जाना चाहिए। पुरुष ने सिखाया स्त्रियों को कि जिंदा--जिंदा भी तुम

हमारी हो, मर कर भी तुम हमारी हो। पुरुष को यह डर रहा कि अगर हम गए, पता नहींस्त्री किसी और के साथ हो जाए, किसी और को प्रेम कर ले। यह संपदा पर कब्जा पूरा होना चाहिए! तो हम मरें, हमारे साथ ही स्त्री को मरना चाहिए। मगर पुरुष क्यों मरे? पुरुष तो मालिक है!
स्त्री को हम "संपत्ति" कहते हैं। अब भी कहते हैं "स्त्री संपत्ति"! पुरुष को कभी तुमने "संपत्ति" कहा? अब भी जब विवाह होता है किसी लड़की का तो हम कहते हैं--"कन्यादान"। दान! लड़की कोई चीज-वस्तु है जो तुम दान कर रहे हो? शर्म नहीं आती कहते हुए कन्या-दान? लेकिन यह हमारी धारणा है। यह पुरुषों द्वारा नियोजित समाज है। अब तक स्त्री को हमने कोई सम्मान नहीं दिया। और अगर हम स्त्री को सम्मान देना चाहते हैं तो हमें अपनी पूरी नैतिक धारणाओं को, मर्यादाओं को रूपांतरित करना होगा।
वही कार्य, वही महत कार्य मैं यहां करने की कोशिश कर रहा हूं, इसलिए खूब गालियां खा रहा हूं। इसलिए जितनी गालियां मुझे पड़ रही हैं इस देश में शायद किसी को पड़ती हों। लेकिन मै। उनकी अपेक्षा करता हूं, जानता हूं कि यह स्वभाविक है। यह होगा ही।
तुम पूछते हो: "स्त्री मूक होकर दुख झेलती है।"
तुमने सिखाया है उसको मूक रहना। तुम बोलने कहां देते हो! स्त्री की तुमने वाणी छीन ली है। पहले तुमने उसे वेद पढ़ना रूकवा दिया। तुमने उससे पूजा के अधिकार छीन लिए, यज्ञ के अधिकार छीन लिए।
अभी कल खबर थी कि साउदी अरेबिया ने, अरेबिया से कोईस्त्री बाहर शिक्षा पाने नहीं जा सकती, इसका नियम बना लिया। यह बीसवीं सदी है या हम किसी बाबा आदम के जमाने में रह रहे हैं? स्त्रियां अब शिक्षा पाने के लिए बाहर नहीं जा सकतीं, क्यों? क्योंकि खतरा है। बाहर शिक्षा पाने जाती हैं तो वहां से लौटती हैं तो मुखर हो जाती हैं, उनको वाणी मिल जाती है। तुम स्त्रियों को शिक्षा भी देते हो तो भी इसलिए नहीं देते कि वे मुखर हो जाएं; इसलिए देते हो, ताकि ठीक वर मिल जाए; एम. ए. हो जाएं वे, ताकि कोई कलेक्टर, कोई कमिश्नर, काई डाक्टर, कोई इंजीनियर वर मिल जाए। स्त्री की शिक्षा का कुल इतना ही मूल्य है, उसके सर्टिफिकेट अच्छा वर फांसने के काम आते हैं, बस इससे ज्यादा कोई मूल्य नहीं है। इसलिए तुम स्त्रियों को किस तरह के विषय पढ़ाते हो, उस तरह के विषय पढ़ाते हो जिनका जीवन में कोई मूल्य नहीं है।

मैं दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर था। मैं चकित हुआ यह देख कर कि अधिकतर लड़कियां ही दर्शनशास्त्र पढ़ने आती हैं! मैंने पूछा कि माजरा क्या है? लड़कों को क्या हुआ? लड़के साइंस पढ़ते हैं, गणित पढ़ते हैं। लड़कियां क्या करेंगी गणित और साइंस पढ़ कर, उनको कोई दुनिया में काम थोड़े ही करना है। वे दर्शन-शास्त्र पढ़ती हैं--जिसका कोई उपयोग ही नहीं है; जो बिल्कुल बेकाम है; जिसकी कोई सार्थकता नहीं जीवन में। चूल्हा फूंको और दार्शनिक चिंतन करो। और दार्शनिक चिंतन में ऐसी बातें भी हैं, पुराने दर्शन-शास्त्रों में कि पात्र घी को सम्हालता है कि घी पात्र को सम्हालता है? बस चूल्हा फूंको और सम्हाल-सम्हाल कर देखो कि पात्र घी को सम्हालता है कि घी को पात्र सम्हालता है। और करना क्या है! रहस्यपूर्ण बातें सोचो... कि जलेबी बन जाती है तो इसके भीतर रस कैसे पहुंच जाता है... कि फुलका फूल जाता है, दोनों तरफ से बंद है, छेद बिल्कुल नहीं है, हवां कहां से पहुंच जाती है? ऊंची बातें, हवाई बातें! अध्यात्मिक बातें सोचो!
दर्शनशास्त्र पढ़ती है लड़कियां। काव्य शास्त्र पढ़ती हैं लड़कियां। भाषाशास्त्र पढ़ती है लड़कियां। बेकाम की बातें, जहां कोई और पढ़ने नहीं जाता! उनको सर्टिफिकेट देने पड़ते हैं, क्योंकि अगर लड़कियां भी आना बंद हो जाएं तो उनका धंधा गया। उनका धंधा ही उन पर चल रहा है।
तुमने वाणी छीन ली है उनसे। तुमने सिखाया है सदियों से कि पति जो है
वह स्वामी है, तुम दासी हो। अब दासियों को कोई बोलने का हक होता है? वे तो जी-हुजूर होनी चाहिए, जो पति कहे सो ठीक। क्या-क्या कहानियां तुमने गढ़ी हैं कि असली सतियां वे थीं कि उनके पतियों ने कहा कि हमें वेश्या के यहां ले चलो तो कंधे पर रख कर पति को वेश्या के यहां पहुंचा दिया! ये थींं

सतियां, ये थीं पत्नियां! और पति को पता चल जाए कि पड़ोसी के साथ हंस-बोल कर बात कर रही थी, तो गर्दन उतार लेगा।
चीन में यह रहा है नियम कि अगर कोई पति अपनी पत्नी को मार डाले, उस पर अदालत में मुकदमा नहीं चल सकता, क्योंकि पत्नी उसकी संपत्ति है। कोई अपनी कुर्सी तोड़ दे या कोई अपनी कार को जला दे, इसमें क्या मुकदमा? कोई अपना पंखा तोड़ कर फेंक दे, इसमें क्या मुकदमा? ऐसे ही पत्नी है। ऐसे बहुत-से समाज रहे हैं जहां मेहमान घर में आता हैं तो रात के लिए पत्नी भी उसको दे देते हैं। मेहमान का स्वागत होना चाहिए! अतिथि तो देवता है! और देवताओं के काम तो तुम जानते ही हो। सो देवता आए ही शायद इसलिए हों कि सुंदर पत्नी है और देवता का तो स्वागत पूरा होना चाहिए! रात देवता अकेले कैसे सोएंगे! तो पत्नी दे दो। और पत्नियां ये भी करती रही हैं।
तुमने उनसे वीणा छीन ली है। उनको सब दिशाओं में वाणी देनी होगी। और उनको वाणी तभी मिल सकती है सब दिशाओं में, जब तुम यह हिम्मत जुटाओ कि तुम्हारी अतीत की धारणाओं में निन्यान्नबे प्रतिशत अमानवीय हैं। और उन अमानवीय धारणाओं को चाहे कितने ही बड़े ऋषियों-मुनियों का समर्थन रहा हो, उनका कोई मूल्य नहीं है। न उन ऋषि-मुनियों का मूल्य है, न उन धारणाओं का कोई मूल्य है। चाहे वे वेद में लिखी हों, चाहे रामायण में लिखी हों, कुछ फर्क नहीं पड़ता। कहां लिखी हैं, इससे कोई सवाल नहीं है। एक पुनर्विचार की जरूरत है।
और तुम पूछते हो कि इसी कारण वह अपने पति के साथ वैवाहिक सुख तक भोगने
से वंचित रह जाती है।
वैवाहिक सुख किसी ने कभी भोगा है? कहां की बातें कर रहे हो, यश कोहली! विवाह तो दुख भोगने का आयोजन है। सुख भोगना हो तो अविवाहित रहना।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अचानक एक दिन धर्म-परिवर्तन कर लिया। मुझे खबर मिली तो मैं उससे मिलने गया। बाहर ही आंगन में वह बैठा था-सिर घुटाए, पीत वस्त्र पहने, पदमासन लगाए। मैंने पूछाः नसरुद्दीन, सुना है तुमने धर्म बदल लिया।
उसने धीरे से आंख खोल कर कहाः "हां, आपने ठीक ही सुना है। मैं अब बौद्ध
हो गया हूं।
मैं बोलाः वह तो तुम्हारे रंग ढंग देख कर समझ आ गया है। मगर यह तो बताओ
कि इसकी प्रेरणा तुम्हें किसने दी? तुम्हारा गुरू कौन है?
मुल्ला ने कहाः "गुरु की पूछते हैं! अरे एक नहीं, दो गुरु हैं! एक मेरी मां है, दूसरी मेरी बीबी। दोनों एक से एक बढ़ कर गुरु हैं। उन्हीं की कृपा से भगवान बुद्ध के वचनों पर मुझे श्रद्धा आ गयी।"
मैं बोलाः मैं कुछ समझा नहीं। गूढ़ पहेलियां न बुझाओ, सीधी-साफ बात करो। तुम्हारी मां तो कट्टर मुसलमान है और बीबी पक्की पारसी है। उन्होंने तुम्हें बौद्ध धर्म अपनाने की प्रेरणा क्यों दी?
नसरुद्दीन ने कहाः बात बिल्कुल सीधी-साफ है। इन दोनों चुड़ैलों ने मिल
कर मेरी ऐसी गति बनायी है कि पहला आर्य सत्य समझ आ गया, समझ आ गया, अनुभव में आ गया कि जीवन दुख है, सौ प्रतिशत दुख है। दूसरा आर्य सत्य भी समझ में आ गया, अनुभव में आ गया कि दुख के दो कारण हैं--एक मां और दूसरी बीबी। इन दोनों के बीच मैं पिसा जा रहा हूं, मरा जा रहा हूं, सड़ा जा रहा हूं। परमात्मा मेरी कोई मदद नहीं कर सका। कुरान कहती है कि वह महाकरुणावान है, एकदम गलत बात है। बुद्ध ने ठीक कहा हैः कोईईश्वर नहीं है। बस इन सब बातों के कारण मेरा परमात्मा पर से भरोसा उठ गया और मैं बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया।
मैंने कहाः "नसरुद्दीन, तुम बात तो बड़े पते की कह रहे हो, लेकिन तीसरे
और चौथे आर्य सत्य की चर्चा क्यों नहीं करते? बुद्ध ने कहा है, दुख निरोध का उपाय है और दुख से मुक्त दशा भी है।"
मुल्ला बोला: "आप तो जानते ही हैं भगवान। मैं ठहरा साधारण आदमी, दो सत्यों का पालन कर लिया, यही क्या कम है? बाकी दो की अभी मेरी हैसियत नहीं है।"

मैंने पूछाः "ईश्वर के न होने में तुम्हारा विश्वास पूरा-पूरा है या
वह भी आधा आधा है?"
नसरुद्दीन ने गर्व से सीना फुला कर कहा: "उस मामले में तो मैं बुद्ध
से भी सेंट परसेंट राजी हूं। कोईस्त्रष्टा नहीं है, सब अपने-आप नियमानुसार चल रहा है। धर्म ही सब कुछ है। धम्मं शरणं गच्छामि! कोई परमात्मा नहीं है--और मुहम्मद ही उसके एकमात्र पैगंबर हैं।"
वैवाहिक जीवन सुखी जीवन नहीं हो सकता, क्योंकि अब तक हम मनुष्य को प्रेम करने की सुविधा ही नहीं दे पाए। अब तक हम एक ऐसी व्यवस्था नहीं बना पाए जहां प्रेम के फूल खिल सकें। और प्रेम से अगर विवाह निकले तो सुख आ सकता है। हमने उल्टी चेष्टा की हैः हम चाहते हैं विवाह से प्रेम निकले। यह नहीं हो सकता। और यही हम अब तक करते रहे हैं। विवाह से प्रेम नहीं निकलता, सिर्फ व्यवस्था निकलती है, सुरक्षा निकलती है। कभी कोई अपवाद स्वरूप एकाध घटना घट जाती हो, उसको नियम मत मान लेना। उससे नियम सिद्ध होता है, खंडित नहीं होता।
प्रेम चाहिए पृथ्वी पर और प्रेम के लिए बड़ी क्रांति चाहिए। मैं उसी क्रांति में लिए आव्हान दे रहा हूं। प्रेम से फिर विवाह निकले न निकले, कोई चिंता नहीं। प्रेम से जो भी निकलेगा शुभ होगा। लेकिन प्रेम में जीने का अर्थ होता है: असुरक्षा में जीना। और हम सब सुरक्षा-लोलुप हैं। इसलिए हम प्रेम की झंझट में नहीं पड़ना चाहते। हम विवाह की सुरक्षा चाहते हैं, शरण चाहते हैं। इसलिए हम इन ऋषि-मुनियों से राजी हो गए। इन्होंने हमें व्यवस्था दे दी, इन्होंने हमें सुरक्षा दे दी।
मुझसे तो केवल वे ही लोग राजी हो सकते हैं, यश कोहली, जिनमें हिम्मत है, साहस है, दुःसाहस है--जीवन में प्रयोग करने का, जीवन को दांव पर लगा देने का। तो ये सारी बातें रूपांतरित हो सकती हैं। लेकिन इन बातों की जड़ में जाना जरूरी है। पत्तियां मत काटो। पत्तियां लक्षण हैं। समस्याएं लक्षण हैं। समाधान खोजेगे तो बहुत जड़ में उतरना पड़ेगा। और जब तक जड़ें न काटी जाएंगी, तब तक ऊपर-ऊपर तुम रंग रोगन कर लो, फिर-फिर उतर जाएगा। जरा वर्षा का झोंका आएगा, सब रंग-रोगन बह जाएगा। फिर बात वहीं के वहीं।

आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
तीसरा प्रवचन

संन्यासः जीवन का महारास

पहला प्रश्नः ओशो, अधिकांश समाचार-पत्र आपके विषय में बहुत ऊलजलूल बातें छापते हैं, जिससे लोगों में भी बहुत ही गलत तरह की बातें प्रचारित होती हैं और गलत अपेक्षांए लिए लोग आश्रम देखने चले आते हैं। भगवान, क्या समय रहते इसे रोकने का कोई उपाय करना जरूरी नहीं है?

चैतन्य कीर्ति! सत्य के विपरीत असत्य ज्यादा देर टिकता नहीं। सत्य को असत्य की चिंता भी नहीं करनी चाहिए। असत्य यदि असत्य है, तो अपने से मिट जाएगा, और अगर सत्य है तो मिटना ही नहीं चाहिए। हमारी और से चेष्टा करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। जो कहा जा रहा है वह सत्य होगा, तो जीएगा और जीतेगा। और सत्य को जीतना ही चाहिए! सत्य की विजय हो, यही तो हम सबकी आकांक्षा है। और अगर वह असत्य है तो लाख उपाय करो, कितना ही उसे सम्हालों, सजाओ, तुम मुर्दे में सांसें न फूंक सकोगे; तुम लाश को चला न सकोंगे। थोड़ी- बहुत देर शायद किसी को धोखा दे सको, लेकिन थोड़ी-बहुत देर का धोखा-बहुत देर का धोखा अंततः धोखा देने वालों को ही महंगा पड़ जाता है। क्योंकि जो लोग उन ऊलजलूल और व्यर्थ की बातों को सुन कर यहां आ जाते हैं, वे कम से कम यहां तो आ जाते हैं। इतना काम तो वे समाचार पत्र और उनका प्रचार कर देता है। यह तो हमारी सेवा हुई। और इस सेवा के लिए हम उन्हें कुछ दे भी नहीं रहे हैं। यहां जो आएगा, कुछ तो देखेगा, कुछ तो सुनेगा, कुछ तो पहचानेगा! जैसा आया था वैसा ही वापस नहीं जा सकता। जो धारणाएं ले कर आएगा, उन धारणाओं में से कुछ निश्चित ही खंडित हो जाएंगी, धूल-धसरित हो जाएंगी। कुछ नयी दृष्टि लेकर लौटेगा।
इसलिए उनके कृत्य को रोकना उचित नहीं है। उनके कृत्य को चलने ही दो।
सत्य छिपाए छिपता नहीं; असत्य, कितना ही प्रचारित करो, कितना हो चलाओ, गिर-गिर जाता है। असत्य के पास अपने पैर नहीं होते, उधार पैर होते हैं; अपने पंख नहीं होते, उधार पंख होते हैं। उधारी से कितनी देर काम चल सकता है। थोड़े से लोगों को थोड़ी देर के लिए धोखा दिया जा सकता है। और जो लोग इस तरह की बातों में आ जाते हैं, वे किसी भी तरह की बातों में आ जाएंगे; उनका कोई मूल्य भी नहीं है। वे कुएं में न गिरेंगे तो खाई में गिरेंगे। उन्होंने जैसे गिरने का तय ही कर लिया है। उन्हें रोका भी नहीं जा सकता। आखिर प्रत्येक व्यक्ति को गिरने की भी स्वतंत्रता है! और प्रत्येक व्यक्ति को जो भी उसे मानना हो, असत्य को भी मानना हो, तो इसकी भी तो स्वतंत्रता है, जन्मसिद्ध अधिकार है।
असत्य दूर से प्रभावित कर सकता है; पास आते ही उसका पाखंड टूट जाता है।
तो मैं तो मानता हूं कि वे सारे अखबार मेरे कान में ही लगे हैं। उनसे मैं नाराज नहीं हूं।
बुद्ध के जीवन में एक बहुत प्यारा उल्लेख है। उस कहानी को मैंने बहुत बार कहा है और हर बार चाहा था कि कहानी में थोड़ा सुधार करूं। आज ठीक-ठीक मौका है कि उस कहानी में थोड़ा सुधार करूं।
बुद्ध का एक शिष्य, "पूर्ण" सच में ही पूर्ण हो गया, बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। उसके जीवन में ज्योति जगी। उसने अपने को पहचाना। उसे साक्षात्कार हुआ सत्य का। अंधकार मिटा, सुबह का सूरज निकला। बुद्ध ने पूर्ण को बुला कर कहा: "अब जरूरत नहीं है कि तू मेरी छाया बना हुआ घूमे। अब तू जा, दूर-दूर लोगों तक मेरा संदेश पहुंचा। अब तू समर्थ है। अब तू योग्य है। तू कहां जाना चाहेगा?"
तो बिहार का एक हिस्सा था-"सूखा"। बहुत सूखे लोग रहे होगें उस हिस्से के, जिनका हृदय मर चुका होगा, शायद इसीलिए उसको "सूखा" कहते होंगे; जिनके भीतर रसधार सूख गयी होगी; जिनके जीवन में भावना जैसी कोई चीज शेष न रही होगी। पूर्ण ने कहा: "आप आज्ञा दें तो मैं सूखा प्रदेश जाना चाहता हूं,

क्योंकि अब तक हमारा कोई भी संन्यासी, कोई भी भिक्षु आपका संदेश ले कर वहां नहीं गया।"
बुद्ध ने कहा: "पूर्ण, तू अभी युवा है, अभी तू अनुभवी नहीं है। माना कि सत्य का तुझे साक्षात्कार हुआ है, मगर संसार का तुझे अनुभव नहीं है। तू इससे ही पाठ ले कि अभी तक कोई संन्यासी वहां नहीं गया। बुजुर्ग से बुजुर्ग ज्ञानी वहां नहीं गए, क्यों? कारण साफ है। वहां के लोग हृदयहीन हैं, दृष्ट हैं, बहुत अमानवीय हैं, पशु जैसे हैं। बहुत बुरा व्यवहार करेंगे। पहले तो तेरी सुनेंगे नहीं। तू कुछ कहेगा, वे कुछ सुनेंगे। तू कुछ कहेगा, वे कुछ फैलाएंगे। आदमी ही गलत हैं वे। अपमान करेंगे तेरा, निंदा करेंगे तेरी। अंधे हैं लोग वे। उनके पास प्रेम की आंख ही जैसे फूट गयी है। तर्क में जरूर कुशल हैं। इसलिए वाद-विवाद भी बहुत करेंगे। और ये बातें वाद-विवाद की तो नहीं हैं; ये बातें तो प्रेम में, प्रीति में, हृदय और हृदय से ही समझे जाने की हैं। ये सिर टकराने से हल होने वाली समस्याएं नहीं हैं। ये समाधान हैं, जो हृदय में भाव के फूल खिलते हैं तो ही उपलब्ध होते हैं। अब तो तू अपने अनुभव से जानता है। तू व्यर्थ झंझट में क्यों पड़ना चाहता है? तू अभी नया- नया है, युवा है, कोई और प्रदेश चुन ले।"
लेकिन पूर्ण ने तो जिद बांध ली। पूर्ण ने तो कहा कि वहां कोई गया नहीं, इसीलिए मैं जाना चाहता हूं। और अगर लोग बुरे हैं तो आखिर उन बुरे लोगों को भी तो आपका संदेश सुनाने की जरूरत है! कौन उन्हें आपकी खबर देगा? अगर वे बीमार हैं तो उन्हीं को तो चिकित्सा की ज्यादा जरूरत है। अगर उनकी भावनाएं मर गयी हैं तो उन्हीं की भावनाओं को ही तो जगाना है। अगर वे सुख गए हैं तो आप के रहते अगर उनके जीवन में हरियाली न आयी तो फिर कब हरियाली आएगी? फिर उनके सौभाग्य का उदय कब होगा? मुझे आज्ञा दें! बुद्ध ने कहा: "आज्ञा तो दूंगा। तू मांगता है तो आज्ञा दूंगा। लेकिन तीन प्रश्न पूछना चाहता हूं। उनके तू ठीक उत्तर दे देगा तो आज्ञा दूंगा। पहला: वे तेरा अपमान करेंगे तो तेरे मन में क्या होगा?"
तो पूर्ण ने कहा: "मत पूछों। आप जानते हैं भलीभांति कि मेरे मन में क्या होगा। मैं आल्हादित होऊंगा, आनंदित होऊंगा, प्रफुल्लित होऊंगा कि वे केवल अपमान ही करते हैं; मारते तो नहीं, पीटते तो नहीं। लोग तो उनके संबंध में क्या-क्या कहते थे-हत्यारे हैं, पाशविक हैं! इतने बुरे तो नहीं लोग, जितना लोग कहते थे; सिर्फ अपमान करते हैं, तो अपमान में मेरा क्या बिगड़ता है? गाली यहां से आयी वहां से गयी। गाली तो हवा है। गाली मुझे छुएगी ही नहीं। मैं पकड़ूंगा ही नहीं गाली को, तो मेरा गाली क्या बिगाड़ लेगी? मैं धन्यवाद दूंगा कि भले लोग हैं कि सिर्फ अपमान करते हैं, मारते-पीटते नहीं।"
बुद्ध ने कहा: "फिर दूसरा प्रश्न-अगर वे मारें-पींटे तो तुझे क्या होगा?"
पूर्ण ने कहा: "आप भलीभांति जानते हैं कि मुझे क्या होगा; फिर भी पूछते हैं तो मैं उत्तर देता हूं कि वे मुझे मारेगे तो मैं कहूंगा-भले लोग हैं, मार भी डाल सकते थे, लेकिन सिर्फ मारते ही हैं। अब मारने में क्या बनता-बिगड़ता है! मार भी डालते तो भी कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। देह तो मिटनी ही है-आज कि कल, कल कि परसों। यह तो क्षणभंगुर है। आपने ही तो समझाया और मैंने जाना भी कि जो जन्म है मरेगा। फिर भी मारते नहीं हैं, मार नहीं डाल रहे हैं; सिर्फ मारते-पीटते हैं। चलो थोड़ी चोट मार दी कि चांटा मार दिया, क्या बन-बिगड़ जाएगा! घाव भी लग गया तो भर जाएगा। ऐसे भी तो घाव लग जाते हैं। ऐसे भी तो देह बीमार पड़ जाती है। लोग इतने बुरे नहीं, जितना लोग कहते थे। सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते हैं।"
और बुद्ध ने कहा कि तीसरा प्रश्न तुझसे पूछता हूं-अगर वे तुझे मार ही डालें तो मरते-मरते तेरे मन में क्या होगा?
कहानी तो यही कहती है। यहीं में फर्क करना चाहता हूं। बहुत दिन से करना चाहता था। किया नहीं। सोचा कि न छेड़ो शास्त्र को, जैसा है रहने दो। मगर मुझे अखरता हमेशा था। कहानी तो यही कहती है कि पूर्ण ने कहा कि जब वे मुझे मार ही डालें, तब भी मैं धन्यवाद से मरूंगा, क्योंकि मैं सोचूंगा: उस

जीवन से छुटकारा दिलाए दे रहे हैं जिस जीवन में कोई भूल-चूक हो सकती थी।
भले लोग हैं, शुभ लोग हैं। जिस जीवन में कोई भटकाव हो सकता था, रास्ते से च्युत हो सकता था, मार्ग भूल सकता था-उस जीवन से छुटकारा दिलाए दे रहे हैं।
अच्छे लोग हैं। झंझट से छूटे, उपद्रव कटा। ऐसे सद्भाव से मरूंगा।
बुद्ध ने आज्ञा दी कि तू जा। अब तू कहीं भी जा। अब कोई अड़चन नहीं है। तुझसे सत्य प्रगट होगा। गहन से गहन अंधेरी रात में, अमावस में भी प्रगट होगा! और सूखे से सूखे लोगों में भी तेरे कारण सत्य का अंकुरण होगा! तू जा, जहां तेरी मर्जी हो जा! मुझ तेरी आकांक्षा शुभ मालूम होती है! मेरे आशीर्वाद सदा तेरे साथ हैं!
इस कहानी में मैं तीसरे अंग में थोड़ा-सा फर्क करना चाहता हूं। इसलिए फर्क करना चाहता हूं कि जो व्यक्ति परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, वह चाहे तो भी उससे कोई भूल हो नहीं सकती। इसलिए पूर्ण यह कहेगा कि "उस जीवन से मेरा छुटकारा करवा दिया, जिसमें कोई भूल हो सकती थी", यह बात जंचती नहीं। यह बात असंभव है। परम ज्ञानी भूल करना चाहे तो अभिनय कर सकता है, लेकिन भूल कर नहीं सकता। वह तो असंभव है। वह मार्ग-च्यूत हो नहीं सकता, क्योंकि वह जहां चले वही मार्ग है। वह मार्ग च्यूत हो जाए तो वह च्यूत होना ही मार्ग है। जिसके भीतर का दीया जल गया, उसके लिए अब कहीं भी अंधेरा नहीं हो सकता; वह अंधेरे से अंधेरे में भी चला जाए तो भी उसके भीतर रोशनी है। उसके चारों तरफ रोशनी बिखरती रहेगी। वह तो रोशनी में ही होगा-रात हो कि दिन, जन्म हो कि मृत्यु। जो परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है उसे जीवन बोझ नहीं है कि उससे वह छूटना चाहे। इतनी भी आकांक्षा उसके भीतर नहीं रह सकती कि चलो एक बोझ से छुटकारा हुआ।
इसीलिए तीसरी बात पूर्ण ने कही होगी, ऐसा में नहीं मानता। कहीं शास्त्रों में भूल हो गयी है। कहीं लिखने वालों की चूक हो गयी है। अगर में पूर्ण की जगह होता तो तीसरे उत्तर में मैंने कहा होता कि भले लोग हैं, मैं आनंदित मर रहा हूं-इस कारण कि कम से कम इन्होंने मेरी उपेक्षा तो नहीं की। उपेक्षा भी कर सकते थे। और इस जगत में सत्य के लिए कोई बड़े से बड़ा खतरा हो सकता है तो वह उपेक्षा है।
तुम जरा सोचो, अगर जीसस को सूली न दी होती लोगों ने, उपेक्षा कर गए होते, तो शायद तुमने जीसस का कभी नाम भी न सुना होता। उस बढ़ई के बेटे में ऐसी और क्या बात थी जो उसके नाम को इतना महत्वपूर्ण बना देती कि इतिहास में कोई दूसरा नाम उतनी महत्ता नहीं रखता है? इतिहास ही इस नाम से आधार पर विभाजित हो गया। जो ईसाई नहीं हैं वे भी इतिहास को ईसा के नाम से ही विभाजित करते हैं-ईसा-पूर्व और ईसा-पश्चात। सारा जगत ईसा को रेखा मान कर चलता है, कि ईसा के पहले एक दुनिया थी, वह ईसा-पूर्व और फिर ईसा के बाद एक और ही दुनिया है। जैसे मनुष्य-जाति ने एक नया सोपान चढ़ लिया, एक नया शिखर छू लिया-ईसा पश्चात। इस बढ़ई के बेटे ने अद्भूत किया, कमाल किया!
अगर बुद्ध को लोगों ने पूजा तो पूजने में यह भी कारण हो सकता है कि वे सम्राट के बेटे थे। महावीर को अगर लोगों ने पूजा तो उसमें कारण हो सकता है कि वे सम्राट के बेटे थे। जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजाओं के बेटे हैं, इस बात को कभी भूलना मत। एक भी तीर्थंकर किसी गरीब घर से नहीं आया है। आ सकता नहीं। गरीब बेटे को कौन पूजेगा! राजाओं के बेटे स्वभावतः पूज्य हो गए। वैसे ही पूज्य थे, फिर उन्होंने राजमहल छोड़ दिए तो और भी पूज्य हो गए। जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजपुत्र हैं। बुद्ध भी राजपुत्र हैं। राम भी, कृष्ण भी, हिन्दुओं के अवतार भी, भारत में तो जिनको भी हमने परम सत्कार दिया है, वे सब राजाओं के बेटे हैं। जीसस की कौन फिक्र करता! जीसस तो बिल्कुल बेपढ़े-लिखे, गांव के गंवार थे। लेकिन सूली ने बात बदल दी। सूली ने इतिहास बदल दिया। सूली ने एक बात साफ कर दी कि जिस आदमी को सूली देनी पड़ी है वह आदमी कीमती होना ही चाहिए, नहीं तो सूली देने की जरूरत न पड़ती। सुकरात को लोगों ने जहर पिला कर मारा। जब सुकरात मर रहा था तो उसके एक शिष्य ने, त्रेटो ने उससे पूछा: "गुरूदेव, अब आपकी अंतिम घड़ी है। आप हमें संदेश दें कि आप अपना अंतिम संस्कार कैसे करवाना चाहेंगे? आप कहेंगे कि देह जलायी जाए, जैसा कि पूरब में लोग करते हैं या कि गडायी जाए, जैसा कि

पश्चिम में लोग करते हैं? या कि कोई और विधि आपकी दृष्टि में है? क्योंकि आपकी हर चीज के संबंध में एक मौलिक सूझ-बूझ है।"
सुकरात मर रहा था। उसने आंख खोलीं और कहा: "त्रेटो, वे लोग समझते हैं,
जो मेरे दुश्मन हैं, कि मुझे मार डाल कर मिटा देंगे। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, मुझे मार कर वे अमर किए दे रहे हैं। मैं वैसे ही मर जाता। लेकिन वे मुझे मार रहे हैं, इसलिए मुझे अमर किए दे रहे हैं। और तुम इस फिक्र में पड़े हो कि कैसा मेरा दाहसंस्कार करोगे! अरे जब मैं जा ही चुका तो तुम गड़ाओ, जलाओ कि नदी में बहाओ, क्या फर्क पड़ता है? जाने वाला जा चुका। पक्षी उड़ चुका, पिंजड़ा पड़ा है, पिंजड़े के साथ तुम्हें जो करना हो वही कर लेना। उनको खयाल है कि वे मुझे मार रहे हैं; तुमको खयाल है कि तुम मुझ गड़ाओगे, मेरा अंतिम संस्कार करोगे! और मैं तुमसे कहता हूं कि उनका नाम भी अगर कभी याद किया जाएगा तो सिर्फ इसलिए कि उन्होंने सुकरात को जहर पिलाया था और तुम्हारा भी नाम अगर याद रहेगा दुनिया में तो सिर्फ इसलिए कि तुमने सुकरात से पूछा था कि आपका अंतिम संस्कार कैसे किया जाए।"
और यह बात सच है। त्रेटो का नाम कौन याद रखता, किस कारण याद रखता! लेकिन सुकरात ने कहा कि मैं उनको जो मुझे मार रहे हैं और तुमको जो मेरा दाह-संस्कार करोगे, सबको गड़ा कर भी जिंदा रहूंगा। और वह ठीक कह रहा है। उसका कुल कारण इतना है कि जिस व्यक्ति को तुम्हें जहर पिलाना पड़ रहा है, उसने एक बात तो सिद्ध कर दी कि उसकी बातों में कुछ बल है--ऐसा बल है कि उसने तुम्हें तिलमिला दिया है। उसने तुम्हारी जड़ें हिला दी हैं। उसने तुम्हारी न्यस्त स्वार्थों की व्यवस्था को झकझोर दिया है। उसने तुम्हारे स्थापित मूल्यों को पुनर्विचार के योग्य बना दिया है; प्रश्न-चिह्न लगा दिए हैं तुम्हारे शाश्वत मूल्यों पर; जिनको तुम सोचते थे कि ये हमारे शाश्वत मूल्य हैं, उनको उसने पुनःविचारणीय बना दिया है। उसने तुम्हारी सदियों पुरानी लकीरों, परंपराओं, लीकों पर गहन आघात कर दिए हैं। उसने तुम्हारे पैरों के नीचे से जमीन खींच ली है। उसने तुम्हें अधर में लटका दिया है। उसने तुम्हें मजबूर कर दिया है कि निर्णय करना होगा।
सुकरात या जीसस या मंसूर ऐसे लोग हैं-या तो तुम उनके साथ हो सकते हो या उनके दुश्मन, इन दो के अलावा कोई और उपाय नहीं है। आज फिर मेरे साथ वैसी ही बात हुई जा रही है। या तो तुम मेरे दोस्त हो सकते हो या मेरे दुश्मन, मेरी उपेक्षा नहीं कर सकते। और इसलिए मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूं। उन सबका धन्यवाद करता हूं जो मेरी उपेक्षा नहीं कर सकते। वे बांटे दे रहे हैं लोगों को अपने-आप। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि कितने लोग मेरे साथ हैं और कितने लोग मेरे विरोध में हैं। निश्चित ही ज्यादा लोग मेरे विरोध में होंगे और कम लोग मेरे साथ में होंगे, क्योंकि साथ में होने के लिए हिम्मत चाहिए, दुस्साहस चाहिए। विरोध में होने के लिए तो कुछ भी नहीं चाहिए। वह तो कायरों के लिए बिल्कुल आसान है। भीड़ के साथ होना कायर को बिल्कुल ही सुगम है। मेरे साथ होना खतरे से खाली नहीं है। सब तरह की असुविधा है। मेरे साथ होने का अर्थ है कि तुम अपने को मुसीबत में डालोगे। मेरे साथ होने का अर्थ है कि तुम अपने हाथ से अपने लिए झंझटें खड़ी कर लोगे।
अभी कल एक जर्मनी के बहुत प्रतिष्ठित इंजीनियर ने संन्यास लिया। संन्यास लेने के बाद उन्होंने खबर भेजी। वे विश्वविख्यात इंजीनियर की जो फर्म है-साहमन्स-उसके बहुत बड़े ओहदे पर हैं। साठ इंजीनियर उनके नीचे काम करते हैं और तीन हज़ार दूसरे विशेषज्ञ काम करते हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं गैरिक वस्त्रों में जाऊंगा तो झंझट होने वाली है। यह बड़ी नौकरी, यह बड़ी कार, यह बड़ा मकान, यह बड़ी प्रतिष्ठा-यह सब मैं दांव पर लगाने को राजी हूं। यह मैंने संन्यास लेने के पहले ही सोच लिया कि यह जाएगा, यह बच नहीं सकता। क्योंकि वे बर्दाश्त न कर सकेंगे मेरे गैरिक वस्त्रों को। तो आप क्या कहते हैं? मैं राजी हूं सब दांव पर लगाने को। मैं सब छोड़ने को राजी हूं। सिर्फ आपकी आज्ञा चाहिए। आप जैसा कहें। यह सब छोड़-छाड़ कर यहां आ जाऊं या यह सब छोड़-छाड़ कर वहां आपके काम में लग जाऊं? या आप चाहते हैं कि साइमन्स की फर्म को अदालत में घसीटूं, क्योंकि कानूनी ढंग से वे मुझे अलग

नहीं कर सकते हैं। कानूनी ढंग से कोई पाबंदी नहीं है गैरिक वस्त्रों पर, न माला पर। जल्दी ही कानूनी ढंग से भी व्यवस्था होने लगेगी।
मैंने उनसे कहा कि पहले अदालत। पहले पूरी टक्कर दो। जीतो पहले और फिर छोड़ देना। छोड़ना तो है, क्योंकि क्या मजा रहा! लेकिन छोड़ना जीतने के बाद। पहले पूरी टक्कर। पूरा झकझोर दो उनको भी। इस बीच तीन हजार विशेषज्ञों में और साठ इंजीनियरों में जितनों को भी गैरिक बना सको बना डालो। यह मौका क्यों छोड़ना!
यह बात उन्हें जंची। उन्होंने कहा: "तो फिर मैं जाता हूं। फिर पहले वहां टक्कर लूंगा।"
"पहले वहां जीत, फिर जीत कर इस्तीफा दे देना, उसमें शान है।"
मेरे साथ होने के लिए हिम्मत तो चाहिए पड़ेगी। मगर ये सारी अफवाहें एक अच्छा काम किए दे रही हैं, वे लोगों को बांटे दे रही हैं। हजारों लोग आश्रम देखने आते हैं। नियमित रूप से सैकड़ों लोग आश्रम देखने आते हैं। उनमें से कुछ आंदोलित हो कर लौटते हैं, प्रभावित हो कर लौटते हैं, हैरान हो कर लौटते हैं, किंकर्तव्य-विमूढ़ हो कर लौटते हैं। क्योंकि वे आते कुछ और ही आशा में हैं। वे शायद कभी न आए होते, अगर ये अखबार मेरे खिलाफ ऊलजलूल प्रचार न करते। यहां से लौट कर जाते हैं तो चुप तो नहीं रहेंगे; जो अनुभव हुआ है वह कहेंगे तो; जो देखा है वह कहेंगे तो। इतनी बात तो साफ हो जाएगी कि जो कहा गया है वह सरासर झूठ है।
निश्चित ही बहुत झूठ कहे जा रहे हैं। और इसी देश में कहे जा रहे हैं, ऐसा नहीं है; करीब-करीब सारी दुनिया में। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो। बुद्ध को गालियां पढ़ी थीं, मगर बिहार तक सीमित रहीं। महावीर को गालियां पड़ी थीं, वे बिहार तक सीमित रहीं। जीसस को गालियां पड़ी थीं, वे जेरूसलम तक सीमित रहीं। सुकरात को गालियां पड़ीं, वे एथेंस के बाहर नहीं गयीं। मेरा मामला पहला मामला है, जिसको सार्वभौमिक रूप से गालियां पड़ रही हैं। दुनिया में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहां मेरे संबंध में ऊलजलूल बातें नहीं छापी जा रही हैं और जितना दूर है देश, उतनी ऊलजलूल बातें छापी जा रही हैं, क्योंकि वहां के लोग सोचते हैं कि कुछ भी यहां करो, कौन जाने वाला है! लेकिन लोग वहां से भी आने लगे। और जब वे आ कर देखते हैं तो बहुत हैरान होते हैं, चकित होते हैं। जर्मनी के एक प्रसिद्ध अखबार ने छापा कि "जब हमारा पत्रकार आश्रम पहुंचा, तो पांच बजे सुबह उसने द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुले। एक नग्न सुंदरी ने द्वार खोला। उस पत्रकार को अंदर ले गयी। आश्रम पंद्रह वर्गमील के क्षेत्र में बना हुआ है। (पद्रंह वर्गमील में शायद पूरा पूना भी नहीं है) और वहां हजारों जोड़े नग्न घूम रहे थे!"
ब्रह्ममुहूर्त ऋषि-मुनियों का प्राचीन समय से ही काल रहा है। हालांकि मेरे आश्रम में कोई ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठता, क्योंकि हम तो मानते यह हैं कि जब आंख खुली तब ब्रह्ममुहूर्त। जब ब्रह्म जगे तब ब्रह्ममुहूर्त। जब ब्रह्म अभी सो ही रहे हैं तो कैसे ब्रह्ममुहूर्त!
"वह महिला एक वृक्ष के पास ले गयी। उसने वृक्ष से एक फल तोड़ा, जो देखने में सेब जैसा लगता था!"
यह रहा होगा वही फल, जो शैतान ने हव्वा को दिया था और हव्वा ने आदम को खिलाया था और जिसको खाने की वजह से आदम और हव्वा को ईश्वर ने स्वर्ग के बगीचे से निकाला था। सेब जैसा वह भी लगता था।
"और उस महिला ने कहा: इसे खाओ। इसे खाने से तुम सौ वर्ष जीओगे। न केवल
सौ वर्ष जीओगे, बल्कि सौ वर्ष तक तुम्हारी काम-ऊर्जा युवा बनी रहेगी।" फिर उस महिला ने आश्रम घुमाया, जहां बड़ी-बड़ी झीलें हैं, जिनमें नग्न लोग स्नान कर रहे हैं! बड़े जलप्रपात हैं। फिर भूमिगत स्थानों पर ले गयी।" तुम खयाल रखना, तुम भूमिगत भवन में बैठे हुए हो!--... "भूमिगत भवन में मेरा प्रवचन चल रहा था, जहां पांच हजार संन्यासी नग्न बैठे हुए थे, क्योंकि प्रवचन सुनने की पहली शर्त है नग्न होना।"
यह जिस आदमी ने लिखा होगा, कल्पनाशील है, कवि मालूम होता है। और बातें मुझे जंची। मैंने सोचा कि खयाल बुरा नहीं है। पंद्रह वर्गमील में होना ही

चाहिए आश्रम-होगा! झीलें भी होंगी। और द्वार पर स्वागत भी ढंग से ही होना चाहिए किसी का। फलाहार कोई बुरी बात तो नहीं।

फिर जर्मनी से लोग आने शुरू हो गए, जो आ कर पूछने लगे कि वह वृक्ष कहां है, झीलें कहां हैं? पांच हजार लोग बैठ सकें, वह भूमि के अंतर्गत भवन कहां है?
मैंने कहा: भई यह तुम उससे पूछो। हमें तो खयाल मिल गया तो नया जो आश्रम बनेगा, उसमें हमस ब ये इंतजाम करने की कोशिश करेंगे। और भेजे हैं हमने तलाश में लोग, जो उस फूल को भी ले आएं, क्योंकि बात हमें भी जंची है; तुम्ही को नहीं जंची। मगर अभी मजबूरी है कि हम उनकी अपेक्षाएं पूरी नहीं कर सकते।
इस तरह की ऊलजलूल बातें कितनी देर तक चल सकती हैं? क्या इनका मूल्य हो सकता है? लेकिन ये बातें कई लोगों को यहां ले आयी। तो लाभ तो हुआ, हानि क्या हुई? मेरा बिगड़ा क्या?
झूठ चलता नहीं; लाख चलाओ, गिर-गिर पड़ता है। और ऐसी बेहूदी जगह गिरता है
कि बोलने वाले को भी चौपट कर जाता है। अब ये लोग वापस लौटे। इन्होंने अखबारों में पत्र लिखें कि ये सरासर झूठी बातें हैं। और यह आदमी, जिसने यह लेख लिखा है, कभी गया भी नहीं है आश्रम, इसका आश्रम से कुछ लेना-देना भी नहीं है।
मुल्ला नसरूद्दीन का एक युवती से नया-नया प्रेम हुआ था। युवती ने एक दिन बातों-बातों में कहा कि कभी हमारे घर आइए न!
नसरूद्दीन बोला: "जरूर-जरूर, क्यों नहीं!"
दूसरे दिन मुल्ला युवती का पता लेकर बहुत खोजे, लेकिन मकान कुछ ऐसा कि मिले ही न। आखिर एक वृद्ध व्यक्ति को रोककर मुल्ला ने पूछा कि बड़े मियां, क्या आप बता सकते हैं कि ये मिस सलमा कहां रहती हैं?
वृद्ध ने ऊपर से नीचे तक नसरूद्दीन को देखा और पूछा कि क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूं कि आप कौन हैं?
नसरूद्दीन बोला: "जी, मैं उनका भाई हूं।"
वृद्ध बोला: "बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर। आइए-आइए, मैं उसका पिता हूं!"झूठ कितनी देर चलेगी? एक कदम भी न चली और चारों खाने चित हो गए! अब पिता जी से ही मिलना हो गया, जिनका पहले कभी दर्शन ही न हुआ था। और एक झूठ निकलती है तो पीछे हजार झूठें निकल आती हैं, क्योंकि एक झूठ को सम्हालने के लिए और झूठों की जरूरत पड़ती है। झूठ की एक खूबी है कि तुम्हें एक झूठ को अगर सम्हालना हो तो उसके सहारे के लिए दस झूठें खड़ी करनी पड़ती हैं। फिर हर दस झूठ को सम्हालने के लिए और दस-दस झूठें। इसका कोई अंत नहीं है।
सत्य की एक खूबी है: सत्य अकेला खड़ा हो जाता है। उसके लिए किसी सहारे
की कोई जरूरत नहीं होती। सत्य अपना सहारा है। यही तो उसकी स्वतंत्रता है। यही तो उसका बल है, उसकी प्रतिभा है, उसकी ओजस्विता है। झूठ को तो लाख उपाय करो, तुम्हें और झूठ लाने ही पड़ेंगे। और कहीं न कहीं तुम फंस जाओगे, क्योंकि झूठ का इतना बड़ा जाल तुम सम्हाल न पाओगे।
एक नेताजी ने चंदूलाल पर मुकदमा चलाया कि इसने भरी होटल में, जहां कोई पचास आदमी मौजूद थे, मुझ उल्लू का पट्ठा कहा है। नेताजी बड़े आदमी थे, अदालत में भी सिक्का था, दबदबा था। मजिस्ट्रेट ने भी बहुत धमकाया चंदूलाल को, कि क्यों रे चंदूलाल, तेरी यह हिम्मत कि तूने नेताजी को उल्लू का पट्ठा कहा! अरे बेशरम! तेरे पास इसके उत्तर में कुछ कहने को है?
चंदूलाल ने कहा: "हां हुजूर, नेताजी को मैंने उल्लू का पट्ठा कहा ही नहीं। आप किसी से भी पूछ लें। वहां तो पचासों लोग थे। मैनें कोई नाम नहीं लिया नेताजी का। नेताजी ने बात उड़ते ही पकड़ ली, नाहक अपने पर ले ली। अरे यह मैं तो किसी और से कह रहा था। ये बीच में टपक पड़े और एकदम मेरे ऊपर टूट पड़े कि तुमने मुझे उल्लू का पट्ठा कहा है।"
नेताजी ने कहा कि मैं अपना गवाह साथ लाया हूं। मुल्ला नसरूद्दीन को खड़ा किया। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि नसरूद्दीन, तुम क्या कहते हो? नसरूद्दीन ने कहा कि यह मैं बिल्कुल निश्चित रूप से कहता हूं। इस चंदूलाल के बच्चे

ने नेताजी को ही उल्लू का पट्ठा कहा है। और मजिस्ट्रेट ने कहा: "इसमे कोई नाम नहीं लिया था, तो तुम्हें यह निश्चित कैसे हुआ?"
मुल्ला नसरूद्दीन ने कहा: "निश्चय की जरूरत ही क्या है! वहां उल्लू
का पट्ठा सिवाय नेताजी के और कोई था ही नहीं। यह हरामजादा सरासर झूठ बोल रहा है। यह किसको उल्लू का पट्ठा कहेगा? इनके सिवाय वहां कोई था ही नही! पचास आदमी जरूर थे, मगर उल्लू का पट्ठा एक भी नहीं था। मैं नेताजी को इनके बचपन से जानता हूं। इनके बाप को भी जानता हूं। मैं आपसे ठीक कहता हूं हुजूर, इसने इन्हीं को कहा है।"
क्या करोगे?
झूठ बोलोगे, कहीं न कहीं से सच बाहर आ जाएगा।
मोटर साइकिल पर बहुत तेजी से जाते हुए मुल्ला नसरूद्दीन को रोककर ट्रैफिक पुलिस-इंस्पेक्टर ने कहा: "क्यों श्रीमान जी, क्या आप जानते नहीं कि इस रोड पर बीस किलोमीटर प्रति घंटे से अधिक चलना सख्त मना है? आप पर दस रूपए जुर्माना किया जाता है।"
नसरूद्दीन ने सफाई पेश करते हुए कहा: "इंस्पेक्टर साहब, मेरा घर यहां
से पचास किलोमीटर दूर है और आप देख ही रहे हैं कि शाम हो चुकी है, अंधेरा ढल रहा है, यदि मैं तेज रफ्तार से न जाऊं तो फिर मुश्किल है घर पहुंचना, क्योंकि मेरी मोटर-बाइक का बल्ब खराब है।"
इंस्पेक्टर बोला: "बल्ब खराब है! तब तो पचास जुरमाना होगा। समझे? बल्ब को सुधरवाया क्यों नहीं?"
मुल्ला ने बहाना बनाते हुए कहा: "दरअसल बात यह है साहब कि अच्छे मैकेनिक ही नहीं मिलते, मैं क्या करूं? कल एक गैरज में सुधरवाने डाली थी, उसने बल्ब तो सुधारा नहीं, सालों ने ब्रेक तक और हार्न भी खराब कर दिया। मैं किसी अच्छे मैकनिक की तलाश में हूं।"
"क्या कहा! हार्न और ब्रेक भी खराब हैं?" पुलिस वाले ने क्रोध भरी आवाज में कहा। "सुनो मिस्टर, तुम्हें पूरे पांच सौ रूपए से हाथ धोना पड़ेगा।"
बेचारे नसरूद्दीन ने जितनी बचने की कोशिश की उतना ही मुसीबत में फंस गया। यह देख पीछे की सीट पर बैठी गुलजान को दया आ गयी। उसने पति की तरफदारी करते हुए पुलिस अफसर को समझाया: "सुनिए महाशय जी, आप इनकी बातों पर अधिक ध्यान न दीजिए! जब ये ज्यादा पी लेते हैं तो फिर कुछ भी उल्टा-सीधा बकने लगते हैं।"
इंस्पेक्टर ने घुर्रा कर कहा: "इसका मतलब है कि तुम नशे की हालत में ड्राइविंग कर रहे हो! जब तुम्हें ड्राइविंग-लाइसेंस दिया था, क्या उस समय ये सब बातें तुम्हें नहीं समझाई गयी थीं?"
मुल्ला ने बड़े भोलेपन से अपना बचाव करते हुए जवाब दिया: "हुजूर, सच बात यह है कि मुझे ये सब कायदे-कानून मालूम ही नहीं, क्योंकि अभी तक मैंने लाइसेंस कभी लिया नहीं। आप कहें तो आज ही चला जाऊंगा। कहां मिलता है यह लाइसेंस? क्या बहुत मंहगा मिलता है?
पुलिस अफसर का गुस्सा अब आसमान पर चढ़ गया। वह बोला: "उल्लू के पट्ठे,
चल मेरे साथ थाने, वहां तुझे मजा चखाऊंगा! पूरे पांच हजार का जुर्माना होगा। नानी याद आ जाएगी और गाड़ी अलग जब्त होगी।"
यह सुन गुलजान तिलमिला उठी, बोली: "सुन लो अब, मेरी बात नहीं मानोगे तो ऐसा ही होगा। मैंने कितना कहा था कि मंगलवार के दिन ही अपने लिए अशुभ है, मगर तुमने एक न सुनी और बेचारे चंदूलाल को मंगलवार के दिन ही धोखा दे कर नकली रूपए थमा कर मोटर साइकिल खरीद ली। अब भुगतो! मोटर साइकिल भी हाथ से गयी और अपने जेब के पांच हजार रूपए भी अलग से।"
नसरूद्दीन ने झिड़कते हुए अपनी बीबी से कहा: "तुम तो हो अंधविश्वासी,
यह व्यर्थ की बकवास बंद करो! न कोई दिन शुभ होता न कोई अशुभ। अरे मैंने पिछले मंगलवार को ही ढब्बूजी का कैमरा चुराया था, अभी तक क्या हुआ, हुआ कुछ, बोलो!"

एक के पीछे एक... कतार लग जाएगी। एक झूठ उघड़ेगा तो दूसरा झूठ पकड़ में आएगा। दूसरा उघड़ेगा तो तीसरा झूठ पकड़ में आएगा। झूठों की पर्त पर पर्त होती है। सत्य अकेला होता है। झूठ की भीड़ होती है।
चैतन्य कीर्ति, चिंता न करो। तुम कहते हो: "अधिकांश समाचार-पत्र आपके विषय में बहुत ऊलजलूल बातें छापते हैं, जिससे लोगों में बहुत ही तरह की गलत बातें प्रचारित होती हैं।"
प्रचारित तो होती हैं न, गलत ही सही! एक दफा प्रचार होने दो, ठीक करने में बहुत देर न लगेगी। एक दफा उन तक खबर पहुंचने दो, फिर ठीक भी पहुंचा देंगे। उसमें बहुत अड़चन नहीं है।
और तुम कहते हो: "और गलत अपेक्षाएं लिए लोग आश्रम देखने चले आते हैं।" आश्रम देखने तो चले आते हैं न! क्या अपेक्षाएं ले कर आते हैं, वे तो हम यहां तोड़ लेगें। मगर यहां तक तो आ जाएं। अब मैं तो कहीं जाता नहीं उन्हीं को यहां लाना है। और बेचारे अखबार वाल मुफ्त सेवा में संलग्न हैं। तुम नाहक उन पर नाराज हो!
जब भी अखबार वाले तुम्हें मिल जाएं, जितनी ऊलजलूल और झूठी बातें तुम उन्हें बता सको, बताया करो। ऐसी झूठी, ऐसी ऊलजलूल कि उनका भी दिल खुश हो जाए! और वे कुछ और बढ़ाएंगे-चढ़ाएंगे, नमक-मिर्च-मसाला मिलाएंगे। और इस सबका परिणाम यह होगा कि कुछ लोग यहां आएंगे। आखिर उनके पास आंखें हैं, लोग बिल्कुल अंधे नहीं हैं। लोगों के पास भी कान हैं, वे भी सुनते हैं, समझते हैं। सुनेंगे, समझेंगे, देखेंगे।
कोई कठिनाई नहीं है; इन सब बातों से न कभी कोई सत्य को नुकसान हुआ है, न
हो सकता है।
तुम पूछते हो कि "भगवान, इसे समय रहते रोकने का क्या कोई उपाय करना जरूरी नहीं?"
पागल हो गए हो? रोकना है? अरे बढ़ाना है!

दूसरा प्रश्न: ओशो, मैंने सत्य के अनुभव के लिए कई धर्मों को अपनाया। उनके द्वारा बताई विधियों से ध्यान भी करता रहा, परंतु सफलता नहीं मिली। अब संन्यास लेने में गेरूआ वस्त्र व माला अड़चन बन रही है। कोई हल बतावें! क्या केवल ध्यान करने से संन्यास मिल सकता है, जिससे सत्य का अनुभव हो?

डाक्टर मुंशी सिंह! आदमी तुम कमजोर मालूम होते हो। निपट कायर! तुमने क्या खाक धर्मो को अपनाया होगा और तुमने क्या खाक कोई साधना की होगी! जो वस्त्र तक बदलने में घबड़ता हो, वह और क्या बदलेगा? वस्त्र जैसी व्यर्थ चीज भी बदलने में जिसका प्राण सकपकाता हो, वह मन को बदलेगा, आत्मा को बदलेगा? फोड़ा-फुंसी फुड़वाने में तुम्हारी जान निकल रही है और तुम कैंसर का ऑपरेशन करवाना चाहते हो!
तुम कहते हो: "मैंने सत्य के अनुभव के लिए कई धर्मो को अपनाया।"
यूं ही बाहर ही बाहर घूमते रहे होओगे मंदिरों के। अपनाने का क्या मतलब? अगर तुम गेरूआ वस्त्र तक पहनने में घबड़ा रहे हो, माला तक पहनने में तुम्हारी जान निकली जा रही है, जैसे कोई फांसी लग रही हो, तुमने क्या अपनाया होगा धर्मो का? और सत्य का अनुभव करना चाहते हो! इतना सस्ता! तुम मुफ्त चाहते हो। तुम चाहते हो कोई दे दे; कोई चम्मच में रख कर और तुम्हारे मुंह में डाल दे। तुम पका-पकाया भोजन चाहते हो। तुम चबाना भी नहीं चाहते। उतनी झंझट भी तुम लेना नहीं चाहते।
सत्य सिर्फ उनके लिए है, जो अज्ञात की यात्रा पर साहसपूर्वक निकलने
को तैयार हैं; जो राजी हैं तूफानों में अपनी नाव छोड़ देने को। तुम किनारा ही नहीं छोड़ना चाहते। तुम तो किनारे से नाव को बांध कर बैठे हो, खूब अच्छी मजबूत रस्सियों से, कि कहीं छूट न जाए, कहीं हवा के झोंकों में, कहीं तूफान में आंधी में, कहीं चली न जाए सागर में! तुम कह जरूर रहे हो कि मैंने सत्य के अनुभव के लिए... । लेकिन सत्य से तुम्हें कोई मतलब नहीं है। तुमने सत्य शब्द सीख लिया है-तोते की तरह।

सत्य के अनुभव के लिए तुम क्या चुकाने को राजी हो? सत्य का अनुभव उनको होता है जो जीवन भी देने को राजी हैं। और तुम्हारी दिक्कत है कि तुम्हें गेरूआ वस्त्र और माला अड़चन बन रही है। गेरूआ वस्त्र पहनने में क्या होगा? लोग हंसेगे न बहुत से बहुत, तो हंसने दो। दो-चार मरीज कम आएंगे तो न आने दो। दुकानदारी थोड़ी कम चलेगी, तो मत चलने दो। थोड़ी हिम्मत तो करनी पड़ेगी। माला पहनने में क्या अड़चन आ जाने वाली है? यही कहेंगे न लोग कि हो गए तुम भी पागल! तो सत्य पाने के लिए पागल होने की भी तैयारी नहीं है; परवाने बनने चल हो, शमा में जलने की हिम्मत नहीं है-तो फिर लिख लो अपनी खोपड़ी पर परवाना और घर में बैठे रहो। फिर तुम झूठे ही परवाने रहोगे। परवाने का मजा तो जब शमा में कोई जलता है तभी है। यह तो दीवानों का रास्ता है।
डॉक्टर मुंशी सिंह, यह काम तुम्हारा नहीं। अभी चलने दो आगमन दस-पांच जन्म और। ऐसी जल्दी भी क्या है? इसलिए तो हिंदुओं ने सिद्धान्त पकड़ रखा है जन्म-जन्मान्तर का। आलसी, सुस्त लोग हैं, इसलिए। क्योंकि इतना तो उनको पक्का ही है, इतने जल्दी अपने से कुछ होने वाला नहीं। इसलिए जन्म-जन्म में होगा। तो यही बहुत है अभी कि तुमने सत्य की कम से कम बात तो चलायी। ऐसे ही चलते-चलते बात कभी बन जाएगी। और फिर जल्दी क्या है, अनंत काल पड़ा है! धैर्य रखो। पहले डॉक्टरी कर लो। पहले खूब कमाई कर लो। फिर देखेंगे कभी मौका, मरते वक्त ले लेना राम-नाम। अजामिल की कथा तो पढ़ी है न, बस मरते वक्त ले लेना राम-नाम। काम खत्म। और तुम न ले पाओ तो पंडित-पुजारी, किराए के नौकर-चाकर, वे तुम्हारे कान में मंत्र पढ़ कर सुना देंगे। तुम जो चाहो सो मंत्र। चाहो तो गायत्री सुना दें, चाहो तो नमोकार सुना दें, जो तुम्हार दिल हो। पूरी गीता सुना दें। मरते वक्त सुन लेना मंत्र। गंगाजल बोतल में रख लो घर में, जब मरो तो गंगाजल पी लेना। और क्या करोगे? सस्ता काम करो कुछ। दो-चार साल में गंगा नहा आए, कभी-कभी जा कर मंदिर में सिर रगड़ आए। सुबह उठ कर दो- चार दफे राम-राम राम-राम जप लिया। न किसी को पता चलेगा, न कोईझंझट आएगी। और पता भी चले तो लाभ ही होगा तुम्हें। अगर मरीज देख लेंगे कि डॉक्टर भी राम-राम जपते हैं तो और ज्यादा आने लगेंगे, कि बड़ धार्मिक हैं, भक्त हैं! तुम यहां कहां आ गए! गलत जगह में आ गए।
तुम कहते हो: "मैंने सत्य के अनुभव के लिए कई धर्मो का अपनाया।" तुमने
एक को नहीं अपनाया। अपनाने के लिए तुमने हिम्मत कहां जुटायी? और तुम कहते हो: "उनके द्वारा बतायी विधियों से ध्यान भी करता रहा।" यूं ही करते रहे हाओगे ऊपर-ऊपर नाटक, क्योंकि ध्यान की तो कोई भी एक विधि अगर कोई पूरी तरह करे, सब कुछ लगा दे दांव पर, तो परिणाम हो जाता हैं। मगर नाटक से काम नहीं चलता। और लोग नाटक ही कर रहे हैं। लोग सोचते हैं शायद परमात्मा को भी धोखा दे लेंगे। मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, दुकान पर बैठें हैं, थैली के भीतर माला को रखे हुए हैं। थैली के भीतर माला के गुरिए सरकाते रहते हैं, राम-राम राम-राम राम-राम जपते रहते हैं। ग्राहक आ गया तो नौकर को इशारा कर देते हैं। कुत्ता आ गया तो नौकर का कहते हैं-भगाओ! और वह राम-राम भी चल रहा है और माला भी फेरी जा रही है! और फिर एक दिन कहेंगे कि इतने दिन हो गए माला फेरते, कुछ होता नहीं। ये कोई माला फेरने के ढंग हैं?
अकबर एक सांझ जंगल में शिकार खेलने गया था। लौट रहा था, सांझ हो गयी, नमाज पढ़ने बैठा। जब नमाज पढ़ रहा था, अपना दस्तरखान बिछा कर, एक युवती भागती हुई निकली। अल्हड़ युवती रही होगी। थी युवती कि मुझे मिल जाती तो मेरी संन्यासिनी होती। एक धक्का मार दिया अकबर को। वे बेचारे बैठे थे अपना नमाज पढ़ने, धक्का खा कर गिर पड़े। मगर नमाज में बीच में बोलना ठीक भी नहीं। बीच में बोलना तो बहुत चाहा, दिल तो हुआ कि गर्दन पकड़ कर दबा दें इस औरत की, कि गर्दन उतार दें, मगर नमाज बीच में तोड़ी नहीं जा सकती। इसलिए पी गए जहर का घूंट। और युवती जब लौट रही थी तो नमाज तो खत्म हो गयी, अकबर राह देख रहा था उसकी। जब वह लौटी तो अकबर ने कहा कि रूक बदतमीज! तुझे इतनी भी तमीज नहीं कि कोई नमाज पढ़ता हो तो उसे धक्का मारना चाहिए? फिर तुझे यह भी नहीं दिखाई पड़ता कि मैं सम्राट हूं! साधारण आदमी को भी नमाज पढ़ने में धक्का नहीं मारना चाहिए, सम्राट को धक्का मारा!

युवती ने कहा: "क्षमा करें, अगर आप को धक्का लगा हो! मुझे कुछ याद नहीं। बहुत दिनों बाद मेरा प्रेमी आ रहा था। मैं तो उसका स्वागत करने भागी चली जा रही थी। मुझे कुछ ओर दिखाई पड़ नहीं रहा था सिवाए उसके। मुझे याद भी नहीं। आप कहते हैं तो जरूर धक्का लगा होगा। हालांकि जब आपको धक्का लगा तो मुझको भी लगा होगा, क्योंकि हम दोनों टकराए होंगे; मगर मुझे कुछ याद नहीं। मुझे क्षमा कर दें, या जो दंड देना हो दे दें। मैं दीवानी हूं! मैं प्रेमी के पागलपन में चली जा रही थी भागी, मुझे पता नहीं कौन नमाज पढ़ रहा था, कौन नहीं पढ़ रहा था, कौन रास्तें में था, कौन नहीं था, किससे टकरायी, किससे नहीं टकरायी। लेकिन एक बात आपसे पूछती हूं, सजा जो देनी हो दे दें, एक बात का जवाब मुझे जरूर दे दें। मैं अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी और इतनी दीवानी थी और आप परमात्मा से मिलने गए हुए थे और मेरा धक्का आपको याद आ गया! और मेरा धक्का आपको दिखाई पड़ गया! और मेरे धक्के का आपको पता चल गया! मैं तो अपने साधारण से प्रेमी से मिलने जा रही थी-एक साधारण भौतिक-सी बात; और आप तो आध्यात्मिक नमाज में थे, प्रार्थना में थे; पूजा में थे, ध्यान में थे! आप तो परमात्मा से मिलन कर रहे थे! आपको मेरा धक्का पता चल गया! यह बात मेरी समझ में नहीं आती।"
कहते हैं अकबर का सिर झुक गया शर्म से। उसने अपने जीवन में उल्लेख करवाया है कि उस युवती ने मुझे पहली दफा बताया कि मेरी नमाज सब थोथी है, औपचारिक है। बस करता हूं, क्योंकि करनी चाहिए। उस युवती से मैंने पहली दफा जाना कि नमाज में एक दीवानापन होना चाहिए, एक मस्ती होनी चाहिए। अपने प्रेमी से मिलने जा रही थी तो कैसी मस्त थी, कैसी अल्हड़ थी! और मैं परमात्मा से मिलने जा रहा था, क्या खाक मिलने कहीं गए थे! वहीं बैठे थे, नाहक आंखें बंद किए।
मैं राजस्थान जाता था तो बीच के एक स्टेशन पर ट्रेन बदलती थी। ट्रेन बदलने में कोई चालीस मिनट, पचास मिनट लगते थे, कभी घंटा भी लगता। तो बहुत-से मुसलमान उसी ट्रेन से अजमेर जा रहे होते, उनका नमाज का वक्त होता, सांझ का समय, तो प्लेटफार्म पर वे नमाज पढ़ने बैठ जाते। मुझे भी कुछ काम नहीं होता था, तो मुझसे भी जितना सहयोग उनका हो सकता करता था। उनके पीछे घूमता रहता और जो भी मुझे दिखायी पड़ता कि लौट-लौट कर देख रहा है कि गाड़ी छूट न जाए, उसकी गर्दन पकड़ कर सीधी कर देता। वे मुझसे कुछ बोल तो सकते नहीं थे जब नमाज पढ़ रहे; नमाज के बाद एकदम... कि "आप किस तरह के आदमी हैं! देखने-दाखने में साधु जैसे मालूम पड़ते हैं। हमारी नमाज खराब कर दी!"
मैंने कहा: "मैं नमाज ठीक कर रहा था। मुझे तो कुछ नमाज वगैरह पढ़नी नहीं है। मैं तो सिर्फ टहल रहा था, देख रहा था किस-किस की नमाज गड़बड़ हो रही है, उसकी ठीक कर रहा था। तुम गाड़ी लौट-लौट कर क्यों देख रहे थे? गाड़ी देखनी थी तो नमाज बंद करो और नमाज पढ़नी है तो छूटे गाड़ी तो छूट ही जाए। एक दफा तो नमाज ऐसी पढ़ लो कि गाड़ी भी छूट जाए तो फिक्र नहीं। एक दफा तो पढ़ लो जिंदगी में ऐसी नमाज! यह कोई खाक नमाज हुई तुम्हारी, कि दस दफा तुमने लौट कर देखा पीछे कि गाड़ी तो नहीं छूट गयी! तो ऐसा ही था तो गाड़ी की तरफ ही मुंह कर के नमाज पढ़ते, पीठ काहे को किए थे गाड़ी की तरफ? गाड़ी में ही बैठ कर करते नमाज, डर ही मिट जाता कि जब छूटेगी छूट जाएगी। यह बाहर दस्तरखान बिछा कर यह इतना दिखावा क्यों कर रहे थे?"
जवाब तो उनके पास कुछ था नहीं, भुनभुना कर रह जाते थे। मैं अक्सर राजस्थान जाता था। कुछ तो लोग मुझे पहचानने लगे थे! उस स्टेशन के स्टेशन-मास्टर मुसलमान थे। वे तो जैसे ही मुझे देखते टहलते, वे कहते कि भाईजान, कृपा करके किसी को परेशान न करिए!

मैंने कहा: "मैं किसी को परेशान नहीं कर रहा। मेरा तो काम ही यह है कि लोगों की नमाज में सहायता देना।"
वे कहते: "आप आइए, दफ्तर में बैठिए।"
मैंने कहा: "मैं नहीं बैठ सकता। जब इतने भक्तगण यहां बैठे हैं तो मैं
भी सत्संग करूंगा।"

डॉक्टर मुंशी सिंह, तुम कहते तो हो कि तुमने कई विधियों से ध्यान किया। एक विधि से भी तुमने नहीं किया। विधियों का थोड़े ही सवाल है, डूबने की बात है। गलत विधि में भी कोई ठीक से डूब जाए तो पहुंच जाता है और ठीक विधि में भी कोई न डूबे तो क्या होगा पहुंचना? असली सवाल डूबने का है। मस्त हो जाने को है, अलमस्त हो जाने का है। ये दीवानों की बातें हैं। ये मस्तों की बातें हैं। ये दुकानदारी की बातें नहीं हैं। तुम पक्के दुकानदार मालूम पड़ते हो।
तुम कहते हो: "पर सफलता नहीं मिली।" सफलता, यह हिसाब भी दुकानदार का है। ध्यानी सफलता की फिक्र ही कहां करता है, ध्यान में उतर गए, यही सफलता है। ध्यान में मजा आ गया यहा सफलता है। ध्यान में डोल लिए, यही सफलता है। मेरे पास लोग आते हैं-दुकानदार किस्म के लोग-तो वे पूछते हैं: "ध्यान करेंगे तो इससे क्या लाभ होगा?" लाभ पहले! ये वे ही लोग जो लिखे रहते हैं अपनी दुकान पर: लाभ-हानि। खाता-बही शुरू करते हैं तो पहले लिखते हैं: लाभ, शुभ लाभ। श्री गणेशाय नमः! इनको लाभ ही लाभ की पड़ी है। लाभ क्या होगा! तुम्हें ध्यान का पता ही नहीं। तुम वैसी ही बात पूछ रहे हो जैसे कोई पूछे कि प्रेम का क्या लाभ है! प्रेम का कोई लाभ होता है? प्रेम स्वंय ही अपना अंत है, किसी चीज का साधन नहीं है। प्रेम अपने में आनंद है। इससे कुछ लाभ नहीं होता। ऐसा नहीं कि प्रेम में गहरे उतर जाओगे तो एकदम धन-संपत्ति बढ़ेगी। मगर तुम प्रार्थना भी ऐसे ही करते हो-जय जगदीश हरे! उसमें तुम देखो, आते हैं ये वचन-धन संपत्ति बढ़े! वे ही लोग यहां आ जाते हैं, वे कहते हैं-जय रजनीश हरे! धन-संपत्ति बढ़े!" कुछ फर्क नहीं। मैं बैठा होता हूं, सुनता हूं, मस्त होता हूं कि वाह, क्या गजब के बीमार हैं! जहां जाएंगे वहीं बीमारी ले कर पहुंचेंगे।... "सुख-संपत्ति घर आवे!" हर जगह सफलता!
सो तुम बीच-बीच में देख रहे होते होओगे कि छप्पर अभी तक टूटा कि नहीं, क्योंकि वह जब देता है छप्पर तोड़ कर देता है। छाता वगैरह लगा कर करते हो ध्यान कि नहीं? नहीं तो एकदम छप्पर टूट जाए और एकदम धन बरसे और खोपड़ी खुल जाए।
सफलता किस बात की? सफलता से जो जाग गया है वही ध्यान में उतरता है; जो समझ लिया कि सफलता-असफलता सब बच्चों के खेल हैं, दो कौड़ी की बातें हैं। सफल भी हो गए तो क्या? असफल भी हो गए तो क्या? यहां हार क्या, जीत क्या? जैसे शतरंज में कोई हार जाए कि शतरंज में कोई जीत जाए। मगर तलवारें खिंच जाती हैं वहां भी। ऐसे मूढ़ पड़े हैं दुनिया में-महामूढ़! शतरंज खेल रहे हैं, कुछ असली नहीं; नकली घोड़े, नकली हाथी; न राजा असली न वजीर असली, सब लकड़ी के खिलौने-मगर तलवारें खिंच जाएंगी, क्योंकि हार गए! ताश खेलते हैं, लट्ठ चल जाते हैं, क्योंकि हार गए, किसी ने धोखा दे दिया।
तुम्हारे मन में सफलता और असफलता का जो रोग है वही तो संसार है। ध्यान उन्हें मिलता है जो इस बात से छूट गए; जिनने देख लिया कि यहां सफल भी हो जाओ तो भी असफल हो, असफल होओ तो तो असफल हो ही। इस जगत में सब खिलवाड़ चल रहा है। अपने भीतर डुबकी मारनी है। क्या सफलता क्या असफलता! अपने भीतर विराजमान हो जाना है। मगर अगर तुमने ध्यान रखा बार-बार कि अभी तक सफलता मिली कि नहीं मिली, तो बस अड़चन हो जाएगी। वही बाधा बन जाएगी। उसी के कारण तुम्हारा अटकाव हो जाएगा। बीच-बीच में आंख खोल कर देख लोगे: "अभी तक सफलता नहीं मिली। कब तक मिलेगी! बड़ी देर हुई जा रही है।"
इसलिए तुम बहुत धर्म बदल लिए होओगे। एक जिंदगी और तुम कहते हो कि कई धर्मो को अपनाया। बड़ी जल्दी में रहे! दो-चार दिन इधर देखा, टटोला कि अरे कुछ नहीं, अभी तक सफलता नहीं मिली, छप्पर नहीं टूटा, चले और कहीं। चलो और कहीं तलाशें! दो-चार दिन वहां भी देखा, चलो कहीं और! ऐसे ही तुम यहां तो नहीं आ गए? यह मामला दो-चार दिन वाला नहीं है। और यहां सफलताओं का कोई आश्वासन ही नहीं देता मैं। वे तुम्हारे थोथे गुरू तुम्हें सफलता का भी आश्वासन देते हैं।
महर्षि महेश योगी लोगों को समझाते हैं कि आध्यात्मिक भी लाभ होगा-अगर तुमने भावातीत ध्यान किया-और भौतिक लाभ भी होगा। नौकरी में बढ़ती होगी, पद बढ़ेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी। जिनको नौकरी नहीं है उनको नौकरी मिलगी।

स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। बीमारियां दूर होंगी। और आध्यात्मिक लाभ, वह तो अलग ही है; वह तो समझो ब्याज। मूल चीजें तो ये हैं। लोग कहते हैं कि फिर क्यों छोड़ना! जब सभी कुछ मिलने वाला है, तो लूट सके तो लूट! नहीं तो फिर पीछे पछताना पड़ेगा। तो लोग एकदम पीछे पड़ जाते हैं कि पकड़ो। मगर दो-चार दिन में फिर वे देखते हैं कि कुछ नहीं मिला, न कोई बाहर न कुछ भीतर, चले उठाया डेरा-कहीं और! ये एक गुरू दूसरे गुरू के पास घूमते रहते हैं। और ये गुरू हैं जो इनको बस वही आश्वासन, वही धोखे।
यहां न कोई आश्वासन है, न कोईप्रलोभन है। मैं तुम्हे कोई वायदा नहीं करता कि तुम्हें कुछ मिलेगा। मिलने की बात ही गलत है। मिलने का मतलब ही होता है: भविष्य। और जिसके मन में भविष्य का अभी इतना आकर्षण है, वह ध्यान में नहीं उतर सकता। ध्यान का अर्थ होता है: वर्तमान में जीना। और सफलता का अर्थ होता है: भविष्य की आकांक्षा। इनका कोई तालमेल नहीं है। ये विपरीत हैं। ध्यान का अर्थ होता है: यह क्षण पर्याप्त है। इस क्षण में डूब जाना। न तो अतीत की कोई सत्ता है और न भविष्य की। अतीत जा चुका, भविष्य अभी आया नहीं; अगर है कुछ मौजूद तो यही क्षण है-अभी और यहीं!
तुम यहां बैठे हो। यहां तीन तरह के लोग बैठे हुए हैं। एक तो वे जो यहां बैठे हुए अतीत का हिसाब लगा रहे हैं, कि मैं जो कह रहा हूं इसका गीता से मेल खाता कि नहीं, कुरान से मेल खाता कि नहीं; यह बात समयसार के अनुकूल है या नहीं; कुंदकुंद, उमास्वाति और इनकी बातों में कुछ विरोध तो नहीं है; जीसस, जरथुस्त्र, उनकी बातों में और इनकी बातों में कुछ विरोध तो नहीं है। वे कुछ बैठे हैं जो यही हिसाब लगा रहे हैं। वे चूक गए। वे इसी कचरे में पड़े रहेंगे। वे अगर कृष्ण के समय में होते तो गीता पढ़ते वक्त हिसाब लगाते कि इसका वेद से मेल खाता कि नहीं। अगर वे वेद के समय में होते तो भी यही करते, क्योंकि तब वे और हिसाब लगाते आगे का कि और-और पीछे, जो हो चुके हैं ऋषि- मुनि, उनसे मेल खाता कि नहीं। उनका ढंग ही यह है कि हमेशा अतीत से मेल खानी चाहिए कोई बात, क्योंकि उनकी धारणाएं अतीत की बंधी कोई धारणाएं हैं। उनसे मेल खाएं तो ठीक। मतलब उन्हें सत्य की कोई चिंता नहीं है।
तुम कहते हो कि मैं सत्य की खोज कर रहा हूं। सत्य वगैरह की तुम खोज नहीं कर रहे हो। तुम खोज इस बात की कर रहे हो कि तुम्हारी जो मान्यताएं हों, उनको कोई सत्य का सील-मुहर दे दे; हस्ताक्षर कर दे कि हां यह बिल्कुल सत्य है, कि मुंशी सिंह, तुम बिल्कुल ठीक कहते हो! बस तो तुम्हारा दिल खुश हो जाए।
अगर तुम यहां आए इस आशा में, तो बिल्कुल गलत जगह आ गए। यहां तो तुम्हारी एक-एक बात तोड़ी जाएगी, व्यवस्था से तोड़ी जाएगी। एक-एक ईट खिसकाई जाएगी मुंशी सिंह-जब तक कि तुम्हें बिल्कुल सपाट न कर दिया जाए; जब तक कि बिल्कुल पूरा मैदान न हो जाए। क्योंकि मैं पहले मकान गिराता हूं, फिर ही नया बनाता हूं। रिनोवेशन में मेरा भरोसा ही नहीं है कि उसी पुराने मकान में कर रहे हैं लीपा-पोती; कि जरा इधर सीमेंट लगा दी उधर छप्पर ठीक कर दिया, इधर एक टेका लगा दिया उधर दीवाल पुरानी थी उस पर रंग-रोशन कर दिया, इधर दरवाजा नया बिठा दिया, तस्वीरें बदल दीं, केलैंडर पुराने की जगह नए लटका दिए। इस सब में मेरा भरोसा नहीं है। मैं तो मामला बिल्कुल मूल से ही करता हूं, जड़ से ही शुरू करता हूं। पहले तो खत्म ही करूंगा, बिल्कुल खत्म करूंगा कि तुम्हारा पता-ठिकाना न रहेगा। जब तुम्हें बिल्कुल सपाट कर दूंगा, जब तुम बिल्कुल चारों खाने चित, फिर धीरे-धीरे तुममें सांस फूकेंगे कि भैया अब उठो, मुंशी सिंह ऑपरेशन खत्म हुआ, कि अब आप वापिस आओ, कि अब आप फिर से सांस लो, कि अब आपका नया जन्म हुआ!
तो कुछ हैं जो अतीत मं बैठे हैं। वे अतीत में ही अटके रहते हैं। वे वहीं हिसाब-किताब जमाए रहते हैं। और कुछ हैं जो भविष्य में हैं। वे हिसाब लगाए रखते हैं कि अगर हम इनकी बातें मानें तो लाभ क्या होगा, सफलता मिलेगी कि नहीं मिलेगी, फायदा क्या है, हानि क्या है? हिसाब-किताब लगात हैं। तराजू लिए बैठे हैं। कितना लाभ कितनी हानि। कहीं ज्यादा हानि तो नहीं है, ज्यादा लाभ तो नहीं है? तराजू कहां जा रहा है, देखते रहते हैं। ये दोनों चूक जाते हैं।

तीसरे तरह के लोग हैं, जो मौन शांत यहां बैठे हैं; जो इस क्षण पूरा आनन्द ले रहे हैं। न अतीत से कुछ लेना-देना है, न भविष्य से कुछ प्रयोजन है। ध्यान उनका अभी घट रहा है। ध्यान की उन्हें कोई विधि भी जरूरत नहीं है। ध्यान है वर्तमान में होने की कला। किसी भी बहाने वर्तमान में हो जाओ, ध्यान हो गया। रात तारों से भरी हो और तुम तारों से भरी रात के साथ एक हो जाओ, लीन हो जाओ-ध्यान हो गया। संगीत में डूब जाओ कि दूर कोयल की कूक उठती हो, उसके साथ तल्लीन हो जाओ-ध्यान हो गया।
ध्यान का कुल इतना ही अर्थ होता है कि तुम्हारा चित्त तरंगें खो दे अपनी, विचार खो दे अपने। विचार होते ही अतीत और भविष्य के हैं; वर्तमान का कोई विचार नहीं होता। वर्तमान निर्विचार है। और जहां निर्विचार स्थिति होती है, वहां चैतन्य का जन्म हो जाता है, वहां चैतन्य प्रगट हो जाता है। विचार की धूल तुम्हारे चैतन्य को ढांके हुए है।"
तुम कहते हो: "इधर से वहां गया, वहां से यहां गया, कई विधियों से ध्यान करता रहा, परंतु सफलता नहीं मिली। अब संन्यास लेने में गेरूआ वस्त्र व माला अड़चन बन रही है।
अगर इतनी छोटी चींजे अड़चन बनती हैं तो तुम खतरा मत लो। तुम आदमी ज्यादा होशियार हो। तुम पांव फूंक-फूंक कर रखोगे। तुम अब छांछ भी फूंक-फूंक कर पी रहे हो। जैसी तुम्हारी मर्जी। यह मैं भी जानता हूं कि कोई कपड़े बदलने से संन्यासी नहीं हो जाता; लेकिन जिसकी कपड़े बदलने तक की हिम्मत नहीं है वह क्या खाक संन्यासी होगा! यह तो मैं भी जानता हूं कि माला पहनने से क्या होगा। कोई माला पहनने से संन्यासी हो जाएगा, मोक्ष हो जाएगा? लेकिन जो इतना भी हिम्मत नहीं रखता, जो इतना कायर है कि चार आदमियों में जाहिर न कर सके कि मैं दीवानों की महफिल में सम्मिलित हो गया हूं, कि मैं इन पियक्कड़ों की जमात में सम्मिलित हो गया हूं, उस आदमी के वश के बाहर की बात है। वह अपनी दुकान चलाए, अपना बैंक-बैलेंस बढ़ाए। अच्छा यही है कि मरते दम तक कुछ धन-संपत्ति छोड़ जाए और कुछ औलाद छोड़ जाए। तभी तो लोग कहते हैं: उल्लू मर गए, औलाद छोड़ गए! तुम तो मर जाओगे, मगर औलाद छोड़ जाना। औलाद भी यही करेगी; वह और औलाद छोड़ जाएगी। ऐसे उल्लुओं की जमात बढ़ती चली जाती है। हिम्मत करो! यह तुम क्या कहते हो कि "क्या केवल ध्यान करने से संन्यास मिल सकता है?" संन्यास की जरूरत ही क्या है तुम्हें? अगर तुम ध्यान ही कर सकते हो तो संन्यास की जरूरत ही क्या है? संन्यास तो केवल भुमिका है, जिसके भीतर ध्यान का फूल खिलेगा। तुम तो कह रह हो: "क्या बिना जमीन के फूल खिल सकता है?" जरूर खिल सकता है, लेकिन कागजी फूल होगा, प्लास्टिक का फूल होगा। वैसे प्लास्टिक के फूल की बड़ी खूबियां होती हैं-न मरता कभी, न सड़ता कभी, न गलता कभी, एक दफा ले आए सो सदा के लिए हो गया। बड़ा शाश्वत, बड़ा सनातन! ठीक हिंदू धर्म जैसा-सनातन धर्म! हेर-फेर कुछ होता ही नहीं। जब दिल चाहे, साबुन से धो लो, फिर ताजा का ताजा। न पानी देने की झंझट, न खाद जुटाने की झंझट, न जमीन की जरूरत। लेकिन अगर असली फूल चाहते हो, गुलाब के फूल चाहते हो, तो फिर जमीन तैयार करनी होगी, कंकड़-पत्थर हटाने होंगे, घास-पात उखाड़ना होगा! खाद भी देनी होगी, पौधे को सम्हालना भी होगा। पानी भी देना होगा, धूप का भी इंतजाम करना होगा। पौधे को बागुड़ लगा कर रक्षा भी करनी होगी कि जंगली जानवर न चर जाएं, बच्चे न उखाड़ ले जाएं, मुहल्ले-पड़ोस के लोग पौधे न चुरा लें।
संन्यास तो केवल भूमिका है; ध्यान उसका फूल है।
तुम कहते हो: "क्या केवल ध्यान करने से बात हो जाएगी?"
तुम्हारी मर्जी। बात तो हो जाएगी, मगर मामला कागजी रहेगा। क्योंकि जो आदमी संन्यास की हिम्मत नहीं कर सका, वह आदमी ध्यान की हिम्मत कर सकेगा? ध्यान तो बहुत हिम्मत का काम है। ध्यान का अर्थ होता है: मृत्यु। मरना है- शरीर के प्रति, मन के प्रति, तब कहीं तुम्हें आत्मा का बोध होगा। और तुम कपड़े तक बदलने में घबड़ा रहे हो!
मैं एक घर में मेहमान होता था। उस घर की गृहिणी हमेशा कहती थी कि मैं
तो आपकी संन्यासिनी ही हूं, लेकिन बस कपड़े बदलने को मत कहिए। मैंने उससे

कहा कि देख, मुझे भलीभांति पता है मामला क्या है। तू मेरी संन्यासिनी है और इतनी-सी मेरी आज्ञा मानने को राजी नहीं है कि मैं कहता हूं कपड़े बदल, तो मैं कुछ और कहूंगा, तू मानेगी? मैं कहूंगा कूद जा मकान से, कूदेगी? कूद जा कुएं में, कूदेगी?
उसने कहा: "आप कभी ऐसा कह ही नहीं सकते।"
मैंने कहा: तू छोड़ फिक्र, मैं कुछ भी कह सकता हूं। तू अपनी बता। और न
हो भरोसा तो चल कुएं पर।"
नीचे ही कुआं था बगीचे में। मैंने कहा: "चल!"
वह थोड़ी घबरायी। उसने कहा: "पति को तो आ जाने दें।"
मैंने कहा: "पति से इसका क्या लेना-देना? कोई उनको भी कुदवाना है? तू क्या कर सकती हे मेरी मान कर, यह बता। मुफ्त संन्यास! बस कहने की बात! औपचारिक! और मैं कारण जानता हूं कि कपड़े क्यों नहीं बदलना चाहती, क्योंकि तीन सौ साड़ियां तूने इकट्ठी कर रखी हैं।"
उसके कमरे में मैं सोता था तो मैंने देखी थी उसकी अलमारी, तीन सौ साड़ियां कम से कम; ज्यादा ही हो सकती हैं, कम तो नहीं।
अब तुम जरा सोचो, किसी बेचारी स्त्री की दशा। उसको कहो कि गेरूआ ही पहनना अब और तीन सौ साड़ियां उसके पास हैं। वह घंटों तो अलमारी खोल कर विचार करती थी रोज कि कौन-सी पहननी, कौन-सी नहीं पहननी। बस सिर्फ गैरिक ही पहनना! मैंने कहा: "ये तू बांट दे तीन सौ साड़ियां, फिर आसान हो जाएगा संन्यास लेना।"
उसने कहा: "यह क्या आप कहते हैं! मैंने बमुश्किल इकट्ठी की हैं, एक से
एक कीमती साड़ियां हैं। सब बांट दूं!? जरा ठहर जाएं। जरा मेरे लड़के की शादी हो जाने दें, बहू को दूंगी।"
मैंने कहा: "तू बहाने मत खोज। लड़के को दे दे। जब उसकी बहू आएगी वह समझे
वह जाने। और तू बहू को क्यों फंसाती है तीन सौ साड़ियां के चक्कर में, क्योंकि हो सकता है बहू भी संन्यास लेना चाहे, फिर? ये तीन सौ साड़िया का चक्कर बड़ा मुश्किल हो जाएगा।"
तुम डर रहे हो संन्यास लेने से-कुल कपड़े के कारण, कुल माला के कारण! और कहते हो ध्यान! यह तो केवल प्रतीक है। संन्यास तो केवल तुम्हारी तरफ से एक इशारा है, एक इंगित है, कि हम राजी हैं, कि अब आप हमें कुछ कहें, हम करने को राजी हैं। तुम इतना न कर सकोगे? तो तुम फिर और बड़ी बातें कैसे कर सकोगे? और इस जिंदगी में छोटी बातें न कर सको तो बड़ी न कर पाओगे। लेकिन लोग अक्सर यह बात करते दिखाई पड़ते हैं कि हम बड़ी बातें करने को राजी हैं; छोटी बातें... ये तो छोटी-छोटी बातें हैं। बड़ी बातों का मजा यह है कि वे भीतरी है, किसी को दिखाई तो पड़ती नहीं। अगर मैं कहूं ध्यान करोगे, तुम कहोगे, हां ध्यान करेंगे! अब वह किसी को दिखाई तो पड़ता नहीं! लेकिन मैं कहूं कपड़े बदलो, तो वे सारी दुनिया को दिखाई पड़ेंगे। और ध्यान तुम करते हो कि नहीं करते हो, अब मैं कोई पुलिसवाला तो तुम्हारे पीछे नहीं लगा दूंगा। कपड़े तुमने बदले तो सारी बस्ती पुलिसवाली हो जाती है। लोग मुझे--... तुम्हारे दुश्मन खबर करेंगे अगर तुम नहीं पहनोगे तो। यहां चिट्ठी आ जाती है मेरे पास-उनकी, जो दुश्मन हैं, कि आपका फलां संन्यासी कपड़े नहीं पहन रहा है, कि वह माला छिपाए रहता है भीतर। संन्यासी है कि माला छिपाए रखता है भीतर! जब पूना जाता है तो माला बाहर निकाल लेता है और जैसे ही पूना में से स्टेशन पर पहुंचा, ट्रेन में बैठा कि माला एकदम भीतर कर लेता है! जब पूना जाता है तो एकदम गैरिक वस्त्र पहनता है और घर आता है तो इसने ऐसे फीके गैरिक वस्त्र बनाए हैं कि अगर तुम चश्मा लगा कर देखो तो ही समझ में आते हैं कि हां-हां कुछ-कुछ रंग है, कि थोड़ा-थोड़ा रंग मालूम होता है।
तो मुझे कोई जरूरत नहीं पुलिसवाला लगाने की। सारी बस्ती तुम पर निगरानी रखेगी कि कहीं भूल-चूक तो नहीं हो रही, कहीं कुछ गड़बड़ तो नहीं कर रहे। मेरा संन्यासी कहीं सिनेमा में दिखाई पड़ जाता है, फौरन चिट्ठियां आ जाती हैं कि आपका संन्यासी सिनेमा में खड़ा था, कैसा संन्यासी है! अब मैंने किसी संन्यासी को कहा नहीं कि सिनेमा मत जाना।

एक संन्यासी ने मुझे आ कर कहा कि अच्छी मुसीबत में डाल दिया! मैंने कहा: "मुसीबत में डालना मेरा काम है।"... कि अपनी पत्नी के साथ मैं चला जा रहा था, दो आदमियों ने मुझे पकड़ लिया, कि यह औरत किसकी है? संन्यासी होकर इसको कहां भगा कर ले जा रहा है?
अरे मैंने कहा, भई यह मेरी औरत है!
उन्होंने कहा: "तुम्हें शर्म नहीं आती कहते, संन्यासी और तुम्हारी औरत! पुलिसथाने चलो।"
तो उसने कहा कि अब आप कृपा करके मेरी पत्नी को भी संन्यास दे दो, नहीं
तो यह झंझट बढ़ेगी। ये दोनों बदमाश थे, मगर उन्होंने उपद्रव तो खड़ा कर दिया, भीड़ इकट्ठी कर दी। वे तो दो-चार पहचान के लोग आ गए, उन्होंने कहा: भई नहीं, ये और तरह के संन्यासी हैं, इनको जाने दो।" इनकी पत्नी का संन्यास हुआ ऐसे। पांच-सात दिन बाद वे फिर हाजिर हो गए, उन्होंने कहा: "आपने अच्छी झंझट खड़ी की, हम दोनों ट्रेन में बंबई जा रहे थे, हमें ट्रेन में ही बस, डब्बे में लोगों ने घेर लिया और कहा कि बच्चे को कहां भगा कर ले जा रहे हो? आजकल कई बच्चों को भगाने वाले चल रहे हैं।"
"यह मगर हमार बच्चा है!" हमने कहा: "हमारा बच्चा है!"
उन्होंने कहा: "तुम संन्यासी हो, तुम्हें शर्म नहीं आती, तुम्हारा बच्चा है! अरे संन्यासी को ब्रह्मचारी होना चाहिए, और यह औरत किसकी है? तुम दोनों संन्यासी हो ठीक है, मगर तुम साथ रहते हो क्या? संन्यासियों को, क्या स्त्री-पुरुषों को साथ रहना चाहिये? और बच्चा किसका है? न तुमसे मेल खाता है इसका चेहरा, न तुम्हारी पत्नी से मेल खाता है।"
अब वे दोनों आए कि हम करें भी क्या, मेल नहीं खाता तो हम इसमें क्या करें! आप इसको भी संन्यास दो।
अब वे तीनों संन्यासी हैं।
एक मित्र ने संन्यास लिया, वे शराब पीते हैं। कहने लगे कि मैं शराब पीता हूं, क्या आप मुझे भी संन्यास देंगे? मैंने कहा कि मैं ये छोटी-मोटी बातों की फिक्र ही नहीं करता। पहले संन्यास, फिर पीछे सब निपट लेंगे। आए पांच-सात दिन बाद और कहा कि मैं समझ गया मतलब आपका। शराब-घर में घुस ही रहा था कि एक आदमी ने पकड़ लिया कि स्वामी जी, आप कहां जा रहे हैं? अरे यह शराबघर है! सो मैं एकदम लौट पड़ा। मैंने कहा कि अरे-अरे, मुझे क्या मालूम कि यह शराबघर है! तब से शराबघर नहीं जा सकता, क्योंकि अब मुझे डर है कि कोई न कोई पांव पकड़ लेगा, पैर छूते हैं लोग। अब जब जिसके पैर छुओ वह शराबघर जाए तो ठीक नहीं मालूम पड़ता।
इसीलिए तो लोग संन्यासियों को आदर देते हैं; वह उनकी तरकीब है। वह उनकी तरकीब है तुम्हें व्यवस्थित रखने की कि महाराज, हम आपके पैर छूते हैं, जरा खयाल रखना! इधर-उधर गड़बड़ हुए कि फौरन पकड़े जाओगे।
तो मैंने कहा: "भई अब तुम समझो। तुम्हारा काम समझो। मैंने तो झंझट डाल दी।"
तो मुंशी सिंह, पहला तो काम है: गैरिक वस्त्र और माला। पहले तो इस मुसीबत में उतरो। फिर ध्यान पीछे। पहले यह बाह्य साहस जुटाओ, फिर अंतर्यात्रा शुरू हो सकती है। तुम अब तक जिनके पास गए हो, रहे होंगे दो कौड़ी के लोग, सस्ते लोग-जिनको खुद भी न कोई ध्यान है, न ध्यान का कोई अनुभव है।
मैं इस देश के सारे बड़े से बड़े संन्यासियों को जानता हूं-हिन्दू, जैन, बौद्ध। वे सब मुझसे एकांत में पूछे हैं कि हम ध्यान कैसे करें। उन्हें खुद भी पता नहीं है। आचार्य तुलसी मुझसे पूछे हैं कि हम ध्यान कैसे करें। और जब मुझसे पूछा तो उन्होंने सारे लोगों को कहा कि अलग हो जाओ, हम एकान्त में बात करना चाहते हैं, कुछ गूढ़ बात करनी है। मैंने पूछा: "कितनी ही हो गूढ़ बात, इन लोगों को रहने दें, क्योंकि ये भी बेचारे सुनें, इनको भी लाभ हो जाए।"
नहीं, कहा कि यह बहुत गूढ़ बात है। गूढ़ बात यह थी कि उनको पूछना था कि ध्यान कैसे करें। अब ये सबके सामने कैसे पूछें?

मुझसे आनंद ऋषि ने पूछा है कि ध्यान कैसे करें। मुझसे सुशील मुनि ने पूछा है कि हम ध्यान कैसे करें। विनोबा भावे ने पूछा है कि हम ध्यान कैसे करें। और ये सारे लोग लोगों को ध्यान करवा रहे हैं। ये सारे लोग लोगों को ध्यान समझा रहे हैं। ये तुम्हारे ब्रह्मज्ञानी हैं! इनको खुद ध्यान का कुछ पता नहीं है, इनको खुद कोई अनुभव नहीं है। मगर किताबों में सब लिखा हुआ है, पढ़ लो, तोतों की तरह दोहराए चले जाओ। बहुत आसान है। कठिनाई कहां है? तुम जिनके पास गए होओगे, ऐसे ही लोग होंगे। इस देश में तो इतना अध्यात्म चलता है कि जिसका हिसाब नहीं। सब कूड़ा-करकट है! अब तुम आ गए हो तलवार की धार के पास, हिम्मत हो तो गर्दन कटेगी। हालांकि तुमसे पूछ कर ही काटूंगा; तुम्हारी स्वीकृति से ही काटूंगा; तुम हां भरोगे तो ही काटूंगा। कबीर ने कहा है: "कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ, जो घर बारै आपना चले हमारे साथ।" जिसकी हिम्मत हो, हम तो लट्ठ लिए बाजार में खड़े हैं, हो जिसकी हिम्मत घर जलाने की, घर फूंक डालने की, वह हो ले हमारे साथ। यह घर फूंकने का धंधा है। और तुम चाहो कि कोई सस्ता नुस्खा लेने आ गए हो यहां, तो तुम गलती में हो।
लोगों का यही खयाल है कि मैंने संन्यास को बहुत सरल बना दिया है। वे गलत सोच रहे हैं। उनको पता नहीं, मैंने संन्यास को अति कठिन बना दिया है। तुम भी चौकोगे, क्योंकि आम तौर से यही दिखाई पड़ता है: मैं संन्यासी को नहीं कहता घर छोड़ो, नहीं कहता परिवार छोड़ो, नहीं कहता दुकान छोड़ो, धंधा छोड़ो। तो लोगों को लगता है सरल बना दिया। पुराना संन्यास बड़ा कठिन था- तपश्चर्या करो, त्याग करो, घर छोड़ो, पत्नी छोड़ो!
नहीं! पुराना संन्यास बहुत सरल था। ऐसा कौन आदमी है जो पत्नी को छोड़
कर नहीं भागना चाहता? तुम किसी के भी दिल से पूछ लो। ऐसी कौन पत्नी है जो पछताती नहीं कि किस उपद्रव में पड़ गयी, किस जाल में उलझ गयी! अब निकले तो कैसे निकले! ऐसा कौन है सांसरिक, जो रो नहीं रहा है? और अपने आंसू छिपाए हुए है, क्योंकि अब रोने से भी क्या फायदा? रोओ भी तो किसके सामने रोओ! रो कर और अपनी भद्द क्या खुलवानी!
पुराना संन्यास बहुत आसान था, क्योंकि वह भगोड़ेपन को आदर देता था। और भगोड़े दुनिया में बहुत हैं। भगोड़ापन सरल बात है और मुफ्त में मिल जाता आदर। तुम देखते हो, जिन संन्यासियों को तुम आदर देते हो-जैन हों, हिंदू हों, बौद्ध हों-वे संन्यासी अगर संन्यासी न हों तो शायद तुम उनको घर में बर्तन मांजने की नौकरी पर भी न रखो, रसोइए की तरह भी न रखो; उसमें भी तुम सर्टिफिकेट मांगो; उसमें भी तुम पूछो कि योग्यता क्या है, पात्रता क्या है? लेकिन कोई आदमी घर छोड़ कर भाग गया, बस पर्याप्त है कि तुम उसके चरण छुओ; पर्याप्त है कि तुम आदर दो; पर्याप्त है कि उसके पैर धोओ और धोवन का पानी पीओ। यही आदमी तुम्हारे द्वार पर आ कर खड़ा हो जाए साधारण वस्त्रों में और कहे कि मुझे नौकरी की जरूरत है, तो तुम कहोगे: "आगे बढ़ो! ऐसे-गैरे-नत्थू खैरे को हम नौकर नहीं रख सकते! हम तुम्हें पहचानते तक नहीं, चोर-चपाटी बढ़ रही है दुनिया में, हर किसी को घर में रख लें, कल तुम कुछ लेकर भाग जाओ, फिर?"
और यही आदमी संन्यास हो कर बैठ जाए, भभूत रमा ले धूनी जला ले और तुम पैर छूने को तैयार हो! तुम सब चढ़ा देने को तैयार हो! अजीब लोग हो। अजीब तुम्हारा गणित है। भगोड़ों को तुमने खूब तरकीब दे थी!
मेरा संन्यास भगोड़ों का संन्यास नहीं है। भगोड़ापन कायरता का सबूत है। मेरा संन्यास कठिन है, क्योंकि भगोड़ों को एक फायदा है, सरलता है-न पत्नी है, न बच्चे हैं। तो स्वभावतः परिस्थितियां नहीं हैं, जिन परिस्थितियों में क्रोध आए, जिन परिस्थितियों में चिताएं आएं। तो अगर तुम्हारा संन्यास मुफ्तखोर होकर बन कर बैठ जाता है और उसको चिंता नहीं आती, क्रोध नहीं आता, तो कोई आश्चर्य की बात है? तुमको भी अगर मु्फ्तखोरी मिले, तुमको भी चिंता नहीं आएगी। चिंता ही किसलिए आती है? चिंता तुमको आती है, क्योंकि कल धंधा चलेगा कि नहीं, कल कोई ग्राहक आएगा कि नहीं; आज दिन भर हो गया, कोई ग्राहक नहीं आया, कल रोटी कैसे मिलेगी! मगर संन्यासी की रोटी निश्चित है। कल भी रोटी मिलेगी। वह बुद्धू जो आज दे गए हैं, कल भी दे जाएंगे। उसका पक्का है

इंतजाम। वह निश्चिंत रह सकता है। उसे कोई कमी होने वाली नहीं है। उसे क्रोध क्यों आए, उसका कोई अपमान नहीं करता। जिंदगी में जगह-जगह अपमान है, मगर संन्यासी का कोई अपमान करता है? उसका तो सभी सम्मान करते हैं। जब सभी सम्मान करते हैं तो उसे क्रोध क्यों आए? लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि उसके भीतर से क्रोध समाप्त हो गया। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि बारूद को तुमने आग से दूर कर लिया, और कुछ अर्थ नहीं है। एक चिनगारी पड़ जाए कि भभक उठे अभी आग।
ले आओ वापिस संन्यासी को दुनिया में! इसलिए तो वह घबडा.ता है। संन्यासी घबड़ाता है। एकांत में छोड़ दो उसे किसी स्त्री के पास, पसीना- पसीना हो जाएगा। क्यों? इतनी क्या घबड़ाहट है? रोज तो समझाता था कि स्त्री के शरीर में है ही क्या, अरे यहा मांस-रक्त-मवाद, यही कफ-पित्त, है ही क्या स्त्री के शरीर में! और यही शरीर देख कर पसीना-पसीना हुआ जा रहा है। ये कफ-पित्त को देख कर पसीना-पसीना! ये मांस-मज्जा को देख कर ऐसे क्या घबड़ा रहे हो? और यह मांस मज्जा जरा पास आ जाए कि हाथ हाथ में ले ले, तो तुम्हारे प्राण क्यों निकले जा रहे हैं? तुम्हारी घिग्घी क्यों बंद हो गयी? मंत्र-तंत्र यब भूल क्यों गए एकदम? बस आग बारूद के पास आए, तब पता चलता है। इसी संन्यासी को अपमान करो, इसको किसी अपमानजनक स्थिति में खड़ा करो, तब पता चलेगा कि कितने दूर तक क्रोध मिटा है।
मगर हमने संन्यासी को बिल्कुल सुरक्षा दे दी। उसको हमने बिल्कुल कवच
दे दिया है। न कोई अपमान करता है उसका; अपमान की जगह सम्मान। न उसे हम ऐसी कोई परिस्थिति देते हैं, जिसमें काम-क्रोध को जगने का मौका हो। मगर इससे तुम इस भ्रांति में मत रहना कि उसका काम-क्रोध मिट जाता है; भीतर जल रहा है, प्रज्ज्वलित हो कर जल रहा है, जोर से जल रहा है, भयानक हो कर जल रहा है। कुछ बदला नहीं है, सिर्फ ऊपर-ऊपर मुखौटा लगाए बैठा है।
मैंने संन्यास को पूरी कठिनाई दे दी है। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हें घर में रहना है और कामवासना से मुक्त होना है। काम से ही गुजरकर कामवासना से मुक्त होना है। तुम्हें बाजार में रहना है और बाजार से मुक्त होना है। तुम्हें धन-संपत्ति के बीच रहना है और ऐसे रहना है जैसे कमल जल में और फिर भी जल उसे छुए न। रहो संसार में, लेकिन संसार तुम्हारे भीतर न हो। यह संन्यास की वास्तविक प्रक्रिया है। और इससे ज्यादा संन्यास कभी भी कठिन नहीं था।
पुराना संन्यास दो कौड़ी का था, सस्ता था। मैंने उसे पूरी चुनौती दे दी है, क्योंकि मैं चाहता हूं: तुम जीवन के सघनपन में खड़े हो कर, युद्ध के स्थल पर खड़े हो कर, शांत हो जाओ, मौन हो जाओ, शून्य हो जाओ। और यह हो सकता है। और यह हो जाए तो ही समझना कि कुछ हुआ, क्योंकि फिर तुम्हें कोई चीज डिगा न सकेगी। जो आग में खड़ा हुआ शांत हुआ, समझ लो कि उसकी बारूद समाप्त हो गयी। आग से भाग कर शांत दिखाई पड़ता है, उसकी शांति धोखे की है परीक्षा कहां होगी?
मेरे संन्यासी को प्रतिपल परीक्षा है।
फिर मैं किसी चीज के विरोध में नहीं हूं। मेरी पूरी प्रक्रिया उल्टी है। मैं कहता हूं: जिस चीज से भी मुक्त होना है, उससे भाग कर नहीं, उसे छोड़ कर नहीं, उसे जी कर, उसके अनुभव से। जिस चीज से भी मुक्त होना है, वस्तुतः उसको त्यागना नहीं है, उसका रूपांतरण करना है। क्रोध ही रूपांतरित हो कर करूणा बनती है। जिसने क्रोध को दबा दिया, उसके जीवन में करूणा नहीं होगी। और काम ही रूपांतरित हो कर प्रेम बनता है। जिसने काम को दबा दिया, उसका जीवन प्रेम-शून्य हो जाएगा। और जहां ने प्रेम है, न करूणा है, न संगीत है, न काव्य है, न सौंदर्य है--उस संन्यास का क्या करोगे? उस कचरा संन्यास का क्या मूल्य है?
संन्यास तो नृत्य है, जीवन का महारस है।
विष्णु-सहस्र-नाम में भगवान के नामों में एक नाम है: ओममहाभोगाय नमः!
वह परमात्मा महाभोगरूप है। यह सबसे प्यारा नाम है। हजार नाम गिनाए हैं, लेकिन महाभोग मैं चुनता हूं कि श्रेष्ठतम नाम है। परमात्मा महाभोग है। त्याग नहीं, महाभोग!

मेरा संन्यास त्यागी नहीं है, महाभोगी है। महाभोग साधारण भोग नहीं है। साधारण भोग तो दुख-भरा है; वहां क्रोध है, काम है, ईर्ष्या है, मत्सर है। महाभोग आनंद है, महारस है! वहां सारी क्षुद्र चीजें रूपांतरित हो गयी हैं।
जो भी तुम्हारे जीवन में अभी गलत लग रहा है, उसी में सही छिपा पड़ा है। कीचड़ में कमल दबे पड़े हैं। लेकिन कीचड़ से कमल को मुक्त करना सीखो। उसकी कला सीखो।
अगर सच में ही तुम्हें ध्यान को, समाधि को उपलब्ध होना है, तो यह संन्यास भूमिका है। इस भूमिका के बिना कुछ भी होना संभव नहीं है।

आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
चौथा प्रवचन

तुम बहते जाना भाई

पहला प्रश्न: ओशो, संन्यास जीवन का त्याग है या कि जीवन जीने की कला?

निर्मल भारती! सदियों से संन्यास जीवन का त्याग रहा है और वही भ्रांति थी, जिसके कारण संन्यास सर्वव्यापी नहीं हो सका। उसी चट्टान से टकरा कर संन्यास के फूल की पंखुरियां बिखर गईं।
संन्यास कोमल फूल है और त्याग की कठोर धारणा स्वभावतः उस नाजुक--सौ चीज को नष्ट करने में समर्थ हो गयी।
त्याग की धारणा में ही बुनियादी रूप से अज्ञान है। त्याग का अर्थ हैः भगोड़ापन, पलायनवाद, कायरता। त्याग के लिए किसी बुद्धिमत्ता की कोई आवश्यकता नहीं है। जीने के लिए बुद्धिमत्ता चाहिए, प्रखरता चाहिए, प्रतिभा चाहिए। भागने के लिए तो प्रतिभा की कोई जरूरत नहीं। युद्ध के मैदान से जो भागते हैं, उन्हें तो हम कायर कहते हैं और जीवन के रण-क्षेत्र से जो भाग जाते हैं, उनको... ? उनको रणछोड़दास जी! वे भी भगोड़े हैं। अच्छे नाम देने से कुछ भी न होगा। सुंदर नाम की ओट में गंदगियां कितनी देर तक छिपाई जा सकती हैं?
एक ओर तो धर्म कहते रहे "संसार परमात्मा का सृजन है", और दूसरी ओर यही लोग कहते रहे कि "संसार को छोड़ो, त्यागो; संसार पाप है। अगर संसार परमात्मा का सृजन है तो परमात्मा पापी है। यह तो सीधा सा गणित है। अगर संसार गलत है तो संसार को बनाने वाला ठीक कैसे हो सकेगा? और अगर संसार को बनाने वाला ठीक है तो उसकी कृति भी सुंदर हो जाएगी। परमात्मा अगर स्रष्टा है तो सृष्टि सौंदर्य है; यह उसका काव्य है। यह उसके हाथ से रंगा हुआ चित्र है, इसके सब रंग उसने ही तो भरे हैं। उसकी ही तूलिका के तो चिह्न हैं जगह-जगह। उसके ही तो हस्ताक्षर हैं पत्ते-पत्ते पर।
लेकिन महात्मा दोहरी बातें कहते रहे। एक तरफ कहते रहे, "परमात्मा ने सृष्टि बनाई" और दूसरी तरफ कहते रहे, "छोड़ो, भागो, त्यागो!" और हमें विकृति भी न दिखाई पड़ी उनके तर्क में। हम सुनते-सुनते इस बात के इतने आदी हो गए कि हमने कभी सोचा ही नहीं। असल में हमें सोचने की क्षमता ही धर्म ने नहीं दी; सोचने की क्षमता हमसे छीन ली। हमसे कहा, विश्वास करो। हमसे नहीं कहा कि जागो, होश से भरो। हमसे कहा, जो कहा जाए उसे मानो। बाबा वाक्य प्रमाणम! जो भी कहा जाए, वह कितना ही मूढ़तापूर्ण हो, उसे स्वीकार करो, अंगीकार करो। यही आस्तिकता थी। इसलिए हमने आस्तिकता के भीतर छिपी हुई विसंगतियों को नहीं देखा, क्योंकि जो देखे वह नास्तिक, जो देखे वह नर्क में पड़े। अंधों के लिए स्वर्ग था। आंख वालों के लिए नरक था। कौन जाना चाहे नरक में। इससे बेहतर है आंख बंद करके ही जीओ, अंधे हो कर ही जी लो। चार दिन की जिंदगी है, आंख बंद के गुजार लो। फिर पुरस्कार है स्वर्ग का। और सारा क्या है प्रश्न उठाने में? क्यों झंझट में पड़ों? पंड़ितों से, पुरोहितों से, राजनेताओं से, समाज के ठेकेदारों से झंझट लेनी सुगम बात तो नहीं है। उपद्रव मोल लेना है। बगावत है।
तो धर्म हमेशा से रूढ़ियों के परिपोषक रहे हैं, अंधेपन के समर्थक रहे हैं। उन्होंने विचार की आग नहीं जलायी। उन्होंने विचार की आग को बुझाया। उन्होंने चिंतन और मनन को गति नहीं दी; मारा, हत्या की। इसलिए वे हमसे न मालूम कैसी-कैसी मूढ़तापूर्ण बातें मनवा सके; मनवा ही नहीं सके, करवा भी सके!
संन्यास त्याग नहीं है, संन्यास परम भोग है।
मैंने कल ही तुमसे कहा, "विष्णु-सहस्र-नाम" में परमात्मा का एक नाम है
: महाभोग। वही नाम मुझे सर्वाधिक प्यारा है, क्योंकि उस नाम में बात जैसे पूरी-पूरी आ गयी।
जीवन को भोगने की कला संन्यास है। निश्चित ही सितार का तोड़ देना तो कोई भी कर सकता हैं; सितार बजाने के लिए रविशंकर चाहिए। वर्षों की

तपश्चर्या चाहिए। तोड़ने में तपश्चर्या नहीं करनी होती। तोड़ने में क्या है, एक बच्चा तोड़ दे! लेकिन सितार का बजाना हो, ऐसा बजाना हो कि दीपक राग उठे, कि बुझे दीये जल जाएं, तो फिर वर्षों का श्रम और साधना चाहिए।
त्याग में कोई साधना नहीं है। मूढ़ से मूढ़ व्यक्ति भाग सकता है। भागने में क्या है? भय काफी है। बस भयभीत कर दो, लोग भागने लगेंगे। लोगों को डरा दो, लोग भागने लगेंगे। लेकिन अगर सितार बजाना सीखना है तो वर्षों सतत, अहर्निश श्रम करना होगा। एक दिन में बात नहीं आ जाती। पहले दिन तो सितार बजाओगे तो भरोसा ही नहीं आएगा कि इस सितार में से कभी राग उठने वाले हैं। विराग ही उठेगा, राग नहीं। शोरगुल उठेगा, संगीत नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने नया-नया सितार खरीद लिया। सुन लिया होगा किसी वादक को, प्रभावित हो गया होगा और बस आ कर बजाना शुरू कर दिया। बस वह एक ही तार को ठोंकता रहे-रा-रूं, रा-रूं, रा-रूं! पत्नी पगलाने लगी, बच्चे घबड़ाने लगे। बच्चे कहें कि पापा, परीक्षा पास आ रही है और हमें सिवाय रा-रूं के कुछ सुनाई नहीं पड़ता। हम परीक्षा में क्या रा-रूं रा-रूं लिखेंगे? हमें कुछ सूझता ही नहीं। हमने बहुत सितार बजाने वाले देखे, मगर यह आप क्या कर रहे हैं?
पत्नी सिर ठोंके, बर्तन तोड़े, प्लेटें फूटें। सब्जी में ज्यादा नमक डाल दे। सब्जी कम, मिर्च ज्यादा। मगर उससे और जोष चढ़े उसे, वह और रा-रूं... ! मुहल्ले पड़ोस के लोग भी हैरान हो गए। न सोने दे न चैन से रहने दे किसी को। आखिर सारे मोहल्ले के लोग इकट्ठे हुए और हाथ जोड़े कि या तो हम मोहल्ला छोड़ें या आप। यह क्या कर रहे हो। हमने बहुत बजाने वाले देखे, मगर आप गजब के बजाने वाले हो! ऐसा न कभी हुआ न कभी होगा बजाने वाला। यह कौन-सा राग है? नसरुद्दीन मुस्कराया और उसने कहा कि दूसरे बजाने वाले अभी अपने स्वर
को खोज रहे हैं, मैंने पा लिया। वे तलाश में इस तार से उस तार पर जाते हैं और मैंने पा लिया अपना गंतव्य, मैं क्यों भटकूं? मुझे मिल गया मेरा स्वर। अब तो मैं हूं, मेरा स्वर है! यही बजेगा। जिसको रहना हो इस मुहल्ले में रहे, जिसको जाना हो जाए।
वैराग्य में कोई संगीत है, कोई सौरभ है, कोई फूल खिलते हैं, कोई जीवन
का उल्लास है, कोई आह्लाद है, नृत्य है? वैराग्य के लिए कोई कला चाहिए, कोई कला विद चाहिए? कोई आवश्यकता नहीं। कोई भी भाग सकता है। और जिंदगी दुख से भरी है, इसमें कोई शक नहीं। दुख से भरी है इसलिए कि हम मूढ़ हैं; इसलिए नहीं कि जिंदगी बुरी है।
तुम्हें बार-बार कहा गया है संसार दुख है, लेकिन इस तरह कहा गया है कि जैसे संसार का स्वभाव दुख है। मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि संसार दुख है, क्योंकि हम मूढ़ हैं, अन्यथा संसार दुख नहीं है। जहां इतने मूढ़ इकट्ठे हों वहां दुख होना स्वभाविक है। सच पूछो तो बड़ा चमत्कार है कि दुख इतना कम क्यों है! करोड़ों-करोड़ों मूढ़ लगे हैं, फिर भी दुख कुछ बहुत ज्यादा नहीं है। संसार दुख नहीं है--न सितार में शोरगुल है। संसार तो एक अक्सर है-- अनुभव के लिए, आत्म-साक्षात्कार के लिए, परमात्म-प्रतीति के लिए। लेकिन तब तुम्हें बड़ी बुद्धिमत्ता चाहिए। तुम्हें धार रखनी पड़ेगी अपनी प्रतिभा पर। तुम्हें तीक्ष्ण होना पड़ेगा। तुम्हें ध्यान को सजग करना होगा। तुम्हें ध्यानपूर्वक जीना होगा। तुम्हें बड़ी सावचेतता बरतनी होगी। एक-एक कदम फूंक कर रखना होगा--होशियारी से, कुशलता से। अंधों की तरह, मूढ़ों की तरह दौड़े चले जाओगे, तो टकराओगे। टकराओगे तो दुख होगा।
दुख जरूर है, मगर दुख इसलिए नहीं है कि संसार का स्वभाव दुख है; दुख इसलिए है कि हम नासमझ हैं। तुम्हारी बगिया में फूल नहीं खिलते, इसका कारण यह नहीं है कि बगिया का कोई कसूर है; फूल खिलें तो खिलें कैसे, घास-पात तो उगाते हो, कंकड़-पत्थर तो बीनते नहीं! गुलाबों को तो उखाड़ कर फेंक देते हो, फूल लगेंगे कैसे?
एक बात समझ लेने की है कि घास-पात उगाने के लिए कोई मेधा नहीं चाहिए। घास-पात अपने से उग आता है।
मुल्ला नसरुद्दीन के पड़ोसी ने पूछा नसरुद्दीन से कि तुम्हारी बगिया
का लान बड़ा प्यारा है। मैंने भी लाकर दूब के बीज बोए हैं, अब अंकुर भी आने

शुरू हो गए। लेकिन कौन-से अंकुर दूब के हैं और कौन-सा सिर्फ व्यर्थ घास-पात है, यह कैसे पहचानें?
मुल्ला ने कहाः "बड़ी सीधी तरकीब है। दोनों को उखाड़ कर फेंक दो, फिर जो अपने-आप ऊग आए, वह घास-पात।"
घास-पात अपने से ऊग आता है, इसको उगाना नहीं पड़ता। नीचे की तरफ जाना हो
तो तुम कार का इंजन बंद कर सकते हो, उसके लिए कोई पेट्रोल जलाने की जरूरत नहीं है। लेकिन कार का पर्वत पर ले जाना हो तो इंजन बंद करके नहीं चलेगा काम। फिर तो तुम्हें होशपूर्वक गाड़ी चलानी पड़ेगी, इंजन को सक्रिय करना होगा।
जो लोग जीवन में उतर रहे हैं, ढलान पर हैं, उनके जीवन में कोई कला नहीं चाहिए। इसलिए भगोड़ापन लोगों को जंच गया था, कमजोरों को जंच गया था। वे भाग गए और न केवल खुद भाग गए, वे अपने पीछे यह भाव छोड़ते चले गए कि जीवन विषाद है, कि जीवन दुख है, कि जीवन गलत है।
जीवन में कुछ भी गलत नहीं है। जीवन तो परमात्मा का प्रकट रूप है। यह
तो उसकी देह है, उसकी काया है। जैसे तुम्हारे भीतर आत्मा छिपी है, दिखाई नहीं पड़ता, देह दिखाई पड़ती है-वैसे ही संसार दिखाई पड़ता है। उसके भीतर जो छिपा है वह परमात्मा है। तुम छोड़ कर भागोगे तो फिर खोजोगे कैसे, खोदोगे कैसे? माना कि खुदाई कठिन है, पत्थर भी आएंगे, चट्टानें भी तोड़नी पड़ेगी, श्रम करना होगा गहरा तब कहीं जल-स्त्रोत तक पहुंच पाओगे; लेकिन सस्ते नुस्खे मिल गए लोगों को कि सब छोड़-छाड़ कर बैठ जाओ; राम-राम जपते रहो, सब ठीक हो जाएगा।
काश इतना आसान होता सब तो तो हमने जिंदगी को अब तक स्वर्ग बना लिया होता! इतने तो तुम्हारे संन्यासी हुए, जिंदगी स्वर्ग तो न बनी, रोज-रोज नरक बनती चली गयी। अब समय आ गया है कि पुनर्विचार करें हम। कहीं कोई बुनियादी भूल हो गई है। और मैं इसको बुनियादी भूल कहता हूं निर्मल, कि संन्यास को जीवन-त्याग समझा, वहीं भूल हो गई। संन्यास में जरूर कुछ त्याग है, लेकिन वह जीवन का त्याग नहीं है, मूढ़ता का त्याग है। जरूर कुछ त्याग है, लेकिन वह जीवन का त्याग नहीं है; क्रोध का, लोभ का, मोह का, ईर्ष्या का, अहंकार का, इन सारे रोगों का त्याग है। और इनके त्याग के लिए कोई हिमालय जाने की जरूरत नहीं है। इनके लिए श्रेष्ठतम कोई अवसर अगर कहीं है तो यहीं बीच बाजार में है, क्योंकि यहींप्रतिपल परीक्षा होती रहती है। प्रतिपल अवसर आते हैं जहां क्रोध भभक उठता है, वासना जग जाती है, ईर्ष्या के बादल घने हो आते हैं। हिमालय की गुफा में बैठ जाओगे तो पता नहीं चलेगा। वहां तो अवसर में ही चूक जाओगे। भीतर सब बीज पड़े रह जाएंगे, जीवन रूपांतरित नहीं होगा। और जरा सी भी कसौटी का कोई मौका आया कि तुम फिसल जाओगे।
यहीं जीवन में ही, जो व्यर्थ है उसे छोड़ो। मगर जीवन व्यर्थ नहीं है।
और व्यर्थ को छोड़कर ही तुम जान पाओगे जीवन की सार्थकता। कचरा छोड़ो, मगर कचरे के साथ सोने को मत फेंक देना। कंकड़-पत्थर छोड़ों, मगर यहीं हीरे भी हैं, उन हीरों को मत छोड़ देना। भगोड़े सब छोड़ कर भाग गए--कंकड़-पत्थर भी, हीरे भी।
इसलिए तुम्हारे कथाकथित पलायनवादी संन्यासियों के जीवन तुम्हें कोई ज्योति नहीं दिखाई पड़ेगी; एक विषाद दिखाई पड़ेगा, एक गहरी हताशा, एक निराशा। उनकी आंखों में तुम्हें आनंद के दीये जलते हुए नहीं मालूम पड़ेंगे; दीवाली नहीं, बल्कि जैसे दिवाला निकल गया हो।
जीवन का रास, जीवन का आनंद, जीवन का रस जो पिएगा ध्यान पूर्वक--रोज उसकी दिवाली है, रोज उसकी होली है, रोज रंगों की फुहार है, रोज गीता का जन्म है, रोज पैरों में उसके पायल बजेगी, रोज उसके प्राणों की बांसुरी बजेगी! उसके जीवन में मोरमुकुट बंधेगा। उसके जीवन में चारों चारों तरफ एक सुंगध होगी, एक सुवास होगी।
इसलिए मैं तो संन्यास को जीने की कला कहता हूं। मेरे संन्यासी को एक
नए संन्यास के लिए आवाहन करना है जगत में। इसलिए मेरे संन्यासी में सामने एक महत कार्य है। मेरा संन्यासी साधारण संन्यासी नहीं है। साधारण संन्यास के दिन खत्म हुए, लद गए। मर गयी वह बात। अजायबघरों में रखे जाएंगे

उस तरह के लोग जल्दी ही। उनका कोई स्थान नहीं रहा। उनकी जीवन से जड़ें टूट चुकी हैं। वे अप्रासंगिक हो गए हैं।
मैं तुम्हें जो संन्यास दे रहा हूं, वह भविष्य का संन्यास है। उसका भविष्य है। और ऐसा संन्यास फैल सकता है, आग की लपटों की तरह सारी पृथ्वी को घेर ले सकता है। क्योंकि इस संन्यास के लिए न कहीं जाना है, न कुछ थोथे उपक्रम करने हैं, बल्कि जीवन को भीतर से बदलना है। और जीवन को जीने की कला सीखनी है।
ध्यान जीवन को जीने की कला है। वही जीवन को जानते हैं जो ध्यानस्थ हैं। जो अपने केंद्र पर थिर हो गए हैं वही पहचानते हैं अहोभाग्य को, जो हमें अस्तित्व ने दिया है। उनके जीवन में एक धन्यता है। उनके प्राणों में एक कृतज्ञता है। वे झुकेंगे समर्पण में। उनके भीतर से प्रार्थना उठेगी। प्रार्थना की गंध, प्रार्थना का रंग उनसे फूटेगा। झरने फूटेंगे स्वभावतः, क्योंकि जीवन में उनको दिखाई पड़ना शुरू होगा कि कितना मिला है! कितना, जिसकी हमारी कोई पात्रता नहीं थी! कितना, जिसके लिए हमने कोई कमाई नहीं की थी! जो सिर्फ प्रकृति की देन है! हमारी झोली भरी है, मगर हम उस झोली की तरफ देखते नहीं। और हम टुच्ची बातों में उलझे हुए हैं, छोटी बातों में उलझे हुए हैं।
निर्मल, संन्यास को जीवन की कला समझो। कठिन बात है यह। मैं तुम्हें एक कठिन चुनौती दे रहा हूं, क्योंकि मैं तुमसे कह रहा हूं कि भागना मत। भागना बिल्कुल आसान हैं। मैं तुमसे कह रहा हूं: यहीं! मैं तो किसी को भी कुछ छोड़ने को नहीं कहता। अगर मुझ से चोर भी आ कर कहता है कि मैं संन्यासी होना चाहता हूं, मैं कहता हूं हो जाओ। वह कहता है: "मेरी चोरी का क्या होगा?" मैं कहता हूं: "वह पीछे देखेंगे। संन्यास देखेगा उसको। तुम चोर हो, ठीक है; इतना ही क्या कम है कि चोर हो कर भी तुम्हारे मन में संन्यासी होने का भाव उठा! तुम साहूकारों से बेहतर हो, जिनके भीतर संन्यासी होने का भाव नहीं उठा। वे क्या खाक साहूकार हैं! वे चोर हैं, तुम साहूकार हो।"
मेरे देखने का ढंग और है। अगर मैं तुम्हें चोरी करते हुए भी पा लूंगा
तो मैं यह नहीं कहूंगा कि तुम्हें शर्म नहीं आती कि तुम संन्यासी हो कर और चोरी कर रहे हो? मैं यही कहूंगा कि तुम अदभुत व्यक्ति हो कि चोर हो कर भी संन्यासी हो! मेरे देखने का ढंग विधायक है।
एक यहूदी आश्रम में दो युवक सुबह-सुबह बगीचे में टहल रहे हैं। दोनों
को सिगरेट पीने की आदत है। और एक घंटे भर के लिए उनको आश्रम में घूमने का अवसर मिलता है बगीचे में--वह भी घूमने के लिए नहीं मिलता, घूम कर ध्यान करने के लिए मिलता है। शेष तेईस घंटे तो आश्रम के भीतर, वहां तो सिगरेट पीने का सवाल उठता नहीं। यहां बाहर पी सकते हैं, क्योंकि यहां गुरु मौजूद नहीं है। मगर मन में उनको संकोच लगता है, अंतःकरण में चोट पड़ती है कि क्या यह उचित है, क्या हम इस तरह करें? तो उन्होंने कहा, बेहतर है हम गुरू के पूछ लें। कल पूछ लें, फिर शुरू करें।
दूसरे दिन दोनों मिले। एक तो बहुत ही उदास बैठा था बगीचे में और दूसरा सिगरेट पीता हुआ धुआं उड़ाता चला आ रहा था। पहला युवक तो भन्ना गया। उसने कहा कि मामला क्या है, तुम सिगरेट पी रहे हो, गुरू की आज्ञा नहीं मानोगे? उसने कहा: "गुरु से आज्ञा ली, तब तो पी रहा हूं।"
उसने कहा: "ये कैसे गुरु हैं! क्योंकि मैंने पूछा, एकदम नाराज हो गए। एकदम पास में डंडा पड़ा था, डंडा उठा लिया और कहा सिर तोड़ दूंगा, शर्म नहींं आती? ... तुमको कैसे आज्ञा दी?"
दूसरा युवक मुस्कराने लगा। उसने कहा: "पहले तुम यह कहो, तुमने पूछा क्या था?"
उसने कहाः "क्या पूछा था... मैंने यही पूछा था कि अगर मैं ध्यान करते समय सिगरेट पीऊं तो कोई एतराज तो नहीं? बस वे एकदम भन्ना गए, एकदम डंडा उठा लिया, कहा-सिर तोड़ दूंगा! शर्म नहीं आती? ध्यान करते हुए सिगरेट? तो यहां आए किसलिए थे?"
दूसरे युवक ने कहा: "शांत हो जाओ। अब मैं तुम्हें बताता हूं राज। मैंने भी पूछा। मैंने उनसे पूछा-गुरूदेव, सिगरेट पीते वक्त अगर ध्यान

करूं तो कोई एतराज है? उन्होंने कहाः बिल्कुल नहीं। अब सिगरेट तो पी ही रहे हो, अगर इसमें ध्यान और जुड़ा तो बुरा नहीं है, कुछ भी बुरा नहीं है।
सदुपयोग हो गया। और अगर सिगरेट और ध्यान साथ चले तो ध्यान जीत कर रहेगा। तू फिक्र न कर। सिगरेट पी और ध्यान कर। यह तेरे मन में बड़ा शुभ भाव उठा है। यह सिगरेट पीने वालों को मुश्किल से उठता है।"
इसलिए तुम देखते हो इस आश्रम में एक ही स्थान को हम मंदिर कहते हैं, जहां लोग सिगरेट पीते हैं-धूम्रपान मंदिर। बाकी कोई स्थान मंदिर इस आश्रम में है ही नहीं। मेरा देखने का ढंग विधायम है, नकारात्मक नहीं। "नहीं" पर मेरा जोर नहीं है। "हां" पर मेरा जोर है। मैं विधायक को ही आस्तिकता कहता हूं; नकार को नास्तिकता कहता हूं। ईश्वर को मानने न मानने से आस्तिक और नास्तिक का कोई संबंध नहीं है। आस्तिकता और नास्तिकता बड़ी और बात है। जीवन को विधायक ढंग से देखने का नाम आस्तिकता है।
इसलिए मेरे लिए महावीर आस्तिक हैं, बुद्ध आस्तिक हैं; यद्यपि उन्होंने ईश्वर को नहीं माना, फिर भी परम आस्तिक हैं। कौन उन जैसा आस्तिक होगा! यद्यपि हिंदू इस बात को मानने को राजी नहीं होते कि वे आस्तिक हैं। कैसे होंगे, क्योंकि हिंदुओं की तो परिभाषा बड़ी ओछी थी। उन दिनों तो और भी ओछी थी। बुद्ध और महावीर के समय में तो हिंदुओं की आस्तिकता की परिभाषा थी : जो वेद को मानें वे आस्तिक; जो वेद को न मानें वे नास्तिक। यह भी कोई बात हुई! कहीं किसी किताब के मानने न मानने से आस्तिकता और नास्तिकता तय होती है? तब तो फिर सब मुसलमान नास्तिक, सब ईसाई नास्तिक, सब यहूदी नास्तिक, सब पारसी नास्तिक, सब जैन नास्तिक, सब बौद्ध नास्तिक। तो इस दुनिया में आस्तिक बचेंगे ही कहां? ये ही रह जाएंगे थोड़े से हिंदू। और इनमें भी शूद्रों को छोड़ दो, क्योंकि स्त्रियों को तो वेद पढ़ने का कोई अधिकार नहीं; इनको तो एक ही अधिकार है-पिटने का। "ढोल गंवार शूद्र पशु नारी"... यह पता नहीं बाबा तुलसीदास से कब छुटकारा होगा! इस आदमी से ज्यादा भ्रष्ट करने वाला इस देश को दूसरा कोई व्यक्ति नहीं हुआ।
मगर बैठ गयी है बात हमारे दिमाग में--जैसे ढोल को पीटो, ऐसे ही स्त्रियों को पीटो। यह पुरुषों के ही दिमाग में बैठ गयी होती तो भी ठीक था, स्त्रियों तक के दिमाग में बैठ गया है। अगर पुरुष स्त्रियों की पिटाई न करे तो उनको लगता है शायद प्रेम नहीं करता, कि अब आजकल मारपीट होती ही नहीं है घर में--मतलब सब शांति है, सब खत्म हो गया, खेल खत्म पैसा हजम! कुछ होती थी मार-पीट तो उसका मतलब था अभी कुछ लगाव जारी है, अभी कुछ बात बनी है, अभी कुछ नाता-रिश्ता चलता है। स्त्रियां तक राह देखती हैं कि पीटो, क्योंकि उनको भी वही बाबा तुलसीदास समझा गए। सच तो यह है कि जितना स्त्रियां सुनने जाती हैं रामायण, पुरुष नहीं जाते। अरे पुरुष जाएं क्यों! उनको तो राज की बात मिल गयी। स्त्रियां जाती हैं सीखने के लिए कि सीता के साथ कैसा राम ने व्यवहार किया। ऐसा व्यवहार भी अगर तुम्हारे पति तुम्हारे साथ करें, तो भी वे परमात्मा स्वरूप हैं। गर्भिणी स्त्री को भी अगर जंगल में भेज दें एक धुब्बड़ के कहने से! अगर ऐसी ही शान की बात थी, अगर ऐसी ही बात थी तो खुद भी चले गए होते सीता के साथ जंगल में। तो कुछ बात थी, कुछ गौरव होता। एक असहाय स्त्री को, गर्भिणी स्त्री को, यूं भेज दिया जंगल में!
मगर यह नारी का आदर्श है। सीता नारी का आदर्श है। राम जो हैं, वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं! वे पुरुषों के आदर्श हैं। तुम्हारे पति अगर तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार भी करें तो भी शुभ। तुम तो चुपचाप झुके जाना, पिटे जाना। तुम्हारा काम ही यही है। स्त्री तो पैर की जूती है, पांवो की दासी है!
स्त्रियों को काट दो, उनको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। शूद्रों को
काट दो, उनको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। यह जानकार तुम चकित होओगे कि हम कैसे बरदाश्त कर रहे हैं! आज तुम गालियां देते हो। आज तुम नाराज होते हो। अगर कहींशूद्र जला दिए जाते हैं, अगर कहीं शूद्रों के गांव में बलात्कार हो जाता है, अगर कह शूद्रों की बस्तियां उजाड़ दी जाती हैं, तो बहुत छिन्न-भिन्न हो जाता है तुम्हारा मन, तुम खिन्न हो जाते हो। लेकिन राम ने क्या किया था? मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने क्या किया था? एक ब्राह्मण का बेटा मर

गया। बाप के सामने बेटा मर जाए तो जरूर कहीं कोई महापाप हो रहा है! इस बाप ने कोई महापाप किया होगा पिछले जन्म में, यह सवाल नहीं उठता! ब्राह्मण और महापाप करता, यह तो बात ही नहीं उठती। जरूर कहीं कोई महापाप हो रहा है! कहां महापाप हो रहा है? तो उस ब्राह्मण ने बताया कि एक शूद्र, शंबूक नाम का शूद्र, वेद पढ़ता है, वेद सुनता है। उसी के पाप के कारण।
कहां शंबूक! उसका क्या लेना-देना! वह एक हजार मील दूर था। और किसी का बेटा न मरा, इस ब्राह्मण का बेटा मरा। और मर्यादापुरुषोत्तम राम ने क्या किया, मालूम है! उस शंबूक के कानों में सीसा पिघलवा कर, गरम सीसा भरवा दिया, उसके कान जलवा दिए, क्योंकि उसने वेद सुन लिया था।
शूद्रों को छोड़ दो, स्त्रियों को छोड़ दो। और सारे धर्मों को छोड़ दो।
तो आस्तिक कितने बचते हैं फिर? फिर तो सारी पृथ्वी नास्तिकों की हो गयी वह धारणा बड़ी ओछी थी, छोटी थी। फिर धारणा बदली। फिर धारणा यह बनी कि जो ईश्वर को माने वह आस्तिक; जो ईश्वर को न माने वह नास्तिक। लेकिन तब बुद्ध और महावीर ने उस धारणा को तोड़ दिया, क्योंकि बुद्ध और महावीर के मुकाबले कौन आस्तिक! इन जैसा ज्यादा विधायक आस्तिक व्यक्ति कहां खोजोगे! इन्होंने फीके कर दीये तुम्हारे सारे महात्मा।
लेकिन अभी भी परिभाषा वही चल रही है। मैं उस परिभाषा को फिर बदलना चाहता हूं। वक्त आ गया है कि अब वह परिभाषा काम नहीं पड़ेगी, क्योंकि उस परिभाषा में बुद्ध और महावीर बाहर छूट जाते हैं। मैं आस्तिक की परिभाषा करता हूं--वह, जिसकी जीवन दृष्टि विधायक है, नकारात्मक नहीं। जो जीवन को आलिंगन करने को राजी है वह आस्तिक और जो जीवन से भागता है, भगोड़ा है, इनकार करता है, निशेध करता है, वह नास्तिक। पुराना संन्यास नास्तिक था। मैं जिस संन्यास की बात कर रहा हूं वह आस्तिक है।
लेकिन मेरा संन्यास निश्चित ही चुनौतीपूर्ण है। तुम्हें एक-एक बात सीखनी होगी, क्योंकि सदियों से तो छोड़ना सिखाया था, उसमें तो कुछ सीखने की जरूरत ही न थी। किसी बच्चे को अगर स्कूल छोड़ना सिखाया जाए, तो मामला बिल्कुल आसान है, कौन बच्चा नहीं स्कूल छोड़ देना चाहता! चले जाओ किसी भी स्कूल में, बच्चों से पूछो कि हाथ उठा दो बच्चो, कौन-कौन स्कूल छोड़ना चाहता है? सब बच्चे हाथ उठा देंगे। ये सब पुराने अर्थों के संन्यासी समझो। शायद ही कोई एकाध बच्चा हो प्रतिभाशाली, जो कहे कि नहीं मैं स्कूल नहीं छोड़ना चाहता। जो स्कूल छोड़ कर जाना चाहते हैं, इनको तो कुछ भी न सीखना पड़ेगा। ये सीखने से बचने के लिए ही तो स्कूल छोड़ना चाहते हैं। सीखना ही होता तो स्कूल ही क्या बुरा था! सीखना जहां होता है उसी का नाम तो स्कूल है। और स्कूल में रहेंगे तो सीखना पड़ेगा। और उस सीखने से तो जान छुड़ाना चाहते हैं। गणित सीखो, भाषा सीखो, भूगोल सीखो, इतिहास सीखो, विज्ञान सीखो... सीखते ही रहो, कोई अंत नहीं सीखने का! इतना विस्तार है सीखने के लिए!
और स्कूल तो छोटी-मोटी बात है। यह तो केवल प्राथमिक शिक्षण है। विश्वविद्यालय भी प्राथमिक शिक्षा ही है। असली शिक्षा तो तब शुरू होती है जब तुम विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण हो कर जीवन में प्रवेश करते हो। तब कदम-कदम पर सीखना होता है-कैसे व्यक्तियों के साथ रहना, उठना-बैठना, कैसा जीवन-व्यवहार हो, कैसा शिष्टाचार हो, कैसा जीवन में प्रसाद हो, सौंदर्य हो, कैसे जीवन में आनंद हो, कैसे हम दुख के कांटे न बोएं और सुख के फूल बोएं, और कैसे हम प्रेम को बांट सकें, और लोगों को दुख न दें। क्योंकि जो दुख देगा वह दुख पाएगा। और जो प्रेम बांटेगा वह प्रेम पाएगा। यहां तो पल-पल सीखना है, मरते दम तक सीखना है, मरते-मरते सीखना है! आखिरी क्षण तक भी सीखने की प्रक्रिया बंद नहीं होती। तो इतना साहस हो सीखने का, तो मेरी परिभाषा तुम्हें स्वीकार हो सकती है कि जीवन को जीने की कला है संन्यास।
निर्मल, तुम संन्यासी हुए, तुमने एक दुस्साहस किया है। यह सस्ता काम नहीं है। अब तुम्हें एक-एक कदम होशपूर्वक रखना होगा। अब तुम्हें सोच-सोच कर जीना होगा। अब तुम वैसे नहीं जी सकते जैसे अब तक जीते थे। आमतौर से तो आदमी यूं जीते हैं कि कहो अपने से जीते ही नहीं, भीड़-भाड़ में जैसा और सब लोग करते हैं वे भी करते रहते हैं, नकल से जीते हैं। किसी ने नया मकान बनाया, बस

वैसा ही मकान तुम्हें बनाना है, चाहे कर्ज लेना पड़े, चाहे कर्ज में दब जाना पड़े। किसी ने नए कपड़े पहने, वैसे ही कपड़े तुम्हें पहनने हैं।
रोटरी क्लब में, लायंस क्लब में लोग करते क्या हैं? यही देखने जाते हैं कि कौन क्या पहने हुए है। मंदिरों में स्त्रियों करती क्या हैं? एक-दूसरे की साड़ी का पोत देखती हैं। मंदिरों में जैसे मिलों का विज्ञापन चलता है! असल में मिलों को मंदिर बनाने चाहिए। बिड़ला होशियार आदमी थे, जो उन्होंने बिड़ला-मंदिर बनवाए। राज धर्म नहीं है बिड़ला-मंदिरों का। तुम लाख अखबारों में विज्ञापन दो, उसका कोई फायदा नहीं है। एक महिला को कपड़े पहना कर मंदिर पहुंचा दो, पर्याप्त, पूरे गांव में चर्चा हो जाएगी। सारी महिलाएं दीवानी हो जाएंगी। सारे पतियों के गले में फांसी लग जाएगी। अमरीका की एक कंपनी जिन चीजों को बेचना चाहती, उनका विज्ञापन नहीं देती थी। लोंगो का फोन नंबर और उनकी डायरेक्टरी में से देख कर उनका पता निकाल कर, उनके नाम व्यक्तिगत पत्र लिख देती थी। पत्र होता पति के नाम और पत्र के ऊपर लिखा होता-"प्राइवेट, कृपा करके कोई और न खोले।" स्वभावतः पत्नी खोलेगी ही। सुनिश्चित। इसकी गारंटी समझो। अन्यथा हो ही नहीं सकता। और उसके भीतर विज्ञापन, और कुछ भी नहीं। विज्ञापनदाता भी आते हैं, सेल्समैन भी आते हैं, तो जब पति दफ्तर चला जाता है। देखते रहते हैं कि कब पति दफ्तर निकले कि वे दरवाजे पर दस्तक दें, घंटी बजाएं। क्योंकि पत्नी को राजी करो, बस फिर सब ठीक है, फिर पति की क्या बिसात है? पत्नियां एक-दूसरे की साड़ियां देख-देख कर साड़ियां खरीदने पहुंच जाती हैं। यूं फैशन चलते हैं। लोग एक-दूसरे को देख-देख कर जी लेते हैं। यह कोई जीना नहीं है, यह नकल है।
अगर जीवन की कला सीखनी है तो तुम्हें नकल छोड़नी पड़ेगी। वह पहला कदम है। तुम्हें पहली दफा अपनी निजता पर ध्यान देना होगा--क्या मेरी जरूरत है, क्या मेरी आवश्यकता है? करीब-करीब नब्बे प्रतिशत काम तुम ऐसे कर रहे हो जो तुम न करो तो चल जाएगा, मगर उसमें तुम्हारी शक्ति व्यय हो रही है। वही शक्ति लगे तो जीवन का शिखर उपलब्ध हो। मगर वह शक्ति तो यूं क्षीण हो जाती है। सभी एक-दूसरे को देख कर जी रहे हैं। यह बहुत हैरानी की दुनिया है। यहां अपने निजी बोध से बहुत की कम लोग जी रहे हैं। जो जी रहे हैं, वही सच्चे जी रहे हैं, बाकी तो सब मुर्दा हैं, लाशें हैं। उनकी जिंदगी में इतनी भी प्रतिभा नहीं है कि अपने लिए तय करें कि कैसे जीना है। सब दूसरे तय कर रहे हैं उनके लिए। विज्ञापनदाता तय कर देते हैं कि तुम कौन-सा दंत-मंजन उपयोग करो, कौन-सी साबुन उपयोग करो, कौन-सी फिल्म देखो। सब दूसरे तय कर रहे हैं। तुम अपने मालिक ही नहीं हो।
और संन्यास अपनी मालकियत है।
तुम्हें शायद खयाल में भी नहीं आता होगा, क्योंकि तुम इस तरह अचेतन में जीते हो कि तुम्हें पता भी नहीं चलता, कि तुम जब जाते हो दुकान पर, जहां कि सब तरह की साबुनें सजी हैं और दुकानदार पूछता है कौन-सी साबुन और तुम कहते हो लक्स, तो तुम कभी सोचते भी नहीं कि तुम्हारे मुंह से लक्स क्यों निकला। तुम शायद यही सोचते होओगे कि यह तुम्हारा खुद का चुनाव है। यह तुम्हारा चुनाव नहीं है। वह जो अखबार में रोज "लक्स टायलेट साबुन", फिल्म देखने जाओ तो लक्स टायलेट साबुन, रास्ते से निकलो तो बड़े-बड़े तख्ते लगे हुए हैं--लक्स टायलेट साबुन! जहां जाओ वहीं लक्स टायलेट साबुन। सुंदर-सुंदर अभिनेत्रियों के अखबार में फोटो छपते हैं। उनकी त्वचा इतनी कोमल क्यों है? लक्स टायलेट साबुन! बस तुम्हें लक्स टायलेट साबुन शब्द पकड़ा। यह तुम्हारे भीतर बैठने लगा। यह तुम्हारे अचेतन में डूबने लगा। अब तुम्हें कोई नद्ध में भी पूछे अगर कि कौन सा साबुन, तो नद्ध में भी कहोगे-- लक्स टायलेट साबुन! अब तुम्हें होश में बोलने की कोई जरूरत नहीं है। यह तुम्हारे अचेतन में चली गयी बात। विज्ञापन की सारी कला यही है।
विज्ञापन की कला इसीलिए चलती है, क्योंकि आदमी नकलची है। बहुत से प्रयोग किए गए हैं इस बात पर। दस वैज्ञानिकों के वक्तव्य तय किए गए कि कौन-सा साबुन शरीर के लिए वैज्ञानिक रूप से श्रेष्ठ है और दस अभिनेत्रियों के नाम तय किए गए सब से रद्दी साबुन के लिए-और दोनों विज्ञापन दिए गए।

विज्ञापन, जिसमें वैज्ञानिकों के नाम थे, वह साबुन तो बिका ही नहीं। विज्ञापन कोई वैज्ञानिकों के नाम से बिकता है! पहली तो बात यह है कि वैज्ञानिकों के नाम ही कोई नहीं जानता था, कि ये सज्जन कौन हैं! होंगे कोई ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे, इनसे लेना-देना क्या है! और ये बातें जो गिना रहे हैं कि इसमें इस तरह के केमिकल हैं और उस तरह के केमिकल हैं और इस तरह के जर्म मर जाते हैं और उस तरह के जर्म मर जाते हैं... जर्म मारना किसको है! केमिकल से प्रयोजन किसको है! लेकिन दस अभिनेत्रियां जो कह रही हैं कि उनके शरीर का सौंदर्य, यह बचपन का भोलापन जो उनका अभी भी कायम है, यह मखमली त्वचा, वह जो रेशम जैसा हाव-भाव, यह इसी साबुन की वजह से है!
मुल्ला नसरुद्दीन सौ साल का हो गया, तो मैंने उससे पूछाः "नसरुद्दीन, तुम्हारे सौ साल तक जीने का राज क्या है?"
उसने कहा: "आप दो-तीन दिन ठहरें।"
मैंने कहा: "क्यों, दो-तीन दिन ठहर कर कैसे बता सकोगे? खोज-बीन में लगे हो?"
उसने कहा: "नहीं, खोज-बीन में नहीं। दो-तीन कंपनियों से बात चल रही है। जो कंपनी ज्यादा देगी, वही राज है। एक बिस्कुट कंपनी पीछे पड़ी है, एक बोर्नविटा वाले पीछे पड़े हैं, एक विटामिन बनाने वाली कंपनी पीछे पड़ी है। जो ज्यादा देगा। हालांकि मैंने तीनों में से कोई नहीं छुए जिंदगी में। छूने की जरूरत क्या है!"
वे जो तुम चमत्कार दांत देखते हो, हंसते हुए अभिनेत्रियों के, और बस एकदम दिल आ जाता है-बिनाका! शायद बिनाका कभी उन दांतों ने छुआ ही न हो। सच तो यह है कि जहां तक संभावना है वे दांत सच्चे हों ही न। अक्सर तो दांत वे नकली होंगे, बनावटी होंगे। पश्चिमी अभिनेत्रियों के दांत तुम्हें जितने सुंदर दिखाई पड़ेंगे उतने भारतीय अभिनेत्रियों के दांत सुंदर नहीं दिखाई पड़ेंगे। उसका कारण है कि पश्चिम में सारी अभिनेत्रियां अपने दांत बदलवा लेती हैं। प्राकृतिक दांत इतने सुंदर होते ही नहीं। प्राकृतिक दांत कुछ इरछे-तिरछे होंगे, कुछ छोटे-बड़े होंगे, कहीं छोटे-बड़े होंगे, कहीं रंध्र होगा, कहीं संध होगी। मगर जब प्लास्टिक के दांत कोई बनाता है, नकली दांत जब कोई बनाता है, तो फिर सुड़ौल, बिल्कुल ही मोती जैसे! वे नकली दांत। वह हंसी भी नकली। वह फटा हुआ ओंठ-सिर्फ अभ्यास, और कुछ भी नहीं। न कोई भीतर हंसी आ रही है न कुछ सवाल है। जैसे जिमी कार्टर का तुम देखते हो न चेहरा, एकदम दांत निकले हुए; छत्तीसों दांत गिन लेते शुरू-शुरू में, अब नहीं गिन सकते छत्तीसों। अभी-अभी तो बिल्कुल बंद हो गए हैं। अब जब से तेहरान में उपद्रव हुआ है, तब से उनके दांत दिखाई नहीं पड़ते। नहीं तो शुरू-शुरू में बिल्कुल दांत एकदम सब दिखाईपड़ते थे। वह अमरीका में बिल्कुल जरूरी है। राजनेता को सफल होना हो तो उतने दांत दिखाई पड़ने चाहिए। और अभ्यास खूब किया होगा उन्होंने, क्योंकि चौबीस घंटे दांत खुले ही रखते हैं।
मैंने तो सुना है, एक रात... क्योंकि वे रात को भी नहीं बंद होते। जब अभ्यास मजबूत हो जाए तो नद्ध भी लग जाए, मगर वे दांत खुले ही रहते हैं। पत्नी को डर लगता होगा कि अब ये क्या कर रहे हैं। तो ऐसे तो वह बंद कर देती रात उनका मुंह, जैसे ही वे सोए उसने मुंह बंद किया। पर एक दिन भूल गयी होगी। तो रात उसने डॉक्टर को फोन किया कि जल्दी आइए, एक चूहा उनके मुंह में घुस गया है। डाक्टर ने कहा कि मुझे आने में फिर भी दस-पंद्रह मिनट लगेंगे, फासला इतना है, तब तक तुम ऐसा करो कि चीजल का टुकड़ा मुंह के सामने लटका कर हिलाओ, शायद चूहा निकल आए। पन्द्रह मिनट बाद जब डाक्टर आया तो वह बहुत हैरान हुआ, पत्नी एक मरा हुआ चूहा कार्टर के मुंह के सामने हिला रही थी! उसने कहा: "अरे यह तू क्या कर रही है बाई? मैंने कहा था चीज़ का टुकड़ा, यह तू मरा चूहा क्यों हिला रही है?"
उसने कहा कि मुझे मालूम है, मगर उस चूहे के पीछे एक बिल्ली चली गयी! तो पहले बिल्ली को निकाल रही हूं। एक दफा बिल्ली निकल आए तो फिर उस चूहे को निकालें।
अभ्यास जब बहुत गहरा हो जाए तो ऐसे परिणाम होने शुरू होते हैं। लेकिन लोग नकल से जी रहे हैं। दांत, आंखें, चमड़ी, हर चीज नकली है। बाल... हर चीज

नकल है। एकाध स्त्री को खोज लेते हैं, उसके बड़े बाल हैं और बस विज्ञापन शुरू! और तुम चले खरीदने तेल। "इस तेल से तुम्हारे बाल भी ऐसे ही हो जाएंगे।"
जिस व्यक्ति को अपने जीवन को कला बनानी है, पहली तो बात उसे नकल से मुक्त होना पड़ता है। उसे विचारपूर्वक, विवकेपूर्वक अपने जीवन का नियंता होना पड़ता है; अपने जीवन का मालिक बनना पड़ता है। दूसरों के हाथों में मालकियत देनी बंद करनी पड़ती है। वह संन्यासी का पहला कृत्य है कि अपनी मालकियत अपने हाथ में ले ले। वह कहे कि अब मैं अपने ढंग से जीऊंगा; भूल भी होगी तो कोई बात नहीं। भूल होगी तो उससे भी सीखूंगा। भूल होगी तो कुछ लाभ ही होगा, कुछ अनुभव होगा। मगर नकल नहीं करूंगा। दूसरे की नकल करके ठीक भी काम करो तो व्यर्थ है। अपने ढंग से जीकर भूल भी करो तो ठीक है, क्योंकि भूल-चूक कर के ही तो कोई व्यक्ति जीवन में सीखता है।
और फिर एक-एक बात पर विचार करना है। तुम क्रोध करते हो, वही क्रोध रोज करते चले जाते हो; कल भी किया था, परसों भी किया था, पिछले जन्म में भी करते रहे होओगे, आज भी कर रहे हो। पाया क्या? कभी कुछ पाया? बैठ कर कभी सोचोगे, कभी विमर्श करोगे, कभी पुनर्मूल्यांकन करोगे कि कितनी-ऊर्जा तुम्हारी क्रोध में नष्ट होती है? यह क्रोध तुम्हें खाए जा रहा है इससे बड़ी कोई बीमारी नहीं है। मगर तुम इस बीमारी को पोसते हो, पालते हो, इसको भोजन देते हो, इसको सम्हालते हो, डंड-बैठक लगा-लगा कर तैयारी करते हो। और तुम्हें यह पता नहीं कि इससे ज्यादा तुम्हारा कोई शत्रु है? यह तुम अपने को ही जहर से भर रहे हो। अब तो वैज्ञानिक भी इस बात से राजी हैं कि जब तुम क्रोध से भर जाते हो, तब तुम्हारे खून में जहर छूट जाता है। तुम्हारे शरीर में जहर की ग्रंथियां हैं, जो तुम्हारे खुन में जहर को छोड़ देती हैं। इसलिए तो आदमी क्रोध में ऐसे काम कर गुजरता है जो होश में कभी नहीं कर सकता था। और जब उसे होश लौटता है तो बहुत पछताता है; सोचता है यह मैंने क्या किया, यह मैंने कैसे किया!
लोग अक्सर कहते सुन जाते हैं कि "मेरे बावजूद यह हो गया।" तुम्हारे बावजूद हो गया! तो तुम कहां थे? तुम कहीं और चले गए थे? तुम्हारे बावजूद कितनी चीजें हो रही हैं, क्रोध हो रहा है, ईर्ष्या हो रही है, वैमनस्य हो रहा है, लोभ हो रहा है, काम हो रहा है, सब चल रहा है--तुम्हारे बिना! तुम्हारे बावजूद! तो तुम हो क्या? तुम्हारे होने की अर्थवत्ता क्या है? तुम अपने होने की घोषणा कब करोगे?
तो अगर तुम क्रोध पर विचार करोगे तो पाओगे यह तो निहायत मूढ़ता है। मैं क्रोध को पाप नहीं कहता, सिर्फ मूर्खता कहता हूं। पाप कहने से कुछ हल नहीं होता। पाप तो तुमसे सदियों से कहा गया है, मगर कुछ फर्क नहीं हुआ। मैं तो सिर्फ मूर्खता कहता हूं। तुम अगर थोड़े जगोगे, तो तुम पाओगे यही ऊर्जा जीवन को चमक दे सकती है।
तुम आकाश में बिजली को कौंधते देखते हो! वेद के समय में तुम्हारे तथाकथित ऋषि-मुनि इसी बिजली को देख कर कंप जाते थे, यज्ञ-हवन करने लगते थे--सोच कर कि इंद्र देवता नाराज हो रहे हैं, उन्होंने धुनश खींच लिया है। उन्होंने धनुष पर बाण चढा दिया है, कि यह बिजली उनके धनुष की टंकार है। करो पूजा-पाठ! इंद्र देवता को राजी करो! अब कोई छोटा बच्चा भी नहीं डरता। अब सब बच्चे-बच्चे भी जानते हैं कि बिजली से इंद्र का क्या लेना-देना! इंद्र विदा ही हो गए। जो ऋषि-मुनियों के लिए इतने साक्षात मालूम होते थे कि जिनका चौबीस घंटा इंद्रदेवता के स्मरण में गुजरता था... जितनी ऋचाएं इंद्र के लिए वेदों में हैं उतनी किसी के लिए नहीं। बड़ी दहशत रही होगी। और एक झूठ की दहशत-और वह भी ऋषि-मुनियों को! क्या खाक ऋषि-मुनि रहे होंगे! अब हम जानते हैं कि बिजली में क्या है। अब तो बिजली हमारे घर में चाकर है। वही इन्द्र देवता का धनुष, वही उनकी टंकार, वही उनके तीर बल्ब जला रहे हैं तुम्हारे घर में, चूल्हा जला रहे हैं, पंखा चला रहे हैं। इंद्र देवता से भी खूब सेवा ली! यह हुआ असली यज्ञ-हवन! वह भी क्या पागलपन था! मगर कुछ पागल अभी भी यज्ञ-हवन किए जाते हैं। वे कहते हैः "वर्षा नहीं हुई, यज्ञ-हवन करो। इंद्र देवता नाराज हैं।"

कुछ लोग अभी भी समसामयिक नहीं हैं, वे पांच हजार साल पुरानी दुनियां में जी रहे हैं। संन्यासी को समसामयिक होना होता है। उसको आज के बोध से भरना चाहिए। वह भविष्य का निंयता है, निर्णायक है। उसके पीछे-पीछे भविष्य आएगा। वह सूर्योदय है। इसलिए मैंने गैरिक रंग चुना है; वह सुबह का रंग है, सूर्योदय का रंग है। वह वसंत का रंग है, फूलों का रंग है। वह खबर है कि अब बहुत फूल आने को हैं, कि अब सूरज उगने के करीब है। अब पक्षी गीत गाएंगे, अब फूल जानते हैं कि बिजली से कुछ डरने की जरूरत नहीं। बटन दबाओ और बिजली हाजिर। बटन बंद कर दो, बिजली विदा हो गयी। अब बिजली तुम्हारी चाकरी है। ठीक ऐसा ही भीतर भी हमारी ऊंर्जाएं हैं--क्रोध की, काम की, लोभ की। इनसे डरने की जरूरत नहीं है। इनसे कंपने की जरूरत नहीं है। इनके साथ भी उतना ही वैज्ञानिक व्यवहार किया जा सकता है। और यह भी अगर हम वैज्ञानिक रूप से समझ लें तो ये भी हमारे भीतर रोशनी बन सकते हैं। इनसे भीतर का दीया जलेगा। इनसे भीतर शीतलता आएगी। इनसे भीतर के जीवन में झरने फूटेंगे। संन्यासी का अर्थ है, वह पूरे जीवन को एक कच्चे अवसर की तरह लेता है। जैसे कि कोई कच्चा, अभी-अभी निकाला हुआ खदान से हीरा, अनगढ़, सिर्फ जौहरी ही पहचान सकते हैं, हर कोई नहीं। लेकिन जब उस पर छैनी चलेगी जौहरी की और जब वह उस पर धार रखेगा और उसको पहलू देगा और जब उसमें चमक आनी शुरू होगी, तब कोई अंधा भी पहचान लेगा, तब जौहरी होने की जरूरत न रहेगी। जब कोहिनूर पहली दफा मिला था गोलकुंडा में तो तीन साल एक किसान के घर में पड़ा रहा। किसान के बच्चे उससे खेलते रहे। आंगन में पड़ा रहता था। कोई भी चुरा ले जा सकता था। मगर किसी को पता ही नहीं था कि वह कोहिनूर है। वह तो संयोग की बात, एक जौहरी मेहमान हुआ और उसने कहा: "पागलो, यह क्या कर रहे हो? इससे बड़ा हीरा मैंने नहीं देखा!" तब उन्हें होश आया। तब वह हीरा बिका। जब अनगढ़ हालत में था तो आज जितना उसका वजन है, इससे तीन गुना ज्यादा वजन था। फिर उस पर काट-छांट की गयी, वजन तो कम हो गया; जितना वजन कम हुआ उतना मूल्य बढ़ता चला गया। आज एक तिहाई ही बचा है अपने मूल वजन का। लेकिन आज करोड़ों गुनी कीमत है उसकी। आज उससे बड़ा कोई हीरा नहीं है दुनिया में।
तुम्हारे भीतर भी अनगढ़ हीरा है। अभी क्रोध की पर्त है, कामवासना की पर्त है, लोभ है, मोह है, न मालूम क्या-क्या जुड़ा है! इस सब को छांटना है, काटना है। मगर इस सब को काटने-छांटने के लिए दुश्मनी से नहीं चलेगा, बड़ा प्रीतिपूर्ण व्यवहार चाहिए, क्योंकि सिवाए प्रेम के कोई अपने को समझ नहीं पाता। अपने से प्रेम करो। अपने को समझने की कोशिश करो। तुम्हें इतनी ऊर्जा मिली है कि काश तुम इस ऊर्जा के साथ मैत्री साध लो तो यही ऊर्जा सोपान बन जाएगी परमात्मा तक पहुंचाने का। अगर इससे दुश्मनी कर ली तो बस इसी में लड़-झगड़ कर मर जाओगे, नष्ट हो जाओगे।
संन्यास जीवन की कला है निर्मल, जीवन का त्याग नहीं।

तुम बहते जाना, बहते जाना, बहते जाना भाई!
तुम शीष उठा कर सरदी-गरमी सहते जाना भाई!

सब यहां कह रहे हैं रो-रो कर अपने दुख की बातें!
तुम हंस कर सब के सुख की बातें कहते जाना भाई!

भ्रम रहे यहां पर हैं बेसुध-से सूरज, चांद, सितारे, गल रही बरफ, चल रही हवा, जल रहे यहां अंगारे,
है आना-जाना सत्य, और सब झूठ यहां पर भाई,
कब रुकने पाए झुकने वाले जीवन पर बेचारे?

तुम किस पर खुश हो गए और तुम बोलो किस पर रूठे?
जो कल वाले थे स्वप्न सुनहले आज पड़ चुके झूठे!
है यह कांटों की राह विवश-सा सबको चलते रहना,
जो स्वयम प्रगति बन जाए उसी के स्वप्न अपूर्व अनूठे!

तुम जो देते हो मानवता को आठों याम चुनौती,
तुम महल खजानों को जो अपनी समझे हुए बपौती!
तुम कल बन कर रजकण पैरों से ठुकराए जाओगे!
है कौन यहां पर ऐसा जो खा आया हो अमरौती?

यह रंग-बिरंगी उषा लिए है दुख की काली रातें,
है ग्रीष्म-काल की दाहक लपटों में रस की बरसातें! यह बनना-मिटना अमिट काल के चल-चरणों का क्रम है,
छाया के चित्रों सदृश यहां हैं ये दुख-सुख की बातें!

रुकना है गति का नियम नहीं, तुम चलते जाना भाई,
बुझना प्राणों का नियम नहीं, तुम चलते जाना भाई!
हिम-खंड सदृश तुम निर्मल, शीतल, उज्ज्वल यश के भागी,
जमना आंसू का नियम नहीं, तुम गलते जाना भाई!

दूसरा प्रश्न: ओशो, मैं मारवाड़ी हूं, क्या मैं भी मोक्ष पा सकता हूं?

प्रकाश! बात तो जरा कठिन है, मगर असंभव नहीं है। मारवाड़ी से पहले मुक्ति पानी होगी। मारवाड़ी ही रह कर मोक्ष तो नहीं पा सकते, इतना पक्का है। लेकिन उसमें कुछ चिन्ता की बात नहीं। कोई हिन्दू रह कर मोक्ष नहीं पा सकता, कोई जैन रह कर मोक्ष नहीं पा सकता, कोई मुसलमान रह कर मोक्ष नहीं पा सकता। ये सब सीमाएं छोड़नी होती हैं। ये सब सीमाओं के पार जाना होता है। और मारवाड़ी बड़ी कठोर सीमा है। तुम्हारे मन में यह चिन्ता पैदा हुई, यही बताती है बात कि तुम्हें भी लगता होगा कि मोक्ष और म्हारो देश मारवाड़, दोनों में तालमेल बैठेगा कि नहीं!
दो मारवाड़ी कंजूस एक-दूसरे के पड़ोसी थे। एक दिन सुबह दोनों मिले तो पहला बहुत उदास था। दूसरे ने उदासी का कारण पूछा, तो पहला बोला कि आज का दिन मेरे लिए बड़ा मनहूस दिन है। मेरे कंघे का एक दांत आज सुबह ही टूट गया है।
नुकसान के लिए मुझे भी गहरा दुख है, दूसरा बोला, पर इसके लिए इतना उदास होना तो उचित नहीं।
पहला बोला: "क्या बताऊं भाई, वह कंघे का आखिरी दांत था!"
एक मारवाड़ी अपनी कंजूस के लिए प्रसिद्ध था। एक अजनबी उसकी तारीफ सुन
कर रात को उससे मिलने गया, दरवाजा खटखटाया। वह आदमी लालटेन ले कर आया और पूछ: "क्या आप थोड़ी देर बैठेंगे?"
आगंतुम बोला: "हां, आपकी बड़ी तारीफ सुनी है। कुछ देर बैठ कर देखना चाहता हूं।"
उस कंजूस ने फौरन लालटेन को बुझा दिया। आगंतुक बोलाः "मैं समझ गया, आप फालतू तेल जलाना पसंद नहीं करते।"
वह कंजूस बोला: "वह तो ठीक है, परंतु अंधेरे में मैं धोती खोल कर रख देता हूं। इससे धोती का कपड़ा कम घिसता है।"
तो जरा कठिन तो है, मगर घबड़ाओ मत। तोड़ लेंगे। आदमी हो, मारवाड़ी थोड़े ही। विशेषण को पकड़े हो तब तक, पकड़े हो छोड़ दो तो गिर गया।
एक लंगोटी मात्र धारण किए हुए संन्यासी जी भाषण दे रहे थे। बेचारा चंदूलाल मारवाड़ी सुने जा रहा था। मगर उसे बार-बार झपकी आ जाती थी। बीच में ही भाषण रोक कर स्वामीजी ने गुस्से में कहा: "चंदूलाल के बच्चे, तुम्हें ब्रह्मचर्चा की बातें समझ आ रही हैं या नहीं? सो-सो क्यों जाते हो, आदमी हो या पाजामा?"
चंदूलाल मारवाड़ी ने चौंक कर आंखें खोलीं और कहा: "आदमी ही होना चाहिए स्वामी जी, यदि पाजामा होता तो आपने कब का मुझे पहन लिया होता!"
आदमी हो, कोई पाजामा थोड़े ही हो, इतने क्या घबड़ाने की बात है? मोक्ष भी संभव है, प्रकाश। यह धारणा छोड़ो। कैसा मारवाड़! क्यों छोटी-छोटी सीमाओं में अपने को बांधते हो? मगर हम सीमाओं के आदी हैं। हम सीमाओं में बड़ा रस लेते

हैं। मारवाड़ छूटेगा तो भारतीय हो जाओगे एकदम। और तब भारत की अकड़ पकड़ लेगी। अकड़ में ही जकड़ है। तो एक जकड़ से छूटे, बड़ी जकड़ में पड़ गए। छोटी कैद से छूटे, बड़ी कैद में आ गए।
मुझे रोज पत्र आते हैं कि आपकी बातें भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं हैं। तो तुमसे भई कहा किसने कि अनुकूल हैं? मैंने दावा कब किया? यह तुम कुछ मेरी आलोचना नहीं कर रहे हो। यही तो मेरी घोषणा है कि मेरी बातें जागतिक हैं, भारतीय से क्या लेना-देना? यह पृथ्वी कोई बंटी थोड़े ही है ऐसे खंडो में। ये खंड तो सब राजनीति के हैं। पृथ्वी अखंड है। मनुष्य अखंड है। भारतीय अकड़ पकड़ लेती है कि "यह तो पुण्य-भूमि है भारत, यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं!" होंगे कोई मूढ़ देवता, नहीं तो काहे को तरसेंगे यहां पैदा होने को? यहां क्या रखा है, जिसके लिए देवता यहां पैदा होने को तरसेंगे? मगर सारे देशों में इस तरह की धारणाएं होती हैं। सभी के अपने अहंकार होते हैं। और जहां अहंकार है वही बंधन है। फिर अहंकार को तुम क्या नाम देते हो, इससे फर्क नहीं पड़ता। अगर मारवाड़ नाम दे दिया तो जरा छेटा; भारत नाम दे दिया, जरा बड़ा। हिन्दू नाम दे दिया, थोड़ा और बड़ा, क्योंकि हिन्दू मारीशस में भी रहते हैं और सिंगापूर में भी रहते है और कनाडा में भी रहते हैं और इंग्लैंड में भी रहते हैं। मगर जब अहंकार छोड़ना ही हो तो सारे विशेषण छोड़ देने चाहिए। आदमी होना काफी है। अंततः तो आदमी का विशेषण भी छोड़ देना है। तब चैतन्य होना मात्र काफी है, साक्षी होना मात्र काफी है। वही मोक्ष है। साक्षी बनो!
कोई मारवाड़ी थोड़े ही होता है, थोड़े ही होता है, कोई मुसलमान थोड़े ही होता है, कोई भारतीय थोड़े ही होता है, कोई पाकिस्तानी थोड़े ही होता है। कोई खून से बता सकता है कि यह मारवाड़ी का खून है, कि यह जैन का खून है कि यह हिंदू का खून है? खून तो बस खून है, हड्डी तो बस हड्डी है। जरा मरघट पर जाकर हड्डियां छांटो और बताओः कौन हड्डी किसकी है, हिंदू की कि मुसलमान की? और तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। यह सब बातचीत है। इस बातचीत को इतना मूल्य न दो। यह तो कूड़ा-कर्कट है। इस सब को तो अलग लगा देना है। मारवाड़ी को मारवाड़ी होने से छूटना है। बंगाली को बंगाली होने से छूटना है। बिहारी को बिहारी होने से छूटना है। भारतीय को भारतीय होने से छूटना है। जो जहां बंधा है वहीं से छूटना है। फिर बंधन चाहे लोहे के हों चाहे सोने के, इससे भी भेद नहीं पड़ता। बंधन से छूटना है। मोक्ष का अर्थ क्या होता है? सारे बंधन से छूट जाना। और ध्यान रखना, बंधन तुम्हें नहीं पकड़े हुए हैं, तुम्हीं उन्हें पकड़े हुए हो।
एक आदमी शेख फरीद के पास आया। फरीद बड़ा मस्त आदमी था, बहुत अलमस्त फकीर था! पहुंचा हुआ सूफी था। उसके जवाब भी बड़े अनूठे होते थे। इस आदमी ने पूछा कि आप तो पहुंच गए, हमें भी कोई रास्ता बताएं, ये जंजीरों से हम कैसे छूटें? फरीद ने एक नजर उसे देखा, उठ कर खड़ा हो गया। पास में ही एक खंबा था, खंभे को जोर से पकड़ लिया और चिल्लाया बड़े जोर से कि बचाओ, बचाओ, मुझे खम्भे से बचाओ! वह आदमी भी हैरान हुआ कि इसको क्या हो गया! वह भी उठ कर खड़ा हो गया घबड़ाहट में। उसने कहा: "आपको हो क्या गया अचानक? भले-चंगे बैठे थे। मैंने प्रश्न क्या पूछा, आप एकदम पगला गए!" मगर वह सुने ही न, फरीद एकदम चिल्लाता ही गया। मुहल्ले के लोग आ गए। सब खड़े भौचक्के से कि करना क्या! यह भी क्या गजब की बात कह रहा है--"खंभे से छुड़ाओ!" पकड़े है खुद ही खंभे को।
वह आदमी बोला: "आप भी क्या मजाक कर रहे हैं! आप खुद खंभे को पकड़े हैं।" फरीद ने कहा: "तो तो फिर आदमी मूढ़ नहीं है तू। तो फिर क्या प्रश्न पूछता है? वे जंजीरें तुझे पकड़े हुए हैं? कौन-सी जंजीर तुझे पकड़े हुए है? बता तो मैं छुड़ा दूं। तू खुद जंजीरों को पकड़े हुए है।"
लोग अकड़े हुए हैं अपनी जंजीरों पर। लोग उसको अपना अहंकार का आभूषण समझते हैं। छोटे-मोटे लोग भी नहीं, सब छोटे-बड़े एक जैसे हैं। अभी मार्गरेट थैचर ने, इंग्लैंड की प्रधान मंत्री ने कुछ दिन पहले कहा कि "मैं परम गौरवांवित अनुभव करती हूं कि मैं ब्रिटिश हूं। ब्रिटिश होना गौरव की बात है।" क्यों ब्रिटिश होना क्या गौरव की बात है? इसमें ऐसी कौन सी खास खूबी है। लेकिन यही सबका मामला है। भारतीयों को भी यही अकड़ है कि हम भारतीय

हैं। यह बड़ गौरव की बात है! हमारे यहां बुद्ध हुए, महावीर हुए, कृष्ण हुए-बड़े गौरव की बात है! सो तुम्हारा क्या बिगाड़ लिया उन्होंने, हुए तो हुए? तुम तो जैसे हो वैसे के वैसे। तुम तो अछूते के अछूते रहे। तुम तो जल में कमलवत! तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। होते रहो बुद्ध, महावीर, कृष्ण, आओ-जाओ, तुम्हारा कोई बाल बांका कर ले! तुम्हें कोई हिला दे, तुम हिलते नहीं! अरे तुम बिल्कुल अडिग चट्टान हो!
सभी को यही अकड़ है। सारी दुनिया में हर जाति को, हर कौम को। यह अकड़ तुम
ही पकड़े हो। छोड़ दो। और कम से कम मारवाड़ी होने की अकड़ तो अकड़ जैसी भी नहीं, कि किसी से बताओ तो भी झेंप लगे कि मारवाड़ी हूं!
ऐसी कुछ जगहें हैं, जैसे पंजाब में एक गांव है होशियारपुर। कभी होशियारपुर के आदमी पूछ लो कहां रहते हो, एकदम गुस्सा हो जाता है कि तुम्हें क्या मतलब जी? समझ लेना कि होशियारपुर रहता है। क्योंकि खयाल है कि होशियारपुर में बुद्धू रहते हैं। तो होशियारपुर वाले से अगर तुमने पूछ लिया ट्रेन में कि भैया कहां रहते हो, वह एकदम गरम हो जाता है कि "तुम्हें मतलब, कहीं रहें? तुम्हारा क्या बिगाड़ा हमने? तुम हो कौन जी पूछने वाले?" समझ लेना कि अच्छा समझ गए कि तुम होशियारपुर रहते हो।
कहते हैं, अकबर के जमाने में ऐसा हुआ कि होशियारपुर के लोगों को बहुत दुख पहुंचता था इस बात से कि वे अपने गांव का नाम तक नहीं बता सकते। कि जिससे कहो वही हंसने लगता कि अच्छा, होशियारपुर! इस नाम ने ही बदनामी करवा दी होगी। यह नाम ही खराब है--होशियारपुर। अब तुम खुद ही अपने को होशियार कहोगे तो लोग हंसेंगे-अपने मुंह मियां मिट्ठू! तो कोई भी हंसेगा। इसी के लोग बुद्धू समझने लगे होंगे कि इनको इतनी भी अकल नहीं कि अपने मुंह से अपने होशियार नहीं कहना चाहिए। अकबर के पास होशियारपुर का एक प्रतिनिधि- मंडल मिलने गया। उसने अकबर से कहा कुछ करना होगा। हम मूर्ख नहीं है, मगर हमारी ऐसी बदनामी हो गयी है। यह जालसाजी है। आप चाहें जांच करवा लें। अकबर ने कहा कि ठिक है। उसने वजीर भेजे। होशियारपुर के लोगों ने बड़ा स्वागत किया उनका, दिल खुश कर दिया उनका। वजीर भी बाग बाग हो गए कि "कौन कहता है इनको कि ये मूरख हैं, ये तो बड़े अच्छे लोग हैं, बड़े प्यारे लोग हैं! बहुत लोग देखे हमने, दिल्ली में भी ऐसे प्यारे लोग नहीं है।" क्योंकि वे तो बिल्कुल ही तैयारी से थे, कहीं कचरा नहीं, कूड़ा नहीं सड़कों पर, सब साफ-सुथरा! दीवालें सजायी गई थीं, मकान सजाए गए थे, दीए जलाए गए थे। और हर आदमी सावचेत था कि कोई भूल चूक न हो जाए। तीन दिन वजीर और उनके साथी रहे, उनका खूब स्वागत-सत्कार हुआ, खूब मालांए पहनायी गई, खूब सम्मान किया गया! भोज दिए गए। जब उनको विदा कर के सब लोग लौटे तो लौट कर लोगों ने पूछा कि भई, कोई भूल-चूक तो नहीं हुई अपने से? तब एक ने कहा कि भैया, एक भूल हो गयी है, आज ही हुई है, कि दाल में जीरा डालना भूल गए। बात तो जरा सी है मगर कहीं वे यह न सोचें कि इन बद्धुओं को अभी यह भी पता नहीं कि दाल में जीरा डाला जाता है! अरे, उन्होंने कहाः तुम घबड़ाओ मत! गांव भर में जितना जीरा है, इकट्ठा करो, लादो बैलगाड़ियों पर! भागे दो घुड़सवार। वजीरों को रोका कि आप रूकिए, एक-दो मिनट रुकिए। आप बिल्कुल नाराज न होइए।
उन्होंने कहा: "भाई हम नाराज हैं ही नहीं, हम बड़े खुश जा रहे हैं।" इन्होंने कहा: "आप शांत तो रहिए, आप रुकिए, हम अभी सिद्ध करते हैं।"
और बैलगाड़ियों पर बैलगाड़ियां चली आ रही हैं-जीरे से लदी हुई! वजीरों
ने कहा: "मामला क्या है?"
कहा: "यह जीरा है जी! आप यह मत समझना कि हमारे यहां जीरा नहीं होता, कि
हम जीरा खाना नहीं जानते। वह तो भूल हो गयी, रसोइए की भूल थी, उस कारण हमको बुद्धू मत समझ लेना। प्रमाण-स्वरूप यह जीरा हम आपके साथ भेज रहे हैं।" वजीरों ने कहा कि ये बुद्धू ही हैं! तब से मामला बिल्कुल सुनिश्चित ही
हो गया।
तो मारवाड़ी होने से तो छुटकारा बिल्कुल आसान है। सबसे सरल रास्ता तो
यह है, प्रकाश-संन्यासी हो जाओ। जैसे अब सोहन बैठी है--यह सामने ही हमारे मारवाड़ी बैठी है। मगर थी मारवाड़ी, अब नहीं है। अब संन्यासी है, अब कैसी मारवाड़ी!

जब भी मैं मारवाड़ियों के संबंध में कुछ कहता हूं, लोग उसके पास पहुंच जाते हैं कि क्यों सोहन? सोहन कहती है: "हम संन्यासी हैं! मारवाड़ी थे पहले, वह बात खत्म हो गयी। संन्यास पुनर्जन्म है।"
तो पहले तो तुम मारवाड़ी होने से छुटकारा पा जाओ। और ऐसे पाते रहे छुटकारा, पाते रहे छुटकारा, एक-एक एक-एक चीजें तोड़ते चले गए, तो मोक्ष कुछ दूर नहीं।
मोक्ष का कुल अर्थ इतना ही होता है: हम पर कोईविशेषण न रह जाएं। हम विशेषण-शून्य हो जाएं, क्योंकि परमात्मा विशेषण-शून्य है। निर्गुण है। हम भी निर्गुण हो जाएं। हम निर्गुण हो सकते हैं। वह हमारा स्वभाव है।
मोक्ष कुछ उपलब्धि नहीं है--अपने स्वभाव का आविष्कार है।

तीसरा प्रश्न: ओशो, क्या मैं अगले जन्म में गधे के रूप में पैदा हो सकता हूं?

संत महाराज! नहीं भाई, हर जन्म में वही रूप नहीं मिलता! ... और एक जन्म
से तुम तृप्त नहीं हुए हो?
तुमको मैंने "संत महाराज" नाम क्यों दिया है? इसलिए कि भैया, अब बस करो! जब तुम आए थे तो मैंने गौर से देखा, नाम तुम्हारा सोचने लगा, तो जो नाम मुझे आया याद वह था--अंट शंट महाराज! मगर मैंने कहा, वह तो जरा जंचेगा नहीं, सो मैंने कहा "अंट" तो काट दो इसमें से, "शंट" रहने दो। मगर शंट भी जरा जंचता नहीं, क्योंकि लोग पूछेंगे कि शंट का मतलब क्या! उसमें अंट की याद आ जाए! सो मैंने कहा "संत" कर दो इसको जरा, सो बिल्कुल अंट से छुटकारा हो जाए। इसलिए तुमको "संत महाराज" नाम दिया।
वैसे अंट-शंट बना भी संतों के कारण ही। अंट-शंट का मतलब होता है: "अरे क्या संतों जैसी बात कर रहे हो!" जब कोई आदमी अंट-शंट बोलने लगता है, तो लोग कहते हैं: "क्या संतों जैसी बात कर रहे हो! क्या अंट-शंट बक रहे हो!" अंट-शंट का मतलब ही यही होता है कि अरे आदमी जैसी बात करो संतो जैसी नहीं। संतों की तो आदत ही अंट-शंट है।
ऐसा ही अंग्रेजी में शब्द है एक-जिबरिश। जिबरिश का मतलब भी अंट-शंट होता है। और वह भी बना एक सूफी फकीर "जब्बार" के नाम पर। क्योंकि वह जो बकता था, वह किसी की समझ में नहीं आता था वह क्या कह रहा है। ज्ञान की ऐसी बातें करे, ऐसी उलांचे भरे! कहते हैं न, अंधे को अंधेरे में बड़ी दूर की सूझी! किसी की समझ में ही नहीं आए कि वे क्या कह रहे हैं! तो जब्बर के नाम से अंग्रेजी का शब्द बना जिबरिश, कि क्या जब्बार जैसी बातें कर रहे हो! मगर वह आदमी प्यारा था।
शब्द कई दफा बड़े अदभुत ढंग से बनते हैं। अंट-शंट भी ऐसा ही शब्द है। अब जैसे कि तुम अगर कबीर को सुनते तो तुमको कई बार लगता कि अंट-शंट बक रहे हैं। कबीर के कई वचनों को "उलटबांसी" कहा जाता है। उलटबांसी का अर्थ होता है-जो तुम्हारी समझ में न आएं। और कबीर कहते हैं कि बहुत अचंभा हुआ मुझे-"नदिया देखी आगि।" नदिया लागी आगि! अब नदी में कहीं आग लगती है? मगर कबीर कहते हैं कि मैंने नदी में आग लगी देखी, मुझे बड़ा अचंभा हुआ। अब तुम क्या कहोगे? कहोगे न कि अंट-शंट? हालांकि वे पते की कह रहे हैं, मगर वे बड़े ऐसे पते की कह रहे हैं कि जिनको पते की हो पता, वे ही समझेंगे; बाकी तो समझेंगे कि भैया... या तो अंटी चढ़ा गए, भांग खा गए, सन्निपात में आ गए, कुछ ना कुछ बोल रहे हैं! "एक अचंभा मैंने देखा, नदीया लागी आगि।" किसने कब देखा कि नदिया में आग लगी है?
मगर कबीर बड़े पते की बात कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि आदमी के साथ करीब-करीब ऐसी घटना घट गयी है, जैसे नदी में आग नहीं लगनी चाहिए, नहीं लग सकती--पानी में कहीं आग लग सकती है-और आदमी दुखी है! और आदमी का स्वभाव आनंद है। यह उससे भी बड़ी अदभुत बात हुई जा रही है, कि स्वभाव आनन्द है और आदमी दुखी है। यह तो पानी में आग लग जाए, ऐसी बात हो गयी। इस बात को कहने के लिए वे उस उलटबांसी को कहे। मगर तुम समझोगे तो, नहीं तो बात तो अंट-शंट लगेगी।

तो कबीर के बहुत से वचन उलटबांसी हैं। बहुत से संतों के वचन ऐसे हैं
कि तुम समझ ही नहीं पाओगे। इसलिए उनकी वाणी को अंट-शंट कहने लगे लोग। सधुक्कड़ी कहने लगे उनकी भाषा को। कभी-कभी शब्द बड़े अदभुत रास्ते से आते हैं। हमारे पास एक शब्द हैः नंगा-लुच्चा। वह पहली दफा महावीर के लिए उपयोग किया गया था। अब तुम सोच भी नहीं सकते कभी कल्पना में कि महावीर के लिए और "नंगा-लुच्चा" शब्द का उपयोग।
एक सज्जन मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि मैं मुनि विद्यानंद से मिलने गया था। आपका नाम लिया, लिख कर चिट्ठी दी कि आपका क्या विचार है उनके संबंध में। तो उन्होंने चिट्ठी फाड़ कर फेंक दी गुस्से में। जवाब देना तो दूर, मेरी तरफ देखा ही नहीं। और दूसरों से बातें करने लगे। और जब मैं चला आया तब मेरे संबंध में पूछताछ की कि यह कौन आदमी है।
तो मैंने उनसे कहा कि तुम भी यहां कहां नंगे-लुच्चों के पास गए! वे बोले: "अरे, आप क्या कहते हैं! नंगे-लुच्चों के पास!"
मैंने कहा कि हां, यह महावीर के लिए पहली दफा उपयोग हुआ था। नंगे रहते
थे महावीर और बाल लोंचते थे, सो लोग कहने लगे नंगे-लुच्चे। बाल काटने नहीं थे, लोंचते थे। और नंगे रहते थे। शब्द तो ठीक बना नंगे-लुच्चे।
बुद्धू शब्द पहली दफा बुद्ध से बना, क्योंकि जब बुद्ध ने घर छोड़ दिया
और जंगल में बैठ रहे तो अनेक लोग कहने लगे कि यह भी क्या बुद्धपन है! और जो उनकी बात मानकर जाने लगे छोड़-छोड़ कर, लोगों ने कहा: "यह भी हद हो गयी! अरे क्या उस बुद्धू के पीछे पड़े हो, तुम भी बुद्धू हुए जा रहे हो?" तब से बात पकड़ गयी। तब से अब कोई आदमी ऐसे कुछ काम करे तो लोग कहते हैं: "क्यों भैया, क्यों बुद्धूपन कर रहे हो!" लेकिन आया शब्द बड़े अच्छे स्रोत से है, गंगोत्री से आया है।
ऐसे ही अंट-शंट है, संत महाराज! अब तुम्हें भी क्या सूझी! अगले जन्म में भी गधा ही होना है! अरे एक जन्म का अनुभव काफी है। पहली तो बात, कुछ भी न होओ ऐसी कोशिश करो। और कुछ होना ही हो-खच्चर, घोड़ा, कुछ भी--मगर गधा! कुछ तो ऊपर उठो! कुछ तो गति करो! कुछ तो सीढ़ी चढ़ो!
अवसर न गंवाओ। चाहो तो कुछ ऐसी घड़ी आ सकती है कि कुछ भी न होना पड़े। होना तो यही चाहिए कि अगला जन्म ही न हो, क्योंकि जन्म से जो मुक्त हुआ वह मृत्यु से मुक्त हुआ। जन्म और मृत्यु से जो मुक्त हुआ वह परम जीवन को उपलब्ध हुआ। उस दशा को मोक्ष कहते हैं, या निर्वाण कहते हैं, या ब्रह्म-साक्षात्कार कहते हैं।

आखिरी प्रश्न: ओशो, यह मौसम चुनाव का है। क्या एकाध लतीफा राजनेताओं
के संबंध में न सुनाएंगे?

राज भारती!
बहुत दिनों के बाद
उनसे मिलने, उनके घर आया
उन्होनें ड्राइंगरूम में बिठाया।
चाय पिलाई, नाश्ता कराया।
तपाक से मिंले,
हाथ मेरे चरणों की तरफ बढ़ाया।
मैं चकराया,
जो आदमी तीन-तीन घंटे इंतजार कराता था, बड़े नखरों के बाद बाहर आता था
आज वही सज्जन
मेरे पैर को पकड़ रहे हैं?
उनके चपरासी ने रहस्य खोला,
"आपको शायद मालूम नहीं है
हमारे मालिक चुनाव लड़ रहे हैं।"

मौसम तो है। और लतीफा सच्चा भी और झूठा भी। राज समझोगे इसका राज भारती, तो सच्चा। यूं झूठा। एक बार शहर के माननीय नेता श्री जग्गू भैया को एक डेरी फार्म के उदघाटन के लिए बुलवाया गया। जग्गू भैया तो उदघाटनों के लिए एकदम उतावले ही रहते थे, पहुंच गए अपना खादी का धोती-कुर्ता और टोपी इत्यादि लगा कर। गए और निकाल ली अपनी कैंची और बोले कि बाताओ, कहां है रिबन? डेरी फार्म के व्यवस्थापकों ने कहा कि महोदय, यह डेरी फार्म का उदघाटन है, यहां कैंची की जरूरत नहीं। इसका उद्घाटन इस तरह होगा। यह जो बछड़ा यहां बंधा है, इसे आप इसके खूंटे से खोलेंगे और यह अपनी मां की ओर जाएगा।
जग्गू भैया ने जल्दी से उस बछड़े को खोला। बछड़ा काफी देर से बंधा हुआ घबड़ा गया था, अतःतेजी से भागा और जग्गू भैया की टांगों के बीच से उन्हें चारों खाने चित करता हुआ अपनी मां के पास जा पहुंचा। फोटोग्राफर ने जल्दी से इस सुंदर दृश्य को अपने कैमरे में कैद कर लिया। इसके बाद श्री जग्गू भैया के और भी चित्र उतारे गए। एक चित्र डेरी फार्म की सर्वश्रेष्ठ एवं सुंदर भैंस के साथ था। एक चित्र उनका उनकी पत्नी के सहित खींचा गया। कुछ एकल चित्र भी उतारे गए। कुछ चित्र डेरी फार्म के मजबूत और स्वस्थ सांड के भी उतारे गए। दूसरे दिन उतावले जग्गू भैया ने अखबार बुलाए, क्योंकि वे जानते थे कि मृखपृष्ठों पर उनको फोटो छपे होंगे। फोटो तो थे मृखपृष्ठ पर ही थे, मगर उनके शीर्षक कुछ इस प्रकार थे।
पहले चित्र में जग्गू भैया चारों खाने चित डले थे। चित्र में नीचे लिखा था--"डेरी फार्म का उदघाटन करते माननीय श्री जग्गू भैया।"
दूसरे चित्र में जग्गू भैया अपनी पत्नी के साथ खड़े मुस्कुरा रहे थे, लिखा था--"श्री जग्गू भैया, डेयरी फार्म की सर्वश्रेष्ठ और सुंदर भैंस के साथ।"
तीसरे चित्र में श्री जग्गू भैया एक भैंस के गले में हाथ डाले उसे आलिंगनबद्ध किए थे। चित्र का शीर्षक था--"माननीय श्री जग्गू भैया, अपनी प्यारी पत्नी के साथ।"
यह सब देख जग्गू भैया क्रोध से जलभुन गए और अपने ड्राइवर को बुला कर कहा: "इसी समय गाड़ी निकालो और संपादक के यहां चलो। यह क्या बेहूदगी है!" ड्राइवर बोला: "जनाब, वह तो कुछ भी नहीं, जरा यह समाचार-पत्र और देखिए।" यह कहते हुए उसने अपनी जेब से एक दूसरा अखबार निकाला और उनके सामने रख दिया। उसके मुखपृष्ठ पर ही जग्गू भैया के चित्र खींसे निपोरे छपे हुए थे। शीर्षक थाः "हमारे डेरी फार्म का मशहूर सांड!"
पास ही एक चित्र था जिसमें एक काला भुजंग सांड़ खड़ा था, उसके नीचे शीर्षक था-"माननीय श्री जग्गू भैया!"
मौसम तो अभी खराब है। जरा सोच-समझ कर कदम रखना, क्योंकि सभी खींसे निपोरे द्वार पर आ खड़े हो जाएंगे। जरा बुद्धि से काम लेना। जरा विवेक से काम लेना, क्योंकि फिर पांच साल के लिए कोई तुम्हें पूछता नहीं। तो पांच साल के लिए जिन्हें भी तुम सत्ता देते हो, काफी सोच कर देना।
अभी इस देश की जनता एकदम अबोध है। इसे कोई भी मूढ़ बना लेता है। इसे कोई
भी खींसे निपोर कर राजी कर लेता है। इसे किसी भी तरह के झूठे आश्वासन दे कर भरमाया जा सकता है।
इस देश की जनता को थोड़ा सजग होना जरूरी है। नहीं तो हम यूं ही जंगलों में भटकते रहेंगे। ये तीस-पैंतीस साल यूं ही जंगलो में भटकते हुए गुजर गए। और अगर जल्दी कुछ नहीं होता तो हम मृत्यु के कगार पर पहुंच रहे हैं। जल्दी ही हमारी आबादी एक अरब हो जाएगी। न भोजन होगा, न वस्त्र होगा, न रहने का स्थान होगा, न काम होगा। ऐसी दुर्दशा भारत ने कभी भी नहीं देखी थी अतीत में जैसी कि देखनी पड़ सकती है। यह सब बदला जा सकता है। इस सबके होने की कोई अपरिहार्यता नहीं है। मगर जैसे मूढ़ों को हम चुनाव में समर्थन दे देते हैं, उससे यह संभावना नहीं दिखाई पड़ती।
चुनाव में तुम्हारे कारण ही हमेशा गलत होते हैं। मुसलमान मुसलमान को वोट देते हैं, हरिजन हरिजन को वोट देते हैं। यह भी कोई बात हुई? क्षत्रिय क्षत्रिय को वोट देंगे, कलार कलार को वोट देंगे। इस देश में जैसे हमारे

पास सोचने-समझने का और कोई मापदंड ही नहीं है! जात-पात! महाराष्ट्रियन महाराष्ट्रियन को वोट देंगे, गुजराती गुजराती को वोट देंगे। जैसे ये कोई निर्णायक बातें हैं! किसको तुम मत देते हो? और तुम यह भी नहीं देखते हो कि जो आश्वासन तुम्हें दिए जा रहे हैं, वे आश्वासन तुम्हें कितनी बार दिए गए और कभी पूरे नहीं हुए! तो तुम उन आश्वासनों की व्यवहारिकता को भी तो देखो कि वे पूरे किए भी जा सकते हैं या नहीं। कुछ तो आश्वासन हैं जो पूरे किए नहीं जा सकते, सिर्फ देने के होते हैं। और तुम उन्हीं आश्वासनों में आ जाते हो।
और मजा यह है कि तुम अपनी बंधी हुई लकीरों, लीकों को पीटे चले जाते हो
और उन्हीं के अनुकूल तुम मत देते हो। यह इस देश का सबसे बड़ दुर्भाग्य है। उन्हीं को मिटाना है, उन्हीं के कारण हमारा रोग है, उन्हीं के कारण हम परेशान हैं। वे ही धारणाएं। अब जैसे जो व्यक्ति कहेगा कि इस देश में हम अनिवार्य संतति-नियमन लाएंगे, उसको कोई वोट नहीं दे सकता। उसकी हार सुनिश्चित है, हालांकि वही आदमी है जो इस देश में कुछ कर सकता है। मगर जो तुमको कहेगा कि "सतति-नियमन की क्या जरूरत है, अरे ऋषि-मुनियों का देश है यह ब्रह्मचर्य से काम चलांएगे"--बस तुम्हारे दिल एकदम बाग-बाग हो जाते हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन कहता है... बाग-बाग का उसने अनुवाद कर लिया है अंग्रेजी में, कहता है-गार्डन गार्डन! तुम्हारा दिल एकदम गार्डन-गार्डन हो जाता है। कोई मूढ़तापूर्ण बात तुमसे कही जाए, बस तुम प्रसन्न हो जाते हो। ऋषि-मुनियों का देश है! यहां सतति-नियमन की क्या जरूरत है? और अनिवार्य संतति-नियमन, बर्दाश्त नहीं किया जा सकता! हमें तो छूट है बच्चे पैदा करने की। और जब परमात्मा देने वाला है तो तुम कौन हो रोकने वाले! परमात्मा देने वाला है, मगर वह साथ जमीन नहीं भेजता, न फैक्टरी भेजता। आदमी भेजता चला जाता है। और जब भुखमरी बढ़ती है तो तुम परमात्मा को कहां खोजोगे? उससे तो उत्तर मांग नहीं सकते, जवाब-तलब कर नहीं सकते। अगर मुसलमानों से कहा जाए कि तुम चार-चार पत्नियां नहीं रख सकते, तो खतरा है, तो कोई वोट नहीं मिलेगा। धर्म का विरोध हो गया! अब एक आदमी अगर चार पत्नियां रखे तो यह खतरनाक बात है, यह अमानवीय बात है। एक ही पत्नी से तो इतने बच्चे तुम पैदा कर रहे हो, चार-चार से तो तुम बड़ा उपद्रव मचा दोगे। मगर मुसलमानों के अगर वोट चाहिए तो तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा कि वे चार पत्नियां रखें, ठीक बिल्कुल ठीक!
हिन्दुओं के अगर वोट चाहिए तो तुम्हें कहना पड़ेगा कि ब्रह्मचर्य की बड़ी ऊंची बात है। न तुम्हारे देवी-देवता ब्रह्मचर्य साधते हैं, तुम्हारे ऋषि-मुनि भी सब संदिग्ध। औरों की तो तुम बात छोड़ दो, तुम पुराणों को उठा कर देखो! ब्रह्मा ने पृथ्वी को बनाया और जब पहली दफा पृथ्वी एक स्त्री थी। स्त्री के रूप में बनाया। और जब ब्रह्मा ने बनाया तो जिसे बनाया था वह उसकी बेटी, ब्रह्मा पिता। मगर ब्रह्मा उसी पर मोहित हो गए। ये तो तुम्हारे ब्रह्मा के हाल हैं। तुम क्या खाक ब्रह्मचर्य साधोगे! ब्रह्मा तक से नहीं सधता, जिनके नाम पर ब्रह्मचर्य शब्द बना है उनसे तक नही सध रहा! वे अपनी बेटी पर ही मोहित हो गए और एकदम उसका पीछा करने लगे। बेटी घबड़ाई, वह गाय बन गई, तो ब्रह्मा फौरन सांड बन गए--या जग्गू भैया, जैसा तुम समझो! वह भाग-भाग कर बचने लगी। वह भैंस बन गयी तो वे भैंसा बन गए। मगर पीछा करते गए। ऐसे पूरी सृष्टि को विस्तार हुआ। वह स्त्री भागती ही चली गयी, बचती ही चली गयी, नये-नये रूप लेती चली गयी। मगर ऐसे ब्रह्मा को धोखा देना आसान नहीं था, वे भी नया-नया रूप लेते चले गए।
तुम जरा अपने देवी-देवतांओ की कथा तो पढ़ कर देखो! और तुमसे ब्रह्मचर्य
की बात कही जाती है। महात्मा गांधी ब्रह्मचर्य समझाते रहे, तुम्हें खूब जंचता था। खुद पांच बच्चे पैदा कर गए, फिर ब्रह्मचर्य की बात करने लगे। तुम्हें बात जंचती है बहुत कि बिल्कुल ठीक। तुम्हारे शास्त्र के अनुकूल कुछ भी कह दे कोई, तुम्हारी धारणा के अनुकूल कोई कुछ कह दे, बस तुम्हें बात जंच जाती है।

और अब जरूरत आ गयी है कि तुम्हारी सारी धारणाएं तोड़नी पड़ेंगी, तो ही
इस देश का कोई भाग्य रूपांतरित हो सकता है। और जब चुनाव का मौसम हो तभी अवसर होता है रूपांतरण का। तब तुम्हें सजग होना चाहिए। तब तुम्हें जागरूक होना चाहिए। मैं नहीं कहता किसको तुम चुनो। मेरी कोई उत्सुकता नहीं किसी में। लेकिन इतना मैं जरूर कहता हूं कि तुम विवके से चुनो, होश से चुनो, सावधानीपूर्वक चुनो। और हिम्मत कर के उनको चुनो, जो रूढ़िवादी न हों, रूढ़िग्रस्त न हों और जो अतीत से मुक्त होने में तुम्हारा सहयोग दे सकें और जो देश को एक नया जीवन, और एक नया भविष्य देने में समर्थ हैं।
यह हो सकता है, मगर तुम होने दोगे तो ही हो सकता है। अगर तुम्हीं विपरीत हो और तुम्हारे ही वोट पर लोंगो को निर्भर रहना है तो उनको तुम्हें देख कर चलना पड़ता है कि तुम जो कहो वही ठीक। नहीं तो पांच साल बाद तुम बदला लेते हो। और फिर पांच साल बाद कोई नहीं हारना चाहता। जो एक बार कुर्सी पर बैठ गया, वह सदा बैठा रहना चाहता है। इतनी हिम्मत भी किसी में भी नहीं है कि अपनी धारणाओं पर, अपनी नयी धारणाओं पर बलिदान कर दे--पद का, प्रतिष्ठा को। वह भी हिम्मत किसी में भी नहीं है। और तुम अपनी धारणाओं से ऐसे चिपके हो कि तुम पुनर्विचार ही नहीं करते।
सोचो, खूब सोचो। ये क्षण सोचने के हैं। और इन्हें सोचने के आधार पर तुम निर्णय लो। फिर तुम जो भी निर्णय लोगे, उससे देश का हित हो सकता है।

आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
पांचवां प्रवचन

सत्य की अग्नि-परीक्षा

पहला प्रश्नः ओशो,
हम भी मिट जाते कोई जख्मे तमन्ना बन कर
काश आती न तेरी याद मसीहा बन कर
हम भी मिट जाते...
दिल की हर आग बुझाने को तेरी याद आई
कभी कतरा कभी शबनम कभी दरिया बन कर
हम भी मिट जाते...
रास्ता भूल गयी याद किसी की वरना
हम गरीबों के घर आती न उजाला बन कर
हम भी मिट जाते कोई जख्मे तमन्ना बन कर... काश आती न तेरी याद मसीहा बन कर
जब चले दश्त की ज़ानिब तो ये देखा हमने
सामने याद खड़ी थी लैला बन कर
हम भी मिट जाते कोई जख्मे तमन्ना बन कर
काश आती न तेरी याद मसीहा बनकर
हम भी मिट जाते...

ध्यानेश! मनुष्यों में और बुद्धों में बस इतना-सा ही भेद है-याद का।
जिसे याद आ गयी वह बुद्ध हो गया। जिसे याद न आयी वह नाममात्र को ही मनुष्य होता है, मनुष्य भी नहीं हो पाता। कोई और भेद नहीं है। कोई मौलिक भेद नहीं है। कोई गुणात्मक भेद नहीं है।
कुछ ऐसा नहीं है कि बुद्धपुरुषआकाश से उतरते हैं और हम कीचड़ से पैदा होते
हम भी कीचड़ से पैदा होते हैं, वे भी कीचड़ से पैदा होते हैं। कीचड़ से ही कमल पैदा होते हैं। लेकिन थोड़ा-सा भेद है और थोड़ा-सा भेद बड़ा भेद बन जाता है। इतना ही भेद है कि किसी को याद आ जाती है परमात्मा की और किसी को याद नहीं आती। कोई सोया ही चला जाता है, सपनों में ही खोया रहता है, मूर्च्छा के नए-नए आयोजन करता रहता है।
हमारी तथाकथित जीवन-व्यवस्था, जिसका हम सुख सुविधाएं कहते हैं, सिवाय मूर्च्छा को बनाए रखने के उपकरणों से और कुछ ज्यादा नहीं है। नद्ध न टूटे, नद्ध बनी रहे, ठीक होगी शैय्या, सुखद होगा वातावरण, सुख होगा, सुविधा होगी, नद्ध का टूटना मुश्किल होगा।
तुमने देखा, नद्ध टूट जाती है अगर कोई दुख-स्वप्न देखे। जैसे कि तुम्हें कोई पहाड़ से गिरा दे स्वप्न में और तुम गिरे जा रहे हो अतल खड्ड की तरफ, जहां कि चकनाचूर हो जाओगे, अब टूटे अब टूटे, अब टकराए अब टकराए-कैसे सोए रहोगे? नद्ध टूट ही जाएगी। कोई सिंह हमला कर दे सपने में, छाती पर सवार हो जाए, पंजे से चीरने लगे छाती को-सो सकोगे? मुश्किल हो जाएगा सोना। सोने के लिए सुखद सपने चाहिए।
और जिसको हम जीवन कहते हैं, वह कुछ और नहीं, सुखद सपनों को देखने का आयोजन है। और जिनको हम सफल कहते हैं वे वे लोग हैं, जो सुखद सपने देखने में निष्णात हो गए हैं, कुशल हो गए हैं। असफल हम उनको कहते हैं, जो सुखद सपने नहीं देख पाते।
जीवन के अंतिम गणित में बड़ी और बात हैः सफल वह है जिसका सपना टूट जाए; असफल वह है जिसका सपना मजबूत होता चला जाए। और हमारा जीवन तो बस नद्ध की दवाएं जुटाने के काम आता है। तो याद आए तो कैसे आए?
तुम कहते हो--
"रास्ता भूल गयी याद किसी की वरना
हम गरीबों के घर आती न उजाला बन कर।
हम भी मिट जाते कोई जख्मे तमन्ना बन कर
काश आती न तेरी याद मसीहा बन कर।"

वह तो द्वार-द्वार पर खड़ा है। उसके लिए कुछ भेद नहीं है गरीब और अमीर का। लेकिन अमीर ने मजबूत द्वार बना रखे हैं; उन पर ताले जड़ दिए हैं, पहरे बिठा रखे हैं। परमात्मा प्रवेश भी करना चाहे तो प्रवेश नहीं कर पाएगा। मत कहो यह कि--
"रास्ता भूल गयी याद किसी का वरना
हम गरीबों के घर आती न उजाला बन कर।"
तुम्हारे द्वार खुले हों तो याद अभी आ जाए, तत्क्षण आ जाए। द्वार खुले हों तो सूरज यह थोड़े ही देखता है कि महल है कि झोपड़ा है! उसकी किरणें नाचती भीतर चली आती हैं। सूरज भेद थोड़े ही करता है महलों में और झोपड़ो में। सच तो यह है कि झोपड़ों में ज्यादा आसानी से चला आता है, महलों में मुश्किल हो जाती है। महलों में कहां सूरज की बिसात है, कहां सूरज प्रवेश पा सकेगा! इतने द्वार-दरवाजे, इतना पहरा, इतनी संगीनें। सूरज की नाजुक किरणें कैसे प्रवेश पा सकेंगी?
नहीं, तुम गरीब नहीं हो अगर उसकी याद आ गयी। उसकी याद आ गयी तो तुम धनी हो। उसकी याद आ गयी, तो ही तुम समृद्ध हो। गरीबों को ही उसकी याद नहीं आती। लेकिन जिनके पास धन है. उनको हम धनी समझते हैं। धन होने से कोई धनी नहीं होता। आत्मवान होने से कोई धनी होता है, क्योंकि धन ध्यान का दूसरा नाम है। धन भीतर है, बाहर नहीं। उसकी याद आए तो तुम धनी हो जाते हो। उसकी याद न आए तो तुम गरीब हो।
इस जगत में जिनके पास सब कुछ है और परमात्मा ही याद नहीं, उनसे ज्यादा दीन और दरिद्र कोई भी नहीं। उनका सब पड़ा रहा जाएगा। उन्होंने जिंदगी यूं ही गंवा दी, कूड़े-कचरे में गंवा दी। वे नाहक ही समुद्र के तट पर कंकड़-पत्थर बीनते रहे और जिंदगी हाथ से बहती चली गयी। जिंदगी, जो कि हीरे बन सकती थी, कंकड़-पत्थरों में लुट गयी।
गरीब नहीं हो ध्यानेश। तुम्हें मैंने ध्यानेश नाम दिया। उससे बड़ा कोई
और धनी नहीं होता। ध्यान आ जाए, बस धन के द्वार खुल गए।
धन की परिभाषा यही हैः जिसे मृत्यु न छीन पाए, वही धन है। जिसे मृत्यु छीने ले, वह क्या खाक धन है! सिर्फ सपना है। रेत के घर हैं। कागज की नावें हैं। ताश के पत्तों के बनाए गए महल, हवा का जरा-सा झोंका और गिर जाएंगे। मगर यह बात सच हैः उसकी याद न आए तो हम क्या हैं-सिवाय एक जख्में तमन्ना; एक घाव, एक पीड़ा, एक रूदन। उसकी याद न आए तो हम क्या हैं-सिवाय आंसुओं के! डसकी याद आए तो आंसू ही मोती हो जाते हैं। उसकी याद न आए तो आंसू पानी हैं; उसकी याद आए तो आंसू मोती हैं। उसकी याद का जादू इस जगत में सबसे बड़ा जादू है। जिसको उसकी याद ने छू लिया, उसकी मिट्टी भी सोना हो जाती है और जिसे उसकी याद ने नहीं छुआ, उसके हाथ में सोना भी मिट्टी है।
"हम भी मिट जाते कोई जख्मे तमन्ना बन कर
काश आती न तेरी याद मसीहा बन कर।"
यह सच है। यह शत-प्रतिशत सच है।
साधारण आदमी की जिंदगी और क्या है-एक नासूर, जिससे मवाद रिसती है छिपाओ लाख, उघड़-उघड़ आती है। यहां से ढांको तो वहां से उघड़ आती है। इधर से दबाओ तो उधर से बहने लगती है। एक बीमारी मिटाओ तो दूसरी प्रगट हो जाती है। साधारण आदमी है क्या-एक विक्षिप्तता, एक पागलपन! मगर चूंकि और सारे लोग भी हम जैसे ही पागल हैं, हमें पता नहीं चलता। पागलों की भीड़ में हम बिल्कुल ठीक मालूम होते हैं।
एक पागलखाने में नया डॉक्टर आया। पागलों ने बड़ा उत्सव मनाया। नए डॉक्टर को गले लगे, बड़े गीत गाए, फूलमालाएं पहनायीं, फूल बरसाए। पुराना डॉक्टर बड़ा हैरान हुआ। वह विदा ले रहा था। यह समारोह दोनों का था-पुराने की विदाई थी, नए का स्वागत था। लेकिन पुराने को न तो मालाएं पहनायीं उन्होंने, न पुराने की कोई फिक्र की, उसकी उपेक्षा कर दी बिल्कुल। पुराने डॉक्टर ने कहा कि भाई, मैं तीस साल तुम्हारी सेवा किया, मुझे धन्यवाद भी नहीं और यह आदमी को तुम अभी जानते भी नहीं, नया-नया आया, इसका तुम इतना स्वागत कर रहे हो, बात क्या है? पागल हंसने लगे। उन्होंने कहा कि यह आदमी बिल्कुल हम जैसा मालूम होता है। तुम एक अजनबी थे। तुम्हारा हमसे कभी

तालमेल न बना। तुम ऊटपटांग बातें करते थे। सारा पागलखाना जानता है कि तुम पागल थे। यह आदमी समझदार है। इसके हर ढंग में समझ का लक्षण है। जब यह अंदर प्रविष्ट हुआ, तभी हम पहचान गए, तत्क्षण पहचान गए। अरे समझदार छिपा सकता है अपनी समझ को? जैसे अंधेरे में दीया जले, तो किसी को भी दिखाई पड़ जाए। इसने सिगरेट जलायी और कान में लगाकर पीने लगा, तभी हम पहचान गए कि यह है अपना आदमी जिसकी ज़रूरत थी! क्या पहुंची हुई सूझ है!
पागलों को तो पागल लगेगा अपने जैसा। पागलों को तो पागल के साथ तालमेल लगेगा। स्वस्थ व्यक्ति पागलों को जंचेगा नहीं, रूचेगा नहीं। यहां सब बीमार हैं। इन बीमारों की बस्ती में स्वस्थ होना खतरे से खाली नहीं है। इन बीमारों की बस्ती में प्रभु का स्मरण जोखम का काम है। सूफी फकीर तो कहते हैं चुपचाप करना स्मरण, किसी को कानो-कान खबर न हो, नहीं तो तुम झंझट में पड़ोगे। मगर यह मामला कुछ ऐसा है कि तुम लाख छिपाओ, यह छिपता नहीं, यह छिपाया जा नहीं सकता। छिपाने की जितनी कोशिश करोगे, उतना ही प्रगट हो जाएगा। क्योंकि परमात्मा की याद एक ऐसी मस्ती ले आती है! जब वसंत आएगा तो फूल खिलेंगे; क्या करेंगी कलियां, खुल पड़ेंगी, चटक जाएंगी, गंध बिखर जाएगी! लाख रोकना चाहें तो रूक न सकेंगी। और जब वर्षा आएगी तो मेघ बरसेंगे, मोर नाचेंगे। यह सब होगा ही। जब आम पकने के करीब होंगे, अमराई फूलेगी, तो कोयल कूकेगी, लाख रोकना चाहे। सुनते हो दूर कोयल की आवाज? लाख रोकना चाहे, नहीं रुक सकती। जब परमात्मा तुम्हारे भीतर याद बन कर उतरेगा तो तुम्हारे पैरों में नाच आ जाएगा, तुम्हारे होठों पर गीत आ जाएंगे, तुम्हारी आंखो में ज्योति आ जाएगी। तुम उठोगे और ढंग से, बैठोगे और ढंग से। तुम्हारी आखों में एक मादकता आ जाएगी, एक नशा आ जाएगा, एक मस्ती आ जाएगी। उसके बिना तो जिंदगी अधूरी है। उसके बिना तो जिंदगी अंधेरी है।
तो यह सच है-
"हम भी मिट जाते, कोई जख्मे तमन्ना बन कर
काश आती न तेरी याद मसीहा बन कर
दिल की हर आग बुझाने को तेरी याद आई
कभी कतरा कभी शबनम कभी दरिया बन कर।"
बहुत रूपों में उसकी याद आती है, बस एक दफा आ जाए तो हर रूप में पहचानी जाने लगती है। एक दफा समझने की बात है। एक बार पहचान हो जाए तो फुल में भी तुम उसी की मुसकराहट पाओगे और सुबह ओस की बूंद में भी उसी चमक और सांझ जब तारे आकाश में फैलने लगेंगे तो उसी का आंचल! सूर्यास्त में भी तुम उसी को देखोगे! उसी का रंग बिखरा हुआ पाओगे बदलियों पर। लोगों की आंखो में झांकोगे तो उसी की गहराई, पशु-पक्षियों में उसी का निर्दोष भाव। उससे एक बार पहचान भर हो जाए, उसकी याद भर आ जाए, कि पत्थर-पत्थर पर तुम्हें ऋचाएं खुदी हुई मिलेंगी। फिर तुम वेदों में नहीं जाओगे, वेदों में क्या जाने की जरूरत रह जाती है! सड़ी गली किताबों में किसकी फिक्र रह जाती है! चारों तरफ जिंदा किताब मौजूद है।
परमात्मा की सृष्टि, उसकी किताब है, उसका वेद है। और सब वेद तो आदमी के रचे हुए हैं; लाख तुम कहो कि अपौरूषेय हैं, लाख हिंदू कहें कि परमात्मा ने स्वयं वेद रचे हैं, बात कुछ जंचती नहीं। क्योंकि वेदों में ऐसी बातें भरी पड़ी हैं जो परमात्मा के होंठो से निकल ही नहीं सकतीं; जिनको परमात्मा के होंठों से निकलवाने के लिए परमात्मा से बड़ी कवायद करवानी पड़ेगी, बड़ा शीर्षासन करवाना पड़ेगा। अब परमात्मा यह प्रार्थना करेगा... किससे प्रार्थना करेगा, पहली तो बात? सारा वेद प्रार्थनाओं से भरा हुआ है। परमात्मा लिख रहा है, तो प्रार्थना किससे करेगा? कोई पूछे? अब प्रार्थना तो वही कर सकता है जो परमात्मा नहीं है। परमात्मा अपनी ही प्रार्थना कर रहा है! अपने से ही प्रार्थना कर रहा है! प्रयोजन क्या है? जो उसे करना हो करे, इतना शोरगुल क्या मचाना? और प्रार्थना भी क्या छोटी-मोटी, क्या टुच्ची, कि अगर वेद को छांटने जाओ तो निन्यानबे प्रतिशत कचरा पाओगे। कचरा ऐसा कि आदमी भी लिखने में शरमाए। तुम भी अगर लिखने बैठो आज तो तुमको भी लगे कि यह लिखने योग्य है-कि हे परमात्मा, मेरे गऊ के थनों में दूध बढ़ जाए! यह भी कोईप्रार्थना हुई? तुमको भी थोड़ा सोच-विचार होगा कि यह भी क्या काम

परमात्मा को सौंप रहे हैं! इसके लिए तो वेटनरी डॉक्टर ही काम कर देगा। परमात्मा कोई पशु-चिकित्सक है? और इतना ही नहीं कि मेरे गाय के थनों में दूध बढ़ जाए, मेरे दुश्मन की गाय के थनों का दूध सूख जाए, यह भी उसमें जुड़ा है। मेरे खेत में ज्यादा वर्षा हो और पड़ोसी के खेत में वर्षा बिल्कुल न हो- ये बातें परमात्मा लिखेगा?
लेकिन सारे धर्म-ग्रंथ इसी तरह की बकवास से भरे हुए हैं। और हरेक धर्म
का दावा है कि ये ईश्वर ने स्वयं लिखी है बातें। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः ईश्वर की तो सिर्फ एक ही किताब है, वह लिखी हुई किताब नहीं है। वह फूलों में है, पत्तों में है, पहाड़ों में है, पत्थर में है, नदियों में है, लोगों की आंखों में है, इस जीवन में है। यह जीवन उसकी किताब है। यही उसका एकमात्र वेद है, कुरान है! यही उसका गीत है, यही उसकी श्रीमद्भगवतगीता है। पहचान उसकी आनी शुरू हो जाए और दिल की हर आग बुझ जाएगी। दिल की आग ही क्या है? हम इतने जले क्यों जा रहे हैं? हम इतने बेचैन क्यों हैं? हम इसीलिए बेचैन हैं कि जो हमारा है उसी से छुट गए हैं। जो अपना है उसी से टूट गए हैं। जैसे कोई वृक्ष जमीन से उखाड़ ले और उसकी जड़ें जमीन से छूट जाएं, तकलीफ न होगी, पीड़ा न होगी वृक्ष को, पत्ते कुम्हलाने लगेंगे, फूल मुरझाने लगेंगे, कलियां फिर फूल न बनेंगी, पत्ते गिरने लगेंगे। बेमौसम मौत आ गयी। जड़ें तो जमीन मांगती हैं। आदमी के प्राण भी परमात्मा मांगते हैं। परमात्मा आदमी की भूमिका है, उसकी भूमि है। उसके बिना आदमी सूख जाता है, निर्वीर्य हो जाता है, निस्तेज हो जाता है। वही उसकी शक्ति है, वही उसकी ऊर्जा है।
"दिल की हर आग बुझाने को, तेरी याद आयी है
कभी कतरा कभी शबनम कभी दरिया बन कर।"
बहुत रूपों में आती है उसकी याद। एक बार पहचान भर आ जाए, फिर सब जगह उसकी पहचान होने लगती है। पहली पहचान ही कठिन है। बस पहला स्मरण ही कठिन है। फिर शेष सब सुगम हो जाता है।
"जब चले दश्त की जानिब तो यह देखा हमने
सामने याद खड़ी थी तेरी लैला बन कर
हम भी मिट जाते कोई जख्मे तमन्ना बन कर
काश आती न तेरी याद मसीहा बन कर।"
दुनिया में परमात्मा को दो ढंग से सोचा गया है। एक तो पुरुष की तरह, जैसा कि भारत के भक्तों ने किया, कि परमात्मा कृष्ण है और शेष सब जो भक्त हैं वे उसकी सखियां हैं, गोपियां हैं। यह एक ढंग है परमात्मा को स्मरण करने का। सूफियों ने इससे ठीक उलटा किया। उन्होंने परमात्मा को लैला मानः वह स्त्री है, वह प्रियतमा है, और सब मजनू हैं। सूफियों की बात भी बड़ी प्यारी है।
जो रूच जाए चुन लेना। सैद्धांतिक झगड़ों में मत पड़ना। कुछ लोग सैद्धांतिक झगड़ों में पड़ जाते हैं, समय गंवाते हैं। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि परमात्मा प्रियतम है या प्रियतमा। यह तो भाषा का भेद है। तुम्हें जो रूचे। तुम्हें जो प्रीतिकर लगे। दोनों रास्तों से उपलब्धि हो गयी है। अगर परमात्मा प्रियतमा है, तो मजनू बनने की हिम्मत रखना। और जरा महंगा काम है मजनू बनना, आसान नहीं है। सच तो यह है, मजनू बनना ज्यादा कठिन है बजाय राधा बनने के। मजनू तो दीवानापन है। मजनू तो आखिरी ऊंचाई है प्रेम के पागलपन की। मजनू को सब जगह लैला दिखाई पड़ती थी। सारा जगत लैलामय हो गया था।
तुम यह ध्यान रखना कि लैला मजनू की कहानी सूफियों की कहानी है। वह कोई साधारण प्रेम-कथा नहीं है। लोगों ने उसको साधारण प्रेम-कथा समझ कर बड़ी गलती की है। वह एक अद्भुत काव्य है और उसके भीतर अद्भुत राज छिपे हैं। अगर मजनू बनने की हिम्मत हो, अगर सब कुछ लुटा देने की हिम्मत हो, तो परमात्मा को लैला मान कर चल पड़ना। असली बात मिटने की है। अगर तुम मिट जाओ मजनू बन कर, तो उसे पा लोगे। तुम मिटो तो उसे पा लो।
लेकिन हो सकता है तुम्हें मजनू बनने की बात जमे नहीं, तुम्हें मीरा बनने की बात जमें वह भी मिटने का ढंग है। कहते हैं, मीरा जब वृन्दावन

पहुंची तो वृन्दावन में एक मंदिर था कृष्ण का-सबसे बड़ा मंदिर। उसका पुजारी स्त्रियों को नहीं देखता था। एक से एक मूर्खताएं दुनिया में चलती हैं। स्त्रियों में परमात्मा देखो, यह तो समझ में आता है; मगर स्त्रियों को ही न देखो, यह चित्त-दशा तो रूग्ण है। मगर उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, क्योंकि हम इस तरह के लोगों को बड़ा आदर देते हैं। पागलों की दुनिया में इस तरह के पागल खूब जंचते हैं, खूब रूचते हैं। हमारे गणित में बैठे जाते हैं, हमारे तराजू पर तुल जाते हैं। हम कहते हैंः "वाह-वाह, यह है त्याग, यह है तपश्चर्या!" उस मंदिर में स्त्रियों का प्रवेशनिषिद्ध था, क्योंकि कहीं पुजारी की भूल से नजर पड़ जाए, पुजारी का कहीं ब्रह्मचर्य खंडित हो जाए! खूब कच्चा ब्रह्मचर्य रहा होगा। इससे भी कच्चा ब्रह्मचर्य देखा कहीं, स्त्री देखने से ही नष्ट हो जाए? गजब के ब्रह्मचारी थे। तो स्त्रियों को तो प्रवेशनिशेध था, स्त्रियां बाहर ही मंदिर के द्वार पर से ही नमस्कार करके लौट जाती थी। और वहां पहरा था सख्त कि कोईस्त्री भीतर न आए।
जब मीरा पहुंची तो मीरा तो अपना इकतारा बजाती हुई, नाचती हुई पहुंची। ऐसी तो कोईस्त्री कभी पहुंची ही न थी। उसका इकतारा, उसका नृत्य, उसका सौन्दर्य, उसकी अपूर्व भाव-दशा, उसकी समाधिस्थ भूमिका... पहरेदार तो भूल ही गए! भीड़ लग गयी वहां। वे तो तल्लीन हो गए उसके साथ। वह नाचते-नाचते मंदिर में प्रविष्ट हो गयी। यह तो पहरेदारों को बाद में एकदम होश आया कि यह क्या हुआ, स्त्री अंदर चली गयी! मगर तब तक तो बहुत देर हो गयी थी। पुजारी पूजा कर था। मीरा को देख कर उसके हाथ से तो थाली छूट गयी पूजा की। थाल गिर पड़ा जमीन पर। उसके तो जीवन भर की साधना खंडित हो गयी। उसके तो क्रोध का अंत न रहा।
तो तथाकथित ब्रह्मचारी महाक्रोधी होते हैं। ये सब दुर्वासा के ही रूप हैं। वह एकदम भनभना गया। उसने कहा कि ऐ स्त्री, तू यहां कैसे प्रविष्ट हुई? शर्म नहीं आती? तुझे पता नहीं?
मीरा तो मस्ती में थी। उसने कहाः "ये बातें पीछे हो लेंगी, अभी जरा नाच लूं कृष्ण के आसपास।"
मगर पुजारी ने कहाः "नाच इत्यादि बाद में, पहले इसका जवाब चाहिए कि तू यहां प्रविष्ट कैसे हुई? तुझे पता नहीं है?"
मीरा ने कहाः "अब तुम पूछते हो तो मैं तुमसे कहती हूं। मुझे आश्चर्य होता है, तुम तीस साल से कृष्ण की पूजा कर रहे हो, अभी तक तुम्हारा पुरुष-भाव नहीं गया! क्योंकि कृष्ण की पूजा का वह तो प्राथमिक चरण है कि हम सब स्त्रियां हैं और कृष्णपुरुष हैं। यह तो कृष्ण-भक्ति का आधार है। तुम अपने को पुरुष समझते हो? तो तुम्हारा कृष्ण से क्या नाता बनेगा! और अगर तुम भी स्त्री, मैं भी स्त्री, तो झगड़ा क्या? मैं भी सखी, तुम भी सखी। आओ दोनों मिलकर नाचें!"
पुजारी के ऊपर तो जैसे हजारों घड़े ठण्डा पानी किसी ने गिरा दिया हो, जैसे नद्ध टूटी! चौंका। बात तो सच थी। यह तो कृष्ण भक्ति का आधार स्तम्भ है कि सिवाय कृष्ण के और कोईपुरुष नहीं है। जैसे सूफियों का है कि सिवाय परमात्मा के और कोई लैला नहीं है और कोईस्त्री नहीं है, बाकी सब पुरुष हैं। मगर दोनों का राज एक ही है, कुंजी एक ही हैः चाहे लैला बनो, चाहे मजनू बनो, दोनों में से कुछ भी बन जाओ, मिट जाओगे। यह मिटने का ढंग है। एक ढंग वह, एक ढंग यह। पूरब से प्रवेश करो कि पश्चिम से, इस द्वार से उस द्वार से, बस मिटने की कला आ जाए। तुम जिस क्षण मिट जाओगे उसी क्षण परमात्मा तुममे प्रविष्ट हो जाता है।
ध्यानेश, मिटो! पूरी तरह मिटो! अभी जो याद ही याद है, अभी सिर्फ स्मरण
ही स्मरण है, वह तुम्हारा अस्तित्व भी हो सकता है। फिर याद भी नहीं करना पड़ता है। कबीर ने कहाः पहले मैं याद करता था, पुकारता फिरता था, हरि-हरि की रट लगाए रखता था। बहुत याद किया, बहुत याद किया, बहुत खोजा। अब हालत बिल्कुल बदल गयी है। अब मैं तो याद करता ही नहीं, क्योंकि याद भूलती नहीं तो याद क्या करना! याद करे वे जिन्होनें भुलाया हो कभी। याद भूलती नहीं तो याद क्या करना! याद करें वे जिन्होंने भुलाया हो कभी। याद भूलती नहीं तो याद क्या करना। इसलिए अब याद तो करते ही नहीं क्योंकि याद भुलती नही। याद

करें वे जिन्होंने भुलाया हो कभी। अब तो हालत बदल गयी है। अब तो वह मेरे पीछे पीछे घूमता है-"कहत कबीर कबीर!" कहां जा रहे हो भाई? जहां मैं जाता हूं, मेरे पीछे-पीछे डोलता है।
यह पराकाष्ठा है भक्ति की, जब परमात्मा तुम्हें याद करता है। कबीर ने कहाः "हरि मेरा सुमिरण करें।" अब मैं तो मिट ही गया, अब तो वही याद करते हैं! अब तो मैं याद करने को भी न बचा।
ध्यान की शुरूआत होती है परमात्मा के स्मरण से और पूर्णता होती है विसर्जत से-सब विसर्जित हो जाता है। जिस दिन सब विसर्जित हो जाए, उस दिन जीवन की सबसे बड़ी धन्यता है। वही मुक्ति है, निर्वाण है।
एक मरीज डॉक्टर के पास पहुंचा। डॉक्टर से बोला: "डॉक्टर साहब, रात में जैसे ही पलंग पर सोने जाता हूं, खुजली शुरू हो जाती है। रात देर तक ऐसा चलता रहता है।"
डॉक्टर ने कहाः "ठीक है, ये गोलियां रात को सोते समय खा लिया करना।"
मरीज ने पूछाः "ये गोलियां कौन सी हैं डॉक्टर साहब?"
डॉक्टर ने कहाः "नद्ध की।" मरीज ने कहाः "पर मुझे तो खुजली की शिकायत है।"
डॉक्टर ने कहाः "अरे भाई जब नद्ध ही लग जाएगी तो खुजली कहां से होगी?" जिसको तुम अभी जीवन समझ रहे हो, वह अगर तुम अगर गौर से देखने की कोशिश करोगे तो सब परमात्मा को भुलाने का उपाय है; याद करने का नहीं, भुलाने का- धन में, पद में, प्रतिष्ठा में। ये सब नद्ध की गोलियां हैं। ये सब शामक दवाएं हैं। जो धन की दौड़ में है उसको ध्यान की कहां फुर्सत! याद भी नहीं आती। वह कहता हैः पहले धन तो कमा लूं, फिर फुर्सत से कभी कर लेंगे याद। ऐसी जल्दी भी क्या है?"
और इस देश में तो और भी मजा है। इस देश में तो हमने धारणा बना रखी है कि
एक ही जन्म नहीं है, जन्म-जन्म हैं। सो वैसे ही हम आलसी थे-इस पृथ्वी पर हम से ज्यादा आलसी कोई भी नहीं-इस धारणा ने हमारे आलस्य को और सुगमता दे दी। इसे तुम समझना। पश्चिम में जो आलस्य नहीं है, उसका कुल कारण इतना है कि पश्चिम में एक ही जीवन की धारणा है। टालने का उपाय नहीं है, स्थगित करने की संभावना नहीं है। एक ही जीवन है; जो करना हो कर लो। धन तो धन, पद तो पद, ध्यान तो ध्यान, प्रार्थना तो प्रार्थना-जो भी करना हो कर तो। दुबारा अवसर नहीं है।
मगर हमें क्या जल्दी पड़ी है! इस जन्म में नही तो अगले जन्म में देख अगले में नहींतो और अगले में देख लेंगे। ऐसे जन्म जो मिलते ही रहे, मिलते ही रहेंगे। अनंत काल पड़ा हुआ है। अनंत काल ने हमें बड़ी सुस्ती दे दी; अद्भुत आलस्य दे दिया है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कौन सी धारणा सच है। मैं यह कह रहा हूं, किस धारणा का क्या परिणाम हुआ है। पश्चिम में जो त्वरा है, गति है, तेजी है, प्रत्येक काम को कुशलता से और पूर्णता से करने का जो एक गहन भाव है, वह पूरब में नहीं है। यहां हर आदमी टालने की कोशिश में लगा है। यहां फाईलें दफ्तर में एक टेबिल से दूसरी टेबिल पर सरकती रहती हैं। अभी कोई जल्दी भी क्या है! जन्मों जन्मों का काम है, होता रहेगा। अनंत काल पड़ा हुआ है। चौरासी करोड़ योनियों में से तुम होकर आए हो, अभी तक तुमने प्रभु का स्मरण नहीं किया! गजब नद्ध है! चौरासी करोड़ योनियों में भटके, मगर प्रभु का स्मरण नहीं किया। और अभी भी अगर तुमसे कोई कहे स्मरण करो, तो तुम कहते होः "करेंगे भाई करेंगे। जरा बेटे की शादी हो जाए, बेटी की शादी हो जाए। जरा नाती पोते बड़े हो जाएं। जरा अभी घर-गृहस्थी कच्ची है, पक्की हो जाए। जरा दुकाने अभी-अभी खोली है, चल तो पड़े। बुढ़ापे में कर लेंगे। आखिरी वक्त कर लेंगे। और नहीं हुआ इस समय में तो अगले समय में हो जाएगा।"
मुल्ला नसरूद्दीन से एक मुसलमान फकीर ने पूछा कि नसरूद्दीन, तुम्हें
तो हिन्दुस्तान में रहते बहुत समय हो गया, तुम्हारा क्या ख्याल हे पुनर्जन्म के संबंध में? क्योंकि हम मुसलमान तो पुनर्जन्म मानते नहीं, मगर तुम तो हिन्दुओं के बीच ही रहे, बड़े हुए, तुम्हारा क्या ख्याल है?

नसरूद्दीन ने कहा कि पुनर्जन्म का सिद्धांत ऐसा है गुरूदेव, कि जैसे
आप मर जाएं और आपकी कब्र पर एक गुलाब का फूल खिले। फिर एक गाय आए और गुलाब के फूल को चर ले। और फिर गाय गोबर करे। और मैं सुबह-सुबह घूमने निकलूं और गोबर का ढेर लगा देखकर मैं कहूंः "गुरूदेव, आप बिल्कुल बदले नहीं!" यही पुनर्जन्म का सिद्धांत है, कि कुछ बदलता नहीं, आप बिल्कुल वही के वही गुरूदेव! शुद्ध गोबर! जैसे पहले थे वैसे अब।
इस जन्म में भी तुम ऐसे गुजार दोगे, न मालूम कितने जन्म गुजार दिए! गुजारने की तुम्हारी आदत हो गयी है, स्थगित करने की तुम्हारी आदत हो गयी है। स्थगन की इस आदत से जागो। कल पर मत छोड़ो। कल पर जिसने छोड़ा, उसने सदा के लिए छोड़ा, याद रखना। वह बेईमानी कर रहा है-अपने साथ, अस्तित्व के साथ। याद करनी है परमात्मा की, द्वार-दरवाजे खोलो। अभी आने दो याद, कि यही क्षण उसके स्मरण का क्षण है। और उसकी याद कभी भी आने को तैयार है। वह द्वार पर दस्तक के रहा है, मगर तुम सुनो तब! तुम तो कान बंद किए पड़े हो। तुम तो नद्ध की दवाओं पर दवाएं लिए चले जा रहे हो। तुम तो शराब में धुतपड़े हो। तुम तो ऐसी पीए हो!
और तरह-तरह की शराबें हैं, खयाल रखना। वह अंगूर से जो ढलती है, वही एकमात्र शराब नहीं है; वह तो कुछ खास शराब है ही नहीं। अंगूर से ढली शराब जो पी लेता है, वह हो सकता है रात भर नशे में रहे, सुबह होश में आ जाता है। मगर यहां बड़ी गहरी शराबें हैं। जिसको अब राजनीति का नशा चढ़ा है, यह कोई एकाध दिन-रात में नहीं उतरता। जिंदगी बीत जाती है, उतरता ही नहीं। यह भाग-दौड़ ऐसी है कि चलती जाती, चलती जाती! यह पद मिल गया तो और पद मिलना चाहिए। वह पद मिल गया तो और आगे को मिलना चाहिए। जो मिल गया उसको बचना है, कहीं वह छूट न जाए! और आगे कुछ है, उसे पाना है। पद की जो दौड़ में लगा है उसका नशा उतरता ही नहीं। धन की जो दौड़ में लगा है उसका नशा कैसे उतरेगा! कितना ही धन हो, कोई अंत नहीं आता उस दौड़ का। ये नये ज्यादा गहरे हैं।
लोग शराब का तो बहुत विरोध करते हैं और अक्सर यही राजनेता विरोध करते हैं, जो पद ही शराब पीए बैठे हैं और तुमने सुना, हमारे पास शब्द ही हैं पुराने-पर-मद, धन-मद। हमने क्यों "मद" शब्द का उपयोग किया इनके साथ? इसीलिए कि ये सब शराबें हैं और ऐसा डुबाती हैं कि लाख कोई चेताए, तुम कहते होः "जरा ठहरो, एक बार प्रधानमंत्री तो हो लेने दो! फिर कर लेंगे सब। फिर परमात्मा को भी खोज लेंगे।"
बड़ा मजा ऐसा है कि जब तुम्हें व्यर्थ की दौड़ सवार होती है तो तुम अभी करना चाहते हो, आज करना चाहते हो। और सार्थक को तुम हमेशा कल पर टाल देते हो। और कल कभी आता नहीं। कल कभी आया ही नहीं। आज ही जागो! आज ही प्रार्थना, आज की ध्यान, आज ही द्वार-दरवाजे खोलो! वह तो द्वार पर ही खड़ा है। तुम ही उसको नहीं खोज रहे हो, परमात्मा भी तुम्हें खोज रहा है, इसे भूलना मत। तुम एक कदम उसकी तरफ उठाओ, वह हजार कदम तुम्हारी तरफ उठाने को तैयार है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, जनता आपको गलत ही क्यों समझे जाती है?

धर्मानंद! जनता जनता है। गलत ही समझेगी, तो ही दो जनता है। ठीक ही समझ
ले तो फिर जनता नहीं। फिर तो बड़े प्रबुद्ध लोग हो जाएं वे।
हमारे पास दो शब्द हैंः पृथक-जन... पृथक-जन का अर्थ होता है जनता; और प्रबुद्ध-जन। मैं जो कह रहा हूं उसे तो थोड़े से ही लोग समझ सकते हैं। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। तुम्हारे प्रश्न को मैं समझता हूं, तुम्हारी पीड़ा को समझता हूं, क्योंकि तुम चाहते हो और लोग भी समझें। तुम पी रहे हो और मस्त हो रहे हो, और लोग भी पीएं और मस्त होएं! और तुम हैरान होते हो कि पीना तो दूर रहा, मस्त होने की तो बात ही नहीं उठती, वे सुनने को भी राजी नहीं हैं। कुछ का कुछ सुनते हैं। मगर उनकी भी तकलीफ समझो। उन पर दया करना। उन पर कठोर मत हो जाना। उनकी तकलीफ यह है कि उनकी समझने की आदतें बन गयी हैं। और उन्होंने जिस ढंग से समझा है, उसी ढंग से तो समझेंगे न!
मुल्ला नसरूद्दीन अपने बेटे को शिक्षा दे रहा था। राजनेता है, तो राजनेता तो राजनीति की ही शिक्षा देगा। अपने छोटे से बेटे से कहा कि बेटा,

चढ़ जा सीढ़ी पर। बेटा चढ़ गया, जब बाप कहे तो बेटा चढ़ गया। जब वह पूरी सीढ़ी चढ़ गया तो नसरूद्दीन ने कहाः "अब बेटा कुद। मैं तुझे संभाल लूंगा।"
बेटा थोड़ा डरा। सीढ़ी ऊंची, कहीं चूक जाए बाप सम्हालने से, हाथ से छूट जाए, कहीं हाथ पर न गिरे, यहां-वहां गिर जाए तो हाथ पैर टूट जाएं! बेटे को डरता देख कर नसरूद्दीन ने कहाः "अरे तुझे अपने बाप पर भरोसा नहीं? अरे नालायक! तुझे मुझ पर श्रद्धा नहीं? जब मैं मौजूद हूं तो तू क्यों डर रहा है? डरपोक! कायर कहीं के! कूद जा!"
जब बहुत ही उसका उकसावा दिया, बढ़ावा दिया, लानत-मलामत की उसकी, तो आखिर बेचारा बेटा क्या करे, आंख बंद करके, सांस रोक कर, ले कर परमात्मा का नाम कूद गया। और जब कूदा तो नसरूद्दीन पीछे हट कर खड़ा हो गया। धड़ाम से वह गिरा, दोनों घुटने छिल गए, रोने लगा। नसरूद्दीन ने कहाः "रो मत!"
उसने कहा कि मैं पहले ही जानता था। आप हट क्यों गए पीछे?
नसरूद्दीन ने कहा कि बेटा तुझे राजनीति सिखा रहा हूं। राजनीति में अपने सगे बाप का भी कभी भरोसा नहीं करना। यह पहला पाठ।
फिर एक दिन बेटा स्कूल से लौटा-कपड़े फटे, चेहरे पर नाखून के निशान, किसी से झगड़ा हो गया, मार-पीट। वह तो एक तरफ रहा, उसको समझाना बुझाना तो दूर रहा, नसरूद्दीन ने उसकी और कुटाई की। वह कहने लगा कि हद हो गयी! सहानुभूति तो दूर, आप और पिटाई कर रहे हैं!
नसरूद्दीन ने कहाः "यह बात ठीक नहीं है। इससे पाठ लो। लड़ाई-झगड़ा ठीक नहीं है। इस दुनिया में जीना है अगर तो लड़ाई-झगड़े से नहीं जी सकोगे, तरकीब से जीओ, होशियारी से जीओ। जेब भी काटो तो सिफ्त से काटो। जेब भी काटो तो इस ढंग से काटो कि जिसकी जेब काटो उसको लगे कि उसके ही हित में काट रहे हो। किसी की गर्दन भी काटो तो भी उसकी ही सेवा में, उसके ही शुभ के लिए। इससे पाठ लो। कभी दुबारा इस तरह कपड़े फटे और गंदे और पिट कर नहीं आना। होशियारी से काम लो, बुद्धि से काम लो।"
दूसरे दिन लड़का लौटा-न तो पिटा था, न कपड़े फटे थे। लेकिन आज जो अंक मिले थे उसको, वे कम थे। बस नसरूद्दीन ने उसकी पिटाई की और कहा कि अगर अभी से यह फिसड्डीपन रहा तो जिंदगी में क्या करेगा रे? हमेशा नंबर एक होना चाहिए! अभी से अगर अभ्यास नंबर एक का रखेगा तो कभी प्रधानमंत्री बनेगा। फिसड्डीपन नहीं चलेगा!
अच्छी कुटाई की उसकी। "नंबर अच्छे आना चाहिए, नंबर एक आना चाहिए तुझे क्लास में! चाहे चोरी कर, चाहे बेईमानी कर। चाहे नकल कर, इससे कोईप्रयोजन नहीं। साधन का कोई सवाल ही नहीं है; साध्य शुभ होना चाहिए, बस। यह राजनीति का मूल मंत्र है।"
दूसरे दिन बेटे ने वही किया, जो बाप ने बताया। बेटे तो आज्ञाकारी हैं-"रघुकुल रीत सदा चली आयी!" वे राजा रामचंद्रजी अपने बाप की मान कर चले गए थे, हालांकि बाप बिल्कुल गलत-सलत बात कर रहे थे। अगर जरा भी अक्ल होती तो इनकार करना था कि यह बात मानने योग्य नहीं है। लेकिन जब रामचंद्र जी तक चले गए, तो यह तो बेचारा नसरूद्दीन का लड़का है, इसने कहा ठीक है। नकलपट्टी की। नंबर एक आया दूसरे दिन। बड़ा खुश चला आ रहा था। आज झगड़ा भी नहीं किया था, कपड़े भी साफ-सुथरे थे और सर्टिफिकेट भी ला रहा था कि आज कक्षा में प्रथम आया है। मगर नसरूद्दीन ने आव देखा न ताव और उसकी पिटाई कर दी! वह तो एकदम कहने लगाः "अब यह बहुत गड़बड़ हो रही है, आप किसलिए मार रहे हैं? कपड़े भी नहीं फटे, पिटा भी नहीं। नंबर भी आज प्रथम आया हूं।"
नसरूद्दीन ने कहाः "बेटा, इस पिटाई से एक पाठ सीखो कि इस दुनिया में अन्याय की अन्याय है, न्याय कहीं भी नहीं।"
तो लोग अपने ही ढंग से सोचेंगे न, अपने ही ढंग से समझेंगे। ठीक कह रहा है, राजनेता ठीक कह रहा है कि यहां कहां न्याय! यहां तो जिसकी लाठी उसकी भैंस। न्याय वगैरह का क्या सवाल है! एक दफा भैंस तुम्हारी है तो बस यही न्याय है। लाठी भर तुम्हारे हाथ में होनी चाहिए।
तुम देखते नहीं अभी, जनता की सरकार थी, वही अदालतं और मुकदमे पर मुकदमे! और अब सरकार बदल गयी है, वही अदालतें हैं और सब मुकदमे गड़बड़ हुए जा रहे हैं, सब मुकदमे गिर जा रहे हैं। वही अदालतें कह रही हैं कि ये मुकदमे

ठीक ही नहीं, इनमें कोई जान ही नहीं। यह मजा तुम देखते हो! जरा आंख खोल कर देखते हो, हो क्या रहा है! जिसकी लाठी उसकी भैंस। लाठी बड़ी होनी चाहिए, तुम्हारे हाथ में होनी चाहिए। ये न्यायाधीश इत्यादि वगैरह सब भैंस हैं, इनका कोई मूल्य नहीं। कानून वगैरह का कोई अर्थ नहीं। लाठी तुम्हारे हाथ में होनी चाहिए, सब तुम्हारे साथ हैं।
मैं जो कह रहा हूं, वह कोई राजनीति तो नहीं है। लोग राजनीति की भाषा समझते हैं, धर्म की भाषा नहीं समझ सकते। और लोगों को सदियों से धर्म के नाम पर राजनीति ही घोंट-घोंट कर पिलायी गयी है और वे उसी को धर्म समझने लगे हैं। और धर्म बड़ी और बात है।

जैसे कि सदियों से तुम्हें कहा गया है कि राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, क्योंकि उन्होंने पिता की आज्ञा मानी। ऐसे ही हर बेटे को अपने पिता की आज्ञा माननी चाहिए। स्वभावतः हर बाप यही चाहता है। यह बापों की जालसाजी है--यह पूरी कहानी। पंडित पूरोहित, ये सब बापों के एजेंट हैं। मैं कह रहा हूं कि धर्म विद्रोह है, आज्ञाकारिता नहीं। मेरे लिए तो राम धार्मिक व्यत्ति नहीं हैं, क्यों क उनमें विद्रोह है ही नहीं, विद्रोह की चिनगारी भी नहीं है। लेकिन हमने हजारों साल से उनको मर्यादा- पुरुषोत्तम कहा है। किसने कहा है? धर्म के ठेकेदार उनको मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं--स्वभावतः, क्योंकि जब तुम अपने बाप की मानोगे तो समाज के जो भी न्यस्त स्वार्थ हैं उनकी भी मानोगे।
गुरजिएफ कहा करता था कि हर धर्म कहता हैः अपने बाप की बात मान कर चलो, क्योंकि अगर तुम अपने बाप की नहीं मानोगे तो परमात्मा की कैसे मानोगे? वह बड़ा बाप! और उस बड़े बाप के ठेकेदार, एजेंट-पुरोहित, पोप, शंकराचार्य इत्यादि-इत्यादि, इनकी तुम कैसे मानोगे? बाप तो सिर्फ बहाना है। फिर बाप गलत है या सही, यह तुम्हें सोचने का सवाल ही नहीं उठता।
राम में जरा भी धार्मिकता नहीं है। मुझसे अनेक लोग आकर पूछते हैंः "आप
सब पर बोले, कृष्ण पर, महावीर पर, बुद्ध पर, जीसस पर, लाओत्सु पर, कबीर पर, नानक पर; आप राम पर क्यों नहीं बोलते?" राम पर मैं नहीं बोल सकता हूं, क्योंकि राम में मुझे कुछ धर्म नहीं दिखाई पड़ता। बगावत की चिनगारी ही नहीं है। क्रांति का कण नहीं है। आज्ञाकारिता! और गलत बात की आज्ञाकारिता! मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आज्ञा मानो ही मत, कि बाप ठीक भी कहे तो मत मानना। ठीक हो तो मानना, लेकिन निर्णायक सदा तुम हो, तुम्हारा विवेक निर्णायक है। ठीक हो तो मानना, गलत हो तो मत मानना। यह बात ही गलत थी। लेकिन इसको मान लिया।
फिर हम लक्ष्मण की भी खूब प्रशंसा करते हैं कि पत्नी को छोड़ कर, अभी- अभी विवाहित पत्नी और उसको छोड़ कर भाई के पीछे चल पड़ा-सेवा करने के लिए। बड़ा भाई! तो बड़े भाई के लिए पत्नी की कुर्बानी दे दो। तो लक्ष्मण भी बड़े कीमती! वे भी कुर्बानी देने को तैयार हैं! पत्नी को उन्होंने चढ़ा दिया कुर्बानी पर। उर्मिला की कोई चर्चा ही नहीं होती। उर्मिला बेचारी का कोई हिसाब ही किताब रखता नहीं, कि उस गरीब पर क्या गुजरी! यह कोईशिष्ट आचरण हुआ! जिस पत्नी को अभी विवाहित करके लाए थे, उस स्त्री के साथ यह सीधा अनाचार है। मगर स्त्री का कोई मूल्य ही नहीं था, उसकी दो कौड़ी कीमत नहीं है। वह तो पैर की जूती है, जब दिल हुआ पहन लिया, जब दिल हुआ उतार दिया!
फिर एक धोबी ने कह दिया कि मुझे शक है अपनी पत्नी पर, कि मैं कोई राजा रामचंद्र थोड़े ही हूं कि तू रात भर कहीं भी रही और सुबह लौट आयी और मैं घर में रख लूं। बस यह धोबी का कहना काफी है; सीता को निकाल बाहर कर दो! पत्नी का कोई मूल्य नहीं है, कोई कीमत नहीं है! गर्भवती स्त्री का कोई मूल्य नहीं है, कोई कीमत नहीं है! ये सब धार्मिक बातें हो रही हैं! और इनको तुम्हें इतनी सदियों से पिलाया गया है कि मेरी बात अगर तुम्हें बगावत लगे और मेरी बात में अगर तुमको घबड़ाहट हो, बेचैनी हो, आश्चर्य नहीं है। तुम्हारे सोचने के ढंग निर्णायक हो गए हैं अब, बंध गए हैं बिल्कुल लकीरों की तरह। उनमें मेरी बात नहीं बैठ सकती है। या तो तुम्हें अपनी लकीरें छोड़नी पड़ें, लीक छोड़नी पड़े, तो तुम मुझे समझ सकते हो; नहीं तो कोई उपाय नहीं है।

एक सट्टेबाज अखबार में तिजारती भाव का कालम पढ़ने में मग्न था। तभी धड़ाम से सीढ़ियों पर से लुढ़क कर उसकी पत्नी गिर पड़ी। सटोरिए के मुनीम ने चिल्ला कर कहाः जनाब, आपकी बीबी नीचे गिर गयी।
सटोरिए ने एकदम घबड़ा कर जवाब दियाः देर मत करो, तुरंत बेच दो!
सटोरिए को तो कोई चीज नीचे गिरे-बेचो! सटोरिए की अपनी दुनिया है, अपने सोचने के ढंग हैं।
एक मारवाड़ी की नौकरानी भागी हुई आयी और उसने कहाः मालिक-मालिक! आपकी पत्नी का बाथरूम में हार्टफेल हो गया।
मारवाड़ी एकदम भागा! बाथरूम की तरफ नहीं, चौके की तरफ। नौकरानी ने कहाः "मालिक, आप होश में है? मालकिन बाथरूम में गिर पड़ी हैं धड़ाम से! वहां उनका हार्टफेल हो गया है। आप कहां जा रहे हैं?"
अरे! उसने कहाः तू चुप रह! वह भाग कर एकदम पहुंचा और रसोइए से कहाः सुन,
आज एक के लिए ही नाश्ता बनाना, तेरी मालकिन न रहीं!
मारवाड़ी अपने ढंग से सोचेगा। यह दो का नाश्ता बना ले और खराब एक नाश्ता जाए... अब मालाकन तो गयी सो गयी, मगर नाश्ता तो बचा ले।
अभिनेत्री की मां ने अपनी होनहर बेटी को समझाया कि चाहे कुछ भी हो जाए, बिना कुछ पहने वह किसी हिरो के सामने कभी न जाए, बिना कुछ पहने वह किसी हीरो के सामने कभी न जाए। आज्ञाकारी बेटी ने मां की बात पल्ले में बांध ली। जब भी वह किसी हिरो के सामने गयी, कुछ न कुछ जरूर पहने रही-चाहे घड़ी, चाहे अंगूठी; यहां तक कि एक बार तो वह चप्पलें ही पहने चली गयी। अभिनेत्री का अपना सोचने का ढंग है। अंगूठी पहनी, बस पर्याप्त हो गया, नियम का पालन हो गया। चाहे नंग-धड़ंग, चलेगा। अंगूठी तो पहने हुए हैं, और क्या चाहिए! अरे लाज छिपाने को तो अंगूठी भी काफी है! जब लंगोटी काफी है तो अंगूठी क्यों काफी नहीं!
लोग मेरी बात को समझने में अड़चन तो पाएंगे धर्मानंद। यह बिल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि मैं जो बात कह रहा हूं वह उनकी बंधी बंधायी धारणाओं के अनुकूल नहीं है। हो भी नहीं सकती उनकी बंधी धारणाओं के अनुकूल। मेरी मजबूरी है, मैं वही कह सकता हूं जिसे मैं सत्य की तरह अनुभव करता हूं। उनकी मजबूरी है, वे उसी को सत्य मान सकते हैं जिसका सदा से सत्य मानते रहे हैं- सत्य हो या न हो। मैं झुक सकता नहीं, क्योंकि सत्य मेरा अपना अनुभव है, कोई उधार बात नहीं। मैं उसमें कोई समझौता कर सकता नहीं। मैं अपनी बात ही कहूंगा। लाख तरकीब से कोई मुझसे पूछे, मैं वही कहूंगा। जिनमें हिम्मत होगी, वे थोड़े से लोग अपनी पुरानी लकीरों को छोड़ कर मेरे साथ चलने को राजी होंगे। मेरी बात पृथक-जनों के लिए नहीं है, हो नहीं सकती। केवल थोड़े से आर्य जन!
इसलिए बुद्ध निरंतर कहते थे कि जो आर्य हैं-आर्य का मतलब, जो श्रेष्ठ हैं, जो बुद्धिमान हैं, जो सोच विचार में कुशल हैं, जिनके जीवन में प्रतिभा है, मेधा है-वे ही केवल समझ सकते हैं धर्म को। इसलिए बुद्ध ने अपने धर्म को आर्य-धर्म कहा है और अपने सत्यों को आर्य-सत्य कहा है। आर्य का अर्थ जाति से नहीं है। आर्य का अर्थ हैः प्रतिभाशाली लोग, वे चाहे कहीं पैदा हुए हों। तो जिनमें प्रतिभा है, वे आ रहे हैं सारी दुनिया के कोने-कोने से। वे आएंगे। यह स्थान काबा बनेगा। यहां लाखों लोग आएगे, मगर सिर्फ प्रतिभाशाली लोगों से ही मेरा संबंध हो सकता है। आम जनता को अड़चन रहेगी, कठिनाई रहेगी। और मैं इससे नाराज नहीं हूं। मैं उनकी मजबूरी समझता हूं। मैं उनका कष्ट समझता हूं। वे भी क्या करें! उनके सारे न्यस्त स्वार्थ, जिनसे बंधे हैं, अगर मेरी बातें मानें तो उनके हर न्यस्त स्वार्थ को धक्का पहुंचने वाला है। अगर मेरी बात मानें तो न तो वे हिंदू रह जाएंगे, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। अड़चन हो जाएगी।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः "आपकी बात हमें ठीक लगती है, मगर घर में दो बच्चियां हैं उनका विवाह करना है। पहले उनका विवाह कर लें एक दफा, फिर हम घोषणा कर देंगे कि हमें आपकी बात ठीक लगती है। क्योंकि अगर हमने अभी घोषणा की तो उनका विवाह करना मुश्किल हो जाएगा। फिर हमें लड़का मिलना मुश्किल है।"

ऐसा कुछ नहीं है लड़का मिलना मुश्किल है। कुछ लड़के यहां कम हैं? मगर लड़के के बाबत भी उनकी धारणाएं हैं कि अच्छी नौकरी पर होना चाहिए, बड़े ओहदे पर होना चाहिए, धन होना चाहिए, पद-प्रतिष्ठा होनी चाहिए, उन्हीं की जाति को होना चाहिए। एकदम बंधी हुई लकीरें हैं! कुछ मेरी बात ठीक भी लगती है तो बाकी चीजों में झंझट खड़ी होती है। और यहां तो उनको बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है।
एक जैन महिला यहां आयीं, बहुत दिन से मुझे लिखती थीं कि आना है आना है। मैं उनको टाल रहा था, क्योंकि उनको मैं जानता हूं, उनको यहां नहीं रूचेगा, नहीं पचेगा। और बात पहले दिन ही गड़बड़ हो गयी। वे पहले ही दिन भोजनालय में गयीं और जिससे मुलाकात हुई-वह थी राधा मोहम्मद। राधा मोहम्मद! उन्होंने फौरन मुझे चिट्ठी लिखी--"यह कैसा नाम है! यह स्त्री हिंदू है या मुसलमान?" मैंने कहाः "यह मुसलमान थी, अब तो नहीं है। थी, उसकी याददाश्त में मोहम्मद का नाम रख दिया है।"
उन्होंने कहाः "तो फिर यह स्थान मेरे लिए नहीं है। मैं यहां भोजन भी
नहीं कर सकती। फिर तो कुछ पक्का ही नहीं है कि कौन कौन है?"
उन्होंने कहाः "मैं तो बहुत हिम्मत करके आयी थी कि चलो न भी हुए जैन तो कम
कम िंहंदू ब्राह्मण तो बनाते होंगे भोजन। लेकिन राधा मुहम्म्द भोजन बना रही है!"
तो वे यहां एक दिन रहीं भूखी। स्वभावतः भूखी कितने दिन रहें, फिर चली गयीं। फिर से उन्होंने लिखना बंद कर दिया आना वगैरह। अब नहीं आती करतीं जातीं। अब चिट्ठी वगैरह भी उनकी बंद है।
बंधी हुई धारणाएं हैं, तो एक धारणा तुम छोड़ोगे तो तुम पाओगे और पच्चीस जाल उसमें उलझे हुए हैं। न मालूम किस किस तरह के जाल हैं। कोई धारणा अकेली नहीं है। हर धारणा के साथ हजार और धारणाएं हैं और उन सबके जाल जुड़े हुए हैं। अब यह तुम बर्दाश्त न कर सकोगे कि तुम्हारी लड़की और किसी मुसलमान से या किसी ईसाई से या किसी पारसी से विवाह कर ले। बस मुश्किल हो जाएगी, अड़चन हो जाएगी। न मुसलमान बर्दाश्त कर सकते हैं, न पारसी बर्दाश्त कर सकते हैं। तो मेरी बात ठीक भी लगे तो भी तुम्हारे खून में इस तरह की बातें घोली गयी हैं सदियों से, कि जब तक तुममें सच में ही साहस न हो रूपांतरित होने का और सब दांव पर लगा देने का, तब तक धर्मानंद, कोई उपाय नहीं है।
लेकिन साहसी लोग दुनिया में हैं। वे सदा रहे हैं। आखिर कुछ लोगों ने बुद्ध का साथ दिया और कुछ लोगों ने जीसस का साथ दिया, कुछ लोग नानक के साथ खड़े हुए, कुछ लोग कबीर के साथ भी खड़े हुए। वे कुछ लोग मेरे साथ भी खड़े होंगे। मगर ये कुछ लोगों की बातें हैं। धर्म सदा से कुछ लोगों की बातें रहा है, अधिक लोगों के लिए धर्म एक औपचारिकता है, एक सामाजिक शिष्टाचार है। जिनके लिए धर्म सामाजिक शिष्टाचार है, उनके लिए यहां कोई स्थान नहीं है। मेरा उनसे कोई संबंध नहीं हो सकता है। मैं उनके लिए नहीं हूं, वे मेरे लिए नहीं हैं।

तीसरा प्रश्नः ओशो, संन्यास लेने के बाद जो आनंद मिला है, उसे शब्दों में नहीं कह सकता। तीस साल के शराब और सिगरेट पीने की आदत सहसा समाप्त हो गयी है। नमाज नहीं पढ़ी जाती। शब्द ही भूल जाता हूं। और ध्यान की अवस्था आ जाती है। सत्य बोलने के लिए एक भीतरी शक्ति अनुभव होती है। झुठ बात अब निकलती ही नहीं। मैं आपका अनुगृहीत हूं!

आनंद मोहम्मद! यही तो ध्यान का जादू है, संन्यास का जादू है। जो इस जादू के जगत में उतरेगा वही अनुभव ले सकेंगा। एक तो चेष्टा करके शराब छोड़ी जाती है; उसका कोई मूल्य नहीं है। तुम चेष्टा करके शराब छोड़ सकते हो, मगर दमन होगा। और भीतर आकांक्षा जलती ही रहेगी, जलती ही रहेगी। और कोई न कोई उपाय खोजेगी, कोई न कोई बहाना निकालेगी। और शराब न पीओगे तो कुछ और पीओगे कोई न कोई परिपूरक चाहिए पड़ेगा। नशा तो तुम कुछ करोगे ही। तुम्हें कोई दूसरा नशा मिलेगा. तो ही तुम शराब छोड़ सकोगे। और फिर भी तुम्हारे भीतर

शराब पीने की आकांक्षा दबी पड़ी रहेगी। कभी भी अवसर मिल गया कि सब गड़बड़ हो जाएगी।
मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा था, क्योंकि वह बहुत ज्यादा शराब पीए हुए सड़क पर अल्ल-बल्ल बकता हुआ पकड़ा गया। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुमने इतनी शराब क्यों पी? नसरुद्दीन ने कहाः "गलत सत्संग के कारण।" मजिस्ट्रेट ने पूछाः "तुम्हारा क्या मतलब?"
उसने कहाः "हम चार आदमी थे और एक बोतल शराब थी। और तीन न पीने वाले थे।
और बोतल खोल ली, कार्क खो गया। सो मुझे पूरी पीनी पड़ी। उन तीनों को सजा मिलनी चाहिए हुजूर! अब कार्क खो जाए, इसमें मैं क्या करू? और तीनों नालायक ऐसे जिद्दी कि मैंने बहुत कहा, भाई बाट लो, मैं इतनी पी जाऊंगा तो झंझट खड़ी होगी। हो गयी झंझट खड़ी। औ सजा मुझे भुगतनी पड़ेगी और जिम्मेवार वे हैं। लेकिन अब कसम खाता हूं कि अब नहीं पीऊंगा। मगर बड़ी मजबूरी है कि मेरे घर और दफ्तर के बीच में ही शराबघर है। तो किसी तरह घर से कितना ही संकल्प करके चलता हूं, बस शराबघर तक पहुंचते-पहुंचते-पहुंचते संकल्प टूट जाता है। मगर अब आपको वचन देता हूं, भरी अदालत में वचन देता हूं, इस बार माफ किया जाए।" दूसरे दिन पूरा संकल्प करके, ढंग से नमाज पढ़कर, परमात्मा को खूब स्मरण करके मुल्ला नसरूद्दीन घर से निकला। बड़ी तेजी से कदम बढ़ाए उसने। पैर डगमगाने लगे थोड़े थोड़े, जैसे-जैसे शराबघर करीब आया, लेकिन उसने कहाः "कुछ हो जाए, अरे मैं भी मर्द बच्चा हूं, ऐसे झुकने वाला नहीं हूं!" शराबघर के सामने बिल्कुल लड़खड़ाया जा रहा था, मगर नहीं, हिम्मत करके निकल गया, नजर ही नहीं कि शराबघर की तरफ! दिल तो वहीं जा रहा था, आंख वहीं जा रही थीं। अंदर के कहकहे सुनाई पड़ रहे थे। लोग मस्त हो रहे थे। कोई गीत गा रहा था। कोई जाम हाथ में लिए बैठा था। भीतर के द्रश्य उसकी आंखों में दौड़ रहे थे। मगर उसने वह सब नजरअंदाज किया, बढ़ गया। सौ कदम आगे निकल गया। फिर अपनी पीठ ठोंकी और कहाः "बेटा नसरुद्दीन, गजब कर दिया तूने! अब आ! इस खुशी में आज हो जाए दावत!" और लौट कर दुगनी पी। जब खुशी में ही पीने गया... तो दबाओगे तो कभी न कभी, कहीं न कहीं से निकलने का रास्ता खोज लेगा। जो भी दबाया गया है, वह मार्ग खोजता रहेगा।
तुम देखते हो, तुम्हारे तथाकथित धार्मिक-उत्सव, गणेश उत्सव... और होता क्या है गणेश-उत्सव में? अश्लील, बेहूदे, नंगे नृत्य, भद्दे! मगर वे धर्म के नाम पर चल रहे हैं तो बिल्कुल ठीक। वह दबा हुआ पड़ा है, वह कहां से निकले? उस धर्म के नाम पर निकालना पड़ेगा।
तुम धार्मिक ढंग के कैलेंडर देखते हो? फिल्म अभिनेत्रियों को भी शर्म लगे। जिस ढंग से सीता मैया को बिठा देते हैं, शंकर-पार्वती! जरा तुम अपने कैलेंडर को तो देखो, मगर शंकर-पार्वती का कैलेंडर है तो सब ठीक है। अपने बैठकखाने में लटकाए हैं, कोई कुछ कह सकता है-शंकर पार्वती! मगर लटकाए किसलिए हो? यह पार्वती की शक्ल तो देखो, इनका ढंग तो देखो! कारण क्या है? कारण वही का वही है। अगर किसी अभिनेत्री का लटकाओगे तो लोग कहेंगे कि अरे, तुम जैसा धार्मिक और सज्जन आदमी, और अभिनेत्री का फोटो लटकाए हुए है! मगर पार्वती मैया, बिल्कुल ठीक! मगर पार्वती मैया अभिनेत्री को मात कर रही हैं। वे बनाने वाले कौन हैं, बेचने वाले कौन हैं, खरीदने वाले कौन हैं? धर्म के नाम से निकल आएगी बात।
तुम देखते हो, इन देश में होली के दिन क्या होता है! सज्जन से सज्जन लोग गालियां बक रहे हैं, दिल खोल कर बक रहे हैं। यह जरूर साल भर इकट्ठी करते होंगे, नहीं तो ये आती कहां से है? इनके भीतर पड़ी रहती हैं। यह निकास चाहिए। जैसे घर में से गंदगी निकालने के लिए नाली बनानी पड़ती है, ऐसे ही होती बनानी पड़ी। होली का तो बहाना है, मगर यह गंदगी हर साल निकालने के लिए जरूरत है। धार्मिक देश, देवता यहां पैदा होने को तरसते हैं--और तुम जरा होली पर रंग ढंग देखो यहां लोगों के! जैसी अभद्रता, जैसी बेहूदगी तुम यहां देखोगे, दुनिया में कहीं नहीं दिखाई पड़ेगी। होली जैसा बेहूदा त्योहार दुनिया में कहीं नहीं होता; हो ही नहीं सकता, क्योंकि इतने धार्मिक ही लोग कहीं नहीं। उसके लिए धार्मिक होना जरूरी है। धार्मिक होओगे तो दबाओगे, दबाओगे तो निकलेगा।

यहां जितने धक्के-मुक्के स्त्रियों को खाने पड़ते हैं, उतने दुनिया में कहीं नहीं खाने पड़ते। दुनिया में इतना धार्मिक मुल्क ही कोई नहीं। धार्मिक मुल्क हो तो स्त्रियों को धक्के लगेंगे ही। जहां जाएं वहीं ताने कसे जाएंगे, फिकरे कसे जाएंगे, कंकड़ मारे जाएंगे, धोती खींची जाएगी, कुहनी मारी जाएगी, जो भी मौका आ जाए, जो भी बन सके वह किया जाएगा। इस देश में स्त्रियों का सार्वजनिक स्थल पर जाना मुश्किल है।
और यह कोई आज की बात नहीं है, क्योंकि शास्त्र कहते हैंः "बचपन में पिता रक्षा करे।" किससे रक्षा करवा रहे हैं ये? "फिर जवानी में पति रक्षा करे। फिर बुढ़ापे में बेटा रक्षा करे।" बुढ़ापे में भी सुविधा नहीं है! हद हो गयी! मतलब-रक्षा कोई करे ही! रक्षा करने का मतलब? अगर कोई गड़बड़ न कर रहा होता तो रक्षा की जरूरत पड़ती? यह जिन शास्त्रों में लिखा है, बड़े प्राचीन हैं। तो यह काम कुछ नया नहीं है कि आज होने लगा। यह मत सोच लेना कि यह कलियुग आ गया। यह बड़ा सतयुगी काम है। पहले से ही चला आया। मगर रक्षा की जरूरत है-बुढ़ापे तक! और कारण? कारण इतना है कि दमन किए बैठे हो।
आनंद मोहम्मद, मैं दमन का विरोधी हूं, रूपांतरण का पक्षपाती हूं। और रूपांतरण की कामिया हैः ध्यान। जैसे-जैसे तुम शांत होओगे, वैसे एक क्रांति घटेगी।
आदमी शराब क्यों पीना चाहता है, सवाल यह है। सवाल यह नहीं है कि पीए या
न पीए, यह तो गौण बात है। क्यों पीना चाहता है? इसलिए पीना चाहता है कि जीवन में इतना दुख है, इतनी अशांति है, इतना तनाव है; उसे भुलाना चाहता है, उसे विस्मरण करना चाहता है। और कोई उपाय नहीं दिखता विस्मरण करने का। शराब पीकर थोड़ी देर को भूल जाता है, घड़ी दो घड़ी को भूल जाता है। वह भी नहीं चाहते तुम कि उसका मौका दो घड़ी दो घड़ी को भूल जाने के लिए। सो शराब भीन पीए। तुमने सताने का बिल्कुल पक्का ही कर रखा है। ऐसी जिंदगी में मुसीबत खड़ी कर दी है कि तनाव ही तनाव और कहीं थोड़ी सी राहत मिलने का मौका हो, तो पाप।
शराब आदमी इसलिए पीता है कि इतनी चिंता है, इतनी अशांति है, थोड़ी देर
को पी कर भूल-भाल जाता है, दुनिया भूल जाती है, खुद को भूल जाता है। चिंता- फिकर सब एक तरफ पड़ी रह जाती है। मिटती नहीं चिंता-फिकर; मगर भूल गए, यही क्या कम है! फिर देखेंगे कल जब होगा तब देखा जाएगा। चिंताएं वहीं खड़ी रहेगी, बढ़ जाएंगी कल, तक और, तो फिर थोड़ी और पीनी पड़ेगी, थोड़ी ज्यादा पीनी पड़ेगी, मात्रा बढ़ाती रहनी पड़ेगी। यह कोई हल नहीं है, समाधान नहीं है, मगर तात्कालिक रूप से राहत तो मिल जाती है।
ध्यान तुम्हारी अशांति को मिटा देगा, शराब पीने की जरूरत न रह जाएगी। ध्यान तुम्हारे तनाव को मिटा देगा, शराब पीने की जरूरत न रह जाएगी।
मैं नहीं कहता, शराब मत पीओ। मैं तो कहता हूंः ध्यान करो! उससे हम जड़
ही काट देंगे। और जड़ कट जाए तो शराब गिर जाएगी, अपने-आप गिर जाएगी।
अब तुम कहते होः "तीस साल से मैं शराब पीता था, सिगरेट पीता था।"
वे सब एक जैसी बातें हैं। कोई सिगरेट पी रहा है, कोई तंबाकू ही चबा रहा है, कोई पान चबा रहे हैं। और कुछ तुम्हीं कर रहे हो ऐसा नहीं है; शास्त्रों में वर्णन है कि स्वर्ग में देवी-देवता भी तांबूल चर्वण करते हैं। सो कुछ ऐसा नहीं कि तुम्हीं कर रहे हो, देवी-देवता भी यही काम कर रहे हैं। और तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी, संत-महंत गांता, भांग, अफीम ये सदियों से पीते रहे है; यह कोई नयी बात है? यह तो धार्मिक काम है।
इसलिए तो लोग कहते हैं कि मैं लोगों का धर्म बिगाड़ता हूं। ऐसे ऐसे धार्मिक काम तुम कर रहे थे, शराब तुम पी रहे थे, सिगरेट तुम पी रहे थे, अब मैंने सब गड़बड़ कर दिया आनंद मुहम्मद। और चूंकि अब तुम्हारी सिगरेट भी गयी और तुम्हारी शराब भी गयी तो तुम पंडित और मौलवियों के चक्कर से भी छूटे। अब वहां तुम किसलिए जाओगे? कोई जरूरत न रही। कोईप्रयोजन न रहा। उनके पास यही पूछने तो जाते थे कि हम इस उलझन से कैसे छूटें। और वे जो भी तरकीबें बताते थे, उनसे कुछ हल होता नहीं था। और तुम्हारी निंदा करते थे वे। उनका मजा इतना है कि तुम्हारी निंदा करें, तुम्हें नरक भेजने का वे इंतजाम करें। उनका रस ही इतना है। तुम अपराध भाव से भरे हुए जाते थे। अब तुम्हारा

कोई अपराध-भाव नहीं रहा। अब तुम शान से सीना फुलाकर चल सकते हो। इससे पंडित मौलावी नाराज होंगे। सारे पंड़ित, सारे मौलावी मुझसे नाराज हैं।
उनके लोगों को मैं बिगाड़ रहा हूं। उनकी धार्मिक आदतें छुड़वा रहा हूं। उन्हीं आदतों की वजह से तो वे पंडित पुजारी के चरण छूते हैं।
तुम कहते होः "तीस साल से शराब और सिगरेट पीने की आदत सहसा समाप्त हो गयी।" सहसा समाप्त हो तो ही मजा है, अनायास गिर जाए तो ही मजा है। प्रयास से गिरे तो खतरा है, फिर लौट सकती है। अपने-आप गिर जाए तो फिर लौटने का कोई उपाय नहीं।
तुम कहते होः "नमाज नहीं पढ़ी जाती।" जरूरत ही न रही। नमाज में है क्या? कुछ शब्द दोहराते। जिसको ध्यान आ गया, उसको निःशब्द आ गया; अब शब्दों में क्या रखा है? फिर शब्द चाहे कुरान के हों कि गीता के, क्या फर्क पड़ता है? शब्दशब्द हैं! निःशब्द का जिसको मजा आ गया, मौन का जिसको रस आ गया, अब उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं। उसकी प्रार्थना पूरी हो गयी। वह प्रार्थना की पराकाष्ठा पर पहुंच गया। नमाज हो गयी!
चुप हो जाना नमाज है। कुछ कहने से नमाज नहीं होती। सारी दुनिया में लोग नमाज कह रहे हैं और प्रार्थनाएं कर रहे हैं, परिणाम क्या है? यही नमाज पढ़ने वाले, यही प्रार्थनाएं करने वाले छूरे भोंकते हैं। इनकी नमाज, इनकी प्रार्थना मंदिर जलाती है, मसजिद जलाती है। इनकी नमाज, इनकी प्रार्थना से जमीन लहूलुहान हो गयी है। सारा इतिहास गंदा कर दिया इन्होंने। क्या इनकी नमाज है, क्या इनकी प्रार्थना है? इन्होंने पृथ्वी को नर्क बना दिया है। अच्छे-अच्छे शब्द बोलने से क्या होगा? यह तो तोतों को रटा दो तो वे भी राम-राम, राम-राम कहते रहते हैं। मगर तुम सोचते हो, तोता कोई स्वर्ग चला जाएगा? राम-राम कहने से! न तोता स्वर्ग जाने वाला है, न तोते की तरह रटत करने वाला कोई व्यक्ति स्वर्ग जाने वाला है।
नमाज से पार हो गयी बात अब।
ध्यान का अर्थ होता हैः शून्य, चुप हो जाना। क्या कहने को है? सन्नाटा होना चाहिए, मौन होना चाहिए। मौन में ही हम परमात्मा से जुड़ते हैं। परमात्मा कोईभाषा नहीं समझता-न अरबी, न संस्कृत, न लेटिन, न ग्रीक, न हीब्रू। परमात्मा कोईभाषा नहीं समझता। जमीन पर तीन हजार भाषाएं हैं। एक जमीन पर। वैज्ञानिक कहते हैंः "इस तरह की कम से कम पचास हजार जमीनें हैं।" तुम सोच लो, कितनी भाषाएं होंगी! परमात्मा कब का पगला जाता अगर इतनी भाषाएं समझे। उसकी खोपड़ी भनभना जाए। वह खुद ही शराब पीने लगा होगा। यह नमाज करने वालों से बचने के लिए, प्रार्थना करने वालों से बचने के लिए वह पीकर धुतपड़ा रहता होगा कि भैया करो, जितनी तुम्हें नमाज करनी हो करो, हम सुनते ही नहीं।
मेरे एक मित्र थे-डॉक्टर काटजू। वे मुख्यमंत्री थे मध्यप्रदेश के। बिल्कुल बहरे थे, यंत्र लगा कर ही सुनते थे। और जब भी कोई कुछ उनसे कहने जाए, वे फौरन अपना यंत्र निकाल कर रख देते थे और मुस्कुराते रहते थे। मैंने जब उनको कई बार यह करते देखा, मैंने उनसे पूछा कि यह यंत्र काहे के लिए है? उन्होंने कहा कि यह क्या इन गधों की बकवास सुनने के लिए है! ऐसे तो मेरी खोपड़ी खा जाएं। सुबह से शाम तक यही सुनना पड़ता है। मुख्यमंत्री हूं तो यही सुनना पड़ता है। इसकी शिकायत, उसकी शिकायत। बस मैं मुस्कुराता रहता हूं, हां-हां, हूं-हूं करता रहता हूं। और ये सब प्रसन्न चले जाते हैं। और मैं भी बचा, ये भी बचे। जब ये चले जाते हैं तब मैं फिर अपना यंत्र लगा लेता हूं। यंत्र तो मैं तभी लगाता हूं जब मुझे किसी से बात करनी हो। जब सुननी ही नहीं है तो क्यों यंत्र लगाना?
तो या तो परमात्मा बहरा हो चुका होगा, यंत्र उतार कर रख देता होगा कि बचो, अब ये आनंद मोहम्मद आ रहे नमाज पढ़ने, निकालो! अब तुम से नहीं डरेगा, आनंद मुहम्मद। अब तुम जब प्रार्थना में बैठोगे, पूजा में बैठोगे, नमाज में बैठोगे, तुमसे भयभीत नहीं होगा, यंत्र लगाए रहेगा। कोई फिकर नहीं, इस आदमी से डरने की कोई जरूरत नहीं। भला आदमी है, सज्जन है। न हिंदू है न मुसलमान-बिल्कुल सज्जन है! शून्य में रहोगे, मौन में रहोगे।

मौन ही एकमात्र भाषा है जो परमात्मा समझता है। और परमात्मा से कुछ कहना थोड़े ही है। परमात्मा से जुड़ना है, कहना क्या है? कहने को हमारे पास क्या है? लोग क्या कहते हैं परमात्मा से? वही क्षुद्र बातें मांगते हैं कि यह दे दो वह दे दो, ऐसा कर दो वैसा कर दो, ऐसा हो जाए वैसा हो जाए। अगर लोगों की प्रार्थनाएं तुम ठीक से समझो तो उनका मतलब यह होता है कि हम दो और दो चार रखें, लेकिन पांच हो जाएं। सारी प्रार्थनाओं का मतलब यह होता है कि दो और दो चार जोड़ें, लेकिन हो जाएं पांच। कि लॉटरी खुल जाए। कि इस बार नम्बर ही बता दो।
मेरी बहुत मुसीबत थी। जब भी मैं बंबई से वापिस लौटता था यात्राओं में,
तो बंबई से मेरी बहुत मुसीबत हो जाती थी। जैसे ही मैं अपने एयरकंडीशंड कमरे में घुसता, बंबई के सब मित्र छोड़ने आते, तो वे जो एयरकंडीशड के नौकर होते, वे देखते कि जब इतने लोग आए हुए हैं, कई सेठ मालूम पड़ते हैं, धनी मालूम पड़ते हैं, पैसे वाले मालूम पड़ते हैं, तो बाबा के पास जरूर कोई नुस्खा होना चाहिए। बस इधर गाड़ी चली कि वे मेरा पैर पकड़ लेते कि इस बार तो नंबर बताना ही पड़ेगा।
"कहां का नंबर?"
"अरे अब आपसे क्या कहना! आप सब समझते ही हो। इस बार तो नंबर हो ही जाए।
एक बार बता दो बस। एक बार लॉटरी खुल जाए तो फिर क्या कहना!" उनको मैं लाख समझाऊ कि मुझे नंबर वगैरह नहीं आता, तुम देखो मेरे पास जेब तक भी नहीं है, पैसा खुद मेरे पास नहीं है... वे कहतेः "हम मान ही नहीं सकते यह बात। नहीं तो उतने लोग क्यों आपको छोड़ने आए थे? और उनमे कई लोग पैसे वाले दिखाई पड़ते थे, कई सटोरिए थे, कई सेठ थे। जरूर किसी मतलब से आए थे। कोई न कोई बात होनी चाहिए।"
प्रार्थना में भी क्या करेंगे लोग-यही! नंबर बता दो। पत्नी की बीमारी ठीक कर दो। लड़के की नौकरी लगवा दो। कहोगे क्या? या उसकी प्रशंसा करोगे कि तू करूणावान है। वह उसको पता है। क्या तुम कह रहे हो? कि तू महान है! उसको मालूम है।
इससे तो अच्छा वह वकील था, जिसने प्रार्थना लिख कर रख छोड़ी थी अपने बिस्तर के पास। रोज रात को कंबल ओढ़ने के पहले कहताः "हे प्रभु, पढ़ लेना।" और लेट जाता। उससे भी पहुंचा हुआ एक और दूसरा वकील था। उसने इतनी भी झंझट नहीं की थी, कि पढ़ लेना। वह तो सिर्फ इतना ही कहताः "डिट्टो!" और बिस्तर के अंदर हो जाता। "कि वह जो एक दफा कही थी जिंदगी में, फिर अब क्या बार-बार उसी को करना। वही! फिर वही, फिर वही।" अब क्या रोज-रोज कहना कि हम पतित हैं और तुम पतितपावन हो। क्यों सिर खा रहे हो उसका?
आनंद मोहम्मद, अच्छा हुआ, अब नमाज नहीं पढ़ी जाती। शब्द भूल जाते हो, तुम कहते हो। ध्यान की अवस्था आ जाती है। यही नमाज है। यही असली नमाज है। "सत्य बोलने के लिए एक भीतरी शांति का अनुभव होता है।" बस तभी सत्य का मजा है। जब जबरदस्ती बोलो तो वह सत्य नहीं होता। उसमें भीतर झूठ दबा रहता है। जब सहज भाव से सत्य आए, जब सत्य सहज होता है, उसमें सौंदर्य होता है, अपूर्व सौंदर्य होता है! और वैसा सत्य मुक्तिदायी है। नहीं तो तुम लाख उपाय करके सत्य बोलने की कोशिश करो, तुम्हारे सत्य में कहीं न कहींझूठ छिपा रहता है।
कहते होः "अब झूठ बात निकलती नहीं। मैं आपका बहुत अनुगृहीत हूं।"
आनंद मोहम्मद, कोई अनुग्रह की जरूरत नहीं। यह मेरा मजा है, यह मेरा आनंद है कि जो मुझे मिला, तुम्हें बांटूं। अनुगृहीत भी होना हो तो मैं तुम्हारा अनुगृहीत हूं कि तुमने इतना साहस किया, तुमने इतनी हिम्मत जुटाई और मैंने जो कहा उसे समझने की कोशिश की। समझने की ही नहीं, करने की भी कोशिश की। मैं तुम्हारी कठिनाई समझता हूं। मुसलमानों के बीच जीना मेरे संन्यासी होकर कठिन मामला है--आग के बीच खड़े होना है! लेकिन तुम खरे साबित हुए हो। मैं आह्लादित हूं।

आखिरी सवालः ओशो, मैं विवाह कर रहा हूं, आपके आशीर्वाद चाहिए!

नरेंद्र सिंह! अवसर ही ऐसा है, आशीर्वाद जरूर चाहिए! ऐसी दुख की घड़ी में, ऐसे दुर्दिन में आशीर्वाद का ही सहारा है, और क्या है! और तो सब अंधकार ही अंधकार है। खतरे में उतर रहे हो, जरूर आशीर्वाद देता हूं। यह नहीं कह सकता, यह आश्वासन नहीं दे सकता कि मेरे आशीर्वाद कहां तक काम आएंगे। यह तो बहुत मुश्किल है, क्योंकि विवाह बड़े से बड़े आशीर्वादों को हरा देता है। यह विवाह तो यूं समझो एक तरह का मुम्हमद अली है। आशीर्वाद वगैरह तो बेचारे फूल जैसे हैं। यह तो मुक्केबाज है, यह तो फूलों को चकनाचूर कर दे। यह तो चट्टान है। मगर अगर तुमने तय ही कर लिया है खतरे में सिर डालने का, तो अब मूसल से क्या डरना! अब कुटो पिटो! मेरा आशीर्वाद, कि प्रभु तुम्हारी चमड़ी मजबूत करे! कि तुम में थोड़ी बहुत बुद्धि और शेष हो, वह भी छीन ले! क्योंकि बुद्धि रही तो मुश्किल होगी। यह तो ऐसा भवसागर है जिसमें दुर्बुद्धि पार होते हैं। दुर्बुद्धियों को आंच ही नहीं आती। वे तो सौ सौ जूते खाएं, तमाशा घुस कर देखें उनको कोई फिकर ही नहीं। ऐसी ही मजबूती तुमको परमात्मा दे! आशीर्वाद मेरा तुम्हारे साथ है।
और ऐसे खतरनाक समय में कौन नहीं तुम्हारे साथ सहानुभूति प्रकट करेगा! साधारणतः मैं आशीर्वाद देता नहीं, मगर इस समय मुझे भी देना पड़ेगा।
मैंने एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन से कहाः नसरुद्दीन, तुम्हारी बैठक में सिर्फ एक ही कैलेंडर है, वह भी तीस साल पुराना और एक ही तारीख पर अटका हुआ है। मामला क्या है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने गहरी श्वास ली और कहाः भगवान, यह हमारी शादी का साल है कैलेंडर का साल, और यह हमारी शादी की तारीख है जिस पर लाल मैंने निशान लगा दिया है। इसके बाद जैसे बस थम गया। फिर आगे कुछ हुआ ही नहीं। फिर तो हम कैसे जिंदा हैं, यह चमत्कार है! उसके बाद समय वगैरह सब समाप्त हो गया। अब तो यह समझिए कि यह मृत्यु-पश्चात जीवन है।
लोग पूछते हैं कि मरने के बाद आदमी बचता है कि नहीं? नसरुद्दीन कहने लगा कि मैं सबूत हूं इस बात कि बचता है। आत्मा अमर है! मुझको ही देख लो-- उसने कहा कि मरे तीस साल हो गए, मगर अभी भी जिंदा हूं! मर-मर कर नहीं मरा। सो ऐसे ही तुम्हें भी प्रभु अमर करे!
एक दिन मैंने मुल्ला नसरुद्दीन से कहाः बड़े मियां, रात के बारह बज रहे हैं, तुम्हारी बीबीजी अभी तक मार्केटिंग करके नहीं लौटी? दोपहर की गयी हैं। क्या बात है? कहीं कुछ दुर्घटना वगैरह तो नहीं हो गयी?
मुल्ला ने गहरी श्वास छोड़ते हुए कहाः नहीं जी, नहीं जी! मैं इतना खुशनसीब कहां!
एक मुशायरा चल रहा था और एक शायर ने गजल पढ़ी, जिसकी पहली लाइन थीः मैं ताज बना देता, मगर मुमताज नहीं मिलती। जैसे ही उसने यह पंक्ति पढ़ी, मुल्ला एकदम खड़ा हो गया और गुस्से से बोलाः मियां, खुशकिस्मत हो कि कुछ लेट हो गए, अगर कुछ दिन पहले आप तशरीफ ले आते तो मुमताज मिल सकती थी। लेकिन अब तो दुर्भाग्यवश मेरी उससे शादी हो चुकी है।
नरेंद्र सिंह, अब तय ही कर लिया है विवाह का, तो अब भागना मत। अब रणछोड़दास जी मत हो जाना। अब तो जूझ जाना, क्या पीछे लौट कर देखना!
ढब्बू जी अपनी प्रेमिका से पूछ रहे थे कि फिर तुम्हारे पिता ने क्या कहा, जब उन्हें यह पता चला कि मैं तुमसे शादी करना चाहता हूं। प्रेमिका बोलीः "वे तो बड़े खुश हुए और बोले कि हे भगवान, जिस गधे को मैं जिंदगी भर खोजता रहा, उसे तूने घर बैठे ही भेज दिया!
नरेंद्र सिंह, अब और तुमसे क्या कहें? अब यह सिंह वगैरह होना भूले। अब अपनी असलियत समझो। अब यह नाम मात्र रह जाएगा।
पिंजरे में दो चूहे फंसे थे। ढब्बू जी के बच्चे ने कुतूहलवश पूछाः पापा-पापा, इनमें मम्मी चूहा और पापा चूहा कौन है?
ढब्बू जी ने कहाः वह जो पूंछ हिला-हिला कर इधर से उधर मटक रही है, कूद-फांद कर रही है और बार-बार मुंह को दीवाल पर रगड़-रगड़ कर सफेदी लगा रही है, वह मम्मी चूहा है। और फिर गहरी श्वास लेकर--और जो मौन, चुपचाप, शांत एवं गंभीर मुद्रा में बैठा है, वह पापा चूहा है बेटे!

अब गए सिंह वगैरह होने के दिन। लद गए समझो। अब तो जो गुजरे सो सहना।
धीरज रखना। और परमात्मा तुम्हारा भला करे!

आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
छठवां प्रवचन

श्रद्धा यानी अंतर्यात्रा

पहला प्रश्नः ओशो, मैं धर्म करते-करते थक गया हूं; व्रत-उपवास, यम-नियम
सब कर देखे, पर पाया कुछ भी नहीं। अब क्या करूं, यह पूछने आपकी शरण आया हूं। दयानंद! धर्म करते-करते थक गये हो, लेकिन अभी करने से नहीं थके; अभी कुछ और करना चाहते हो। पूछ रहे हो कि "अब क्या करूं, यह पूछने आपकी शरण आया हूं।"
जब करने से थकोगे, तभी क्रांति घटित होगी।
धर्म कृत्य नहीं है, धर्म स्वभाव है। जो करने की बात होती तो तुमने कभी की कर ली होती। करने की बात ही नहीं है। इसमें न तो व्रत का कोई कसूर है, न उपवास का, न यम का, न नियम का। कसूर है तो इस भ्रांत धारणा का कि धर्म क्रिया है, कर्म है।
धर्म अक्रिया है, अकर्म है। धर्म है शून्य, स्वभाव में ठहर जाना।
कृत्य में तो आपा-धापी है, दौड़-धूप है। कृत्य तो अहंकार की प्रक्रिया है।
अहंकार जीता है करने से। अहंकार बिना किए नहीं जी सकता; कुछ करो तो जीएगा।
जितना करो उतना ज्यादा जीएगा। कुछ बड़ा करके दिखाओ तो अहंकार और बड़ा हो जाएगा। चपरासी हो तो छोटा अहंकार और राष्ट्रपति हो जाओ तो बड़ा अहंकार।
बड़ा कृत्य करके दिखा दिया! चपरासी तो कोई भी हो जाए। राष्ट्रपति तो साठ करोड़ में कोई एक हो पाए। गरीब हो तो छोटा है अहंकार; अमीर हो जाओ तो बड़ा अहंकार।
अहंकार जीता है करने से। इसीलिए अहंकार हमेशा आकांक्षा करता है कि यह करूं वह करूं, दुनिया को दिखा हूं कि मैं कुछ हूं, छोड़ जाऊं छाप इतिहास के पृष्ठों पर! छोटे-छोटे बच्चों के मन में हम जहर भरते हैं, कहते हैंः "कुछ करना कि इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण अक्षरों में तुम्हारा नाम लिखा जाए! कुछ करना ताकि तुम्हारे वंश का नाम जीवित रहे।"
यह नाम की धारणा अहंकार का ही दूसरा रूप है।
तुमने व्रत किए, मगर किसलिए? उपवास किए, किसलिए? तुम सोचते थे धर्म कर रहे हो। लेकिन धर्म का करने से कभी कोई संबंध ही नहीं रहा। धर्म तो ध्यान है और ध्यान कृत्य नहीं है। ध्यान है सारे कृत्य को छोड़ कर साक्षीभाव में विराजमान हो जाना। दौड़ना नहीं, बैठे रहना। चलना नहीं, ठहर जाना। बोलना नहीं, मौन हो जाना। शब्द नहीं, शून्य। विचार नहीं, निर्विचार।
तुम ध्यान की परिभाषाएं देखो, तो तुम सदा पाओगे वे नकारात्मक हैं। विचार-विधायक और ध्यान-निर्विचार, नकारात्मक। कृत्य-विधायक और ध्यान-अकृत्य। इस मौलिक बात को अगर समझ सको कि धर्म कहीं दूर होता तो हम पहुंच जाते चलकर। फिर जो जितनी तेजी से चलता उतनी जल्दी पहुंचता। फिर जो जितना फिर जिसका जितना बल होता, भीड़-भाड़ को चीर कर आगे निकल जाता, धक्के देकर क्यू में प्रथम हो जाता। लेकिन धर्म तो तुम्हारा स्वभाव है, दूर नहीं है। कहो कि पास है, तो भी कहना ठीक नहीं। क्योंकि पास कहने में भी दूरी ही पता चलती है। पास होना भी दूरी का ही एक नाता है। जिसका हम कहते हैं बहुत पास, उसका इतना ही अर्थ हुआ कि ज्यादा दूर नहीं है--पास।
धर्म तो तुम स्वयं हो, तुम्हारी निजता है। "पास" भी कहना ठीक नहीं। तो इसको, जो भीतर ही विराजमान है, कहां चले हो खोजने? किस वन-उपवन में? किस काबा में, किस काशी में?
व्रत में क्या करोगे? अपने ऊपर एक अनुशासन थोपोगे, एक जीवन की मर्यादा बनाओगे-इतने बजे उठना, इतने बजे सोना। मगर तुम कितने ही बजे उठो, तुम तो तुम ही रहोगे! तुम पांच बजे उठो सुबह ब्रह्ममुहूर्त में तो, और तुम दस बजे सुबह उठो तो-तुममें कुछ भेद नहीं पड़ेगा। क्या तुम सोचते हो, सुबह ब्रह्ममुहूर्त में उठ आओगे तो धर्म उपलब्ध हो जाएगा? तो सारे पशु-पक्षी ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं। तो ऋषि-मुनि कोई नया काम नहीं कर रहे, पशु- पक्षियों की जमात में सम्मिलित हो रहे हैं। यह तो आदमी की ही खूबी है कि सूरज चढ़ जाए और सोया रहे। यह तो कोई भी पशु कर लेगा, पक्षी कर लेगा। करना ही

पड़ेगा। करना ही पड़ेगा। सूरज ऊगा, कंबल है ही नहीं जिसको तान ले, चादर है ही नहीं जिसमें सिकुड़ जाए और एक करवट लेकर सो रहे। तुम भी उठ आए अगर सुबह जल्दी... !
और मैं यह नहीं कह रहा कि सुबह जल्दी मत उठना। उसके अलग लाभ हैं, लेकिन धर्म नहीं है। स्वास्थ अच्छा होगा, ताजी हवा मिलेगी। शायद तुम थोड़े दिन ज्यादा जिंदा रहो। लेकिन धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। ज्यादा दिन जीने वाला धार्मिक थोड़े ही हो जाता है। कम जीने वाला अधार्मिक थोड़े ही है। नहीं तो शंकराचार्य तैंतीस साल की उमर में मर गये-अधार्मिक! और कोई सौ साल जीए-तो धार्मिक। रामकृष्ण को कैंसर हुआ, तो अधार्मिक हो जाने चाहिए। और जिनको कैंसर नहीं हुआ, वे सब धार्मिक। रमण महर्षि को भी कैंसर हुआ। महावीर की मृत्यु पेचिश की बीमारी से हुई। बुद्ध की मृत्यु विषाक्त भोजन से हुई। बुद्ध तो निरन्तर बीमार रहते होंगे, क्योंकि किसी सम्राट ने अपना निजी चिकित्सक-जीवक, जो उस समय का सबसे प्रसिद्ध चिकित्सक था-उनकों भेंट दिया हुआ था। जीवक उनके साथ चलता था-सतत, ताकि उनकी देह की सदा सुरक्षा कर सके। ज्यादा जीने से कोई संबंध नहीं है। कम जीने से कुछ संबंध नहीं। न स्वस्थ होने से कोई संबंध है, न बीमार होने से कोई संबंध है। इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सुबह जल्दी मत उठना। उसके अपने लाभ हैं। पर इतना स्मरण रहे कि धर्म से उसका कुछ लेना-देना नहीं है।
जो व्यक्ति अनुशासन में जीता है उसके जीवन में एक सुडौलपन होता है, एक सौंदर्य होता है। उसके जीवन में एक व्यवस्था होती है। उसका जीवन अराजक नहीं होता। उसके जीवन में एक सुव्यवस्था होती हैं। जैसे कोई सजा-संवरा, साफ-सुथरा घर, ऐसा उसका जीवन होता है। इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपने जीवन को मर्यादा मत दो, कि उच्छृंखल होकर जीओ, कि अपने जीवन को अराजक बना लो, कि एक दिन सुबह भोजन करो, दूसरे दिन आधी रात भोजन करो, तीसरे दिन दोपहर भोजन करो, अपने को अस्त व्यस्त कर लो। यह मैं नहीं कह रहा हूं। मर्यादा शुभ है। उसके अपने लाभ हैं। पर धर्म नहीं। अनुशासन भी शुभ है। उससे तुम्हारे जीवन में बहुत से व्यर्थ के जाल कट जाएंगे। अनुशासनहीन जीवन व्यर्थ की उलझनों में पड़ जाता है।
तुम जरा गौर करो, तुम नामालूम कितनी बातें बोलते हो और उनको बोल कर तुम उलझनों में फंस जाते हो। झगड़े-झांसे हो जाते हैं। पीछे तुम पछताते हो कि न कहा होता तो भी चल जाता, मुझे बोलने की कोई जरूरत भी न थी।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन और उसके तीन साथियों ने तय किया
कि सात दिन का मौन रखें। गये, पहाड़ की एक गुफा में बैठे। द्दढ संकल्प करके गये थे। कोई पांच सात मिनिट ही बैठे होंगे कि पहले ने कहा कि मैं बड़ी उलझन में पड़ा हूं, पता नहीं बिजली घर की बुझा आया कि जलती छोड़ आया! और अब सात दिन यहां बैठना है, बिजली का बिल चढ़ जाएगा।
दूसरे ने उससे कहाः "अरे बुद्धू, यहां हम मौन होने के लिए आए हैं और तू बोल गया!"
तीसरे ने कहाः "नालायक तू भी है। अरे वह बोला था सो बोला था, तू क्यों बोला?"
मुल्ला नसरुद्दीन ने हाथ जोड़े आकाश की तरफ और यह कहाः "अल्लाह मियां,
एक मैं ही हूं जो अब तक चुप हूं।"
थोड़ा सा जीवन में अनुशासन उपयोगी है। अनुशासनहीनता एक तरह की विकृति है। उससे जीवन बेडौल हो जाता है, जीवन का संगीत खो जाता है। इसलिए मैं अनुशासन का विरोध नहीं कर रहा हूं; यद्यपि अनुशासन अपने ही भीतर से आना चाहिए, बाहर से आरोपित नहीं होना चाहिए। जिसे दूसरा तुम्हारे ऊपर थोप दे, वह अनुशासन नहीं है, वह तानाशाही है। जिसे तुम अपनी बुद्धि से, अपने विवेक से अपने जीवन को संवारने के लिए सोचो, निर्णय करो-वह शुभ है। एक दृढ़ता आएगी, एक प्रखरता आएगी। तुम्हारी तलवार पर धार आएगी। लेकिन धर्म नहीं। कभी कभी उपवास भी प्रीतिकर है, क्योंकि आदमी पेट से जरूरत से ज्यादा काम लेता रहता है। पेट के ऊपर जितना अनाचार आदमी करता है, उतना कोई और नहीं करता। पशु-पक्षी भी जब बीमार होते हैं तो भोजन बंद कर देते हैं। तुम लाख उपाय करो, तो भी भोजन नहीं लेंगे। तुम्हारा कुत्ता भी तुमसे ज्यादा

समझदार है। अगर उसकी तबियत ठीक नहीं होगी, बाहर जाएगा, घास खा लेगा और वमन कर देगा, ताकि पेट हलका हो जाए। क्योंकि जब देह रूग्ण है और पेट पर बोझ रखना देह पर दोहरा बोझ डालना है। एक बीमारी का बोझ, एक भोजन को पचाने का बोझ। अभी तो उचित है कि भोजन को पचाने से शरीर को छुटकारा दिला दिया जाए, ताकि शरीर बीमारी से निपट ले। इसलिए कभी-कभी उपवास सुन्दर है, कभी-कभी पेट को छुट्टी दे देनी उपयोगी है।
परमात्मा भी थक गया था-ईसाइयों की कहानी कहती है। छह दिन में दुनिया बनायी, सातवें दिन आराम किया। वह तो परमात्मा ने अच्छा किया कि सातवें दिन आराम किया, नहीं तो रविवार की छुट्टी असंभव थी। वह तो ईसाई ले आए, नहीं तो भारत में कहीं रविवार की छुट्टी होने वाली थी! सरी दुनिया में अगर ईसाइयों ने कोई अच्छी बात पहुंचायी, तो रविवार की छुट्टी। क्योंकि जब परमात्मा ही विश्राम करे तो फिर आदमी को तो विश्राम करना ही चाहिए।
तो कभी-कभी उपवास उपयोगी है। लेकिन उपवास कोई जीवन की शैली नहीं है।
तब तो तुम भूखे मरने लगे। तब तो तुमने एक तरह का आत्मघात चुन लिया। तब तो तुम अपने को सताने में मजा लेने लगे। तब तो तुम दुष्ट प्रकृति के हो, हिंसक हो। तुम्हारा उपवास तब अनाचार है-अपने ऊपर ही अनाचार है। इसलिए कोई रक्षा भी नहीं कर सकता। और मूक देह पर तुम वैसे ही बहुत अनाचार करते हो। इस अनाचार से कोई तुम धर्म को उपलब्ध हो जाओगे, ऐसा मत समझ लेना। हां, शरीर सूख जाएगा, कुम्हला जाएगा। शरीर के कुम्हला जाने से कोई आत्मा का कमल खिल जाता है, इस भ्रांति में मत पड़ना। इन दोनों का कोई अनिवार्य संबंध नहीं है।
तो तुमने जो भी किया, यम-नियम, व्रत-उपवास, सब अपना मूल्य रखते हैं- अपनी जगह। लेकिन जब तुम इनको धर्म का पर्यायवाची मान लेते हो दयानंद, तब भूल हो जाती है। ये धर्म के पर्यायवाची नहीं हैं। धर्म को तो सिर्फ एक ही पर्यायवाची है-वह ध्यान है। महावीर ने उसके लिए ठीक शब्द उपयोग किया- सामायिक। महावीर आत्मा को समय कहते हैं। सामायिक का अर्थ होता हैः आत्मा में ठहर जाना, आत्मा में डूब जाना। महावीर ने जैसा प्यारा शब्द उपयोग किया, ऐसा किसी और ने नहीं किया। पतंजलि कहते हैंः समाधि-जहां सब समस्याओं का समाधान हो जाए; जहां सब समस्याएं गिर जाएं; जहां तुम भूल ही जाओ कि कोई समस्या है। ऐसे शून्य, ऐसे मौन, ऐसे निर्विचार, ऐसे निर्विकल्प-तब ध्यान का अनुभव होगा।
दयानंद, कुछ तो तुम्हारी समझ में आया। तुम कहते होः "मैं धर्म करते- करते थक गया।" अच्छा हुआ, शुभ हुआ। धन्यभागी हो कि हम से कम धर्म करते-करते थक तो गये। कुछ मूढ़ तो ऐसे हैं कि करते ही चले जाते हैं, थकते ही नहीं। और अगर कुछ हाथ नहीं आता तो वे न मालूम कितने-कितने तर्क खोज लेते हैं कि क्यों हाथ नहीं आ रहा है। "पिछले जन्मों के कर्म बाधा डाल रहे हैं। जन्मों- जन्मों के कर्म बाधा डाल रहे हैं, इसलिए हाथ नहीं आ रहा है। और करो मेहनत, और करो श्रम!" रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश कर रहे हैं और सोच रहे हैं कि तेल इसलिए नहीं निकल रहा, क्योंकि पिछले जन्मों के कर्म बाधा डाल रहे हैं। रेत से तेल निकलेगा ही नहीं, चाहे पिछले जन्मों में शुभ कर्म किए हों और चाहे अशुभ कर्म किए हों। रेत में तेल पहले हो तो, तो निकले! निचोड़-निचोड़ कर तुम्हीं निचुड़ जाओगे। तुम्हारा ही तेल निकल जाए तो बात अलग। मगर रेत से तेल निकलने वाला नहीं है।
मगर लोग तर्कजाल फैला लेते हैं। और लोगों को अपने को समझाने के लिए समाधान भी तो चाहिए, सांत्वना भी तो चाहिए। तुम्हारे पंड़ित-पुरोहित इसीलिए हैं। तुम्हारे संत महात्मा इसीलिए हैं कि जब तुम थकने लगो, हारने लगो, तो वे तुम्हारी दीए की लौ को उकसाते रहें, उत्साह देते रहें कि बेटा, बढ़े चलो, चले चलो, अब ज्यादा दूर मंजिल नहीं है। वे तुमको धक्के देते रहे हैं और वे तुम्हें कारण बताते रहे हैं कि क्यों नहीं पहुंच रहे हो, चाहे तुम्हारी दिशा ही गलत क्यों न हो।
और धर्म की दिशा, सौ में निन्यानबे मौकों पर तुम जो भी कर रहे होते हो, गलत ही होती है। शायद सौ में एक ही मौका ऐसा होता है, जब धर्म की दिशा गलत नहीं होती। लेकिन वह घटना कृत्य से नहीं घटती। वह कभी-कभी, अनायास,

आकस्मिक घटती है। सांझ को सूर्य को डूबते हुए देखा और तुम तल्लीन हो गये- तुम ऐसे तल्लीन हो गये कि भूल ही गये, सब भूल गये! न स्मरण रहा अपना, न स्मरण रहा देह का, न चित्त में कोई और विचार रहे। बदलियों पर फैल गये ये सुखद रंग! सूरज का यह डूबता हुआ अनुठा रूप! यह सागर पर छा गयी सूरज की लालिमा! तुम एकदम अवाक रह गए-आश्चर्यविमुग्ध! क्षण भर को जैसे सब ठहरा, समय ठहरा और एक झलक मिली-आनंद की, सौंदर्य की, काव्य की! यह झलक तुम्हारे भीतर से आती है। मगर तुम सोचते हो कि यह सूर्यास्त के कारण मिल रही है। यह झलक आयी इसलिए कि सब कृत्य बंद हो गया। कृत्य बंद हो गया तो धर्म की एक बूंद चू पड़ी। एक बूंद ही, लेकिन उसका स्वाद भी बड़ा मधुर है। एक बुंद अमृत भी काफी है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः अक्सर यह हो जाता है कि तुम्हारे त्यागी- तपस्वियों की बजाय कवि और चित्रकार और मुर्तिकार और संगीतकार धर्म के ज्यादा करीब होते हैं। तुम्हारे त्यागी-तपस्वियों को तो धर्म से कुछ संबंध दिखाई पड़ता नहीं। हां, कोई वीणा को बजाते-बजाते ऐसा लीन हो जाता है कि वीणा जैसे अपने से बजने लगती है। बजाने वाला मिट गया। कृत्य न रहा। वीणा अपने से बजने लगी। तब उस क्षण कुछ अनूठा घटता है। हालांकि वीणावादक यही समझेगा कि यह जो रस आया, यह संगीत का है। यह संगीत का नहीं हैं। उपनिशद ठीक कहते हैं, परमात्मा की एक ही परिभाषा की जा सकी है अब तकः रसो वै सः! वह रस-रूप है। जहां से भी रस बह जाए, समझ लेना कि वहां परमात्मा से संबंध हुआ। उसका रूप रस है। रस यानी एक मिठास-एक ऐसी मिठास जो रोएं-रोएं को भर जाती है; एक ऐसा स्वाद कि तुम नहा गये, कि तुम ताजे हो गये। मगर वीणावादक भूल करेगा। वह यही समझेगा कि वीणा के कारण हुआ। मूर्तिकार यही भूल करेगा; वह समझेगा कि मूर्ति बनाने के कारण हुआ। चित्रकार भूल करेगा। मगर भूल भी करें वे, निष्पत्ति उनकी गलत है। विचार से उन्होंने जो सोचा है, वह गलत है। लेकिन जो प्रतीति हुई थी, वह ठीक दिशा में थी। मगर त्यागी- तपस्वियों को तो कुछ भी नहीं मिलता। उनसे ज्यादा कोरे और खाली लोग खोजने मुश्किल हैं। वे बिल्कुल थोथे हैं। मगर तुम्हारा उनके लिए बड़ा सम्मान है। उतना ही उनका रस है। उनके अहंकार को तुमसे तृप्ति मिलती है। तुम सम्मान देते हो, उनके अहंकार को तृप्ति मिलती है। और इतना सस्ता अहंकार और किसी तरह से पाया नहीं जा सकता। धन कमाओ तो मेहनत करनी पड़ती है; आसान नहीं है। बड़ी प्रतिस्पर्धा है, गला-घोंट प्रतियोगिता है। लाखों लोग लगे हुए हैं, जूझना पड़ेगा। फिर भी कोई पक्का नहीं है कि जीत जाओ। सब जुए का खेल है। कभी कोई जीतता है। अधिक लोग तो हारते ही है। पद पाना है तो जी-जान लगाकर दौड़ना पड़ेगा। दीवानापन चाहिए, बिल्कुल पागलपन चाहिए। लेकिन त्यागी बनना हो तो कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। वहां कोई प्रतियोगी ही नहीं है। और धन कमाना हो या पद पर पहुंचना हो तो कुछ तो कुशलता चाहिए, कुछ तो गुणवत्ता चाहिए, कुछ तो बुद्धि चाहिए। त्याग करने के लिए कोई बुद्धि की आवश्कता है? उपवासे बैठे रहने के लिए कोई बुद्धि की आवश्कता है? निर्बुद्धि से निर्बुद्धि आदमी बैठ सकता है। सच तो यह है सिर्फ निर्बुद्धि ही बैठेगा। बुद्धिमान क्यों बैठेगा भूखा, किसलिए बैठेगा? बुद्धिमान क्यों अपने शरीर को सताएगा? निर्बुद्धि ही इस तरह के काम कर सकता है। उसकी चमड़ी बहुत मोटी होती है। लेकिन उसे सम्मान मिलेगा, सत्कार मिलेगा। जो धन वह कभी नहीं पा सकता था, वे ही धनी उसके चरणों में सिर झुकाएंगे। जो पद वह कभी नहीं पा सकता था, वे ही पद वाले उसके चरणों में सिर रखेंगे। उसके अहंकार को आनंद ही आनंद आ रहा है। मगर यह अहंकार का आनंद है। धर्म का इससे कुछ लेना देना नहीं है। दयानंद, एक बात तो तुम्हें समझ में आयी सो अच्छा हुआ, कि धर्म करते करते तुम थक गये। लेकिन एक और बात अगर समझ में आ जाए तो बिगड़ी बात अभी भी बन सकती है। अभी तुम करने से नहीं थके। अभी तुम फिर पूछ रहे हो कि "अब क्या करूं, यह पूछने आपकी शरण में आया हूं।" करने से भी थकना होगा। नहीं तो तुम यूं ही भटकते रहोगे। इस करने से उस करने में। उस करने से और करने में। तुम्हें बताने वाले मिल जाएंगे कि यह करो। हजार-हजार बातें बतायी जा सकती हैं करने के लिए।
लेकिन, यहां अगर तुम आ गये हो तो मैं तो "न करना" सिखाता हूं। यहां तो
जो भी आयोजन है वह "न करने" की दिशा में है। नाचते भी हैं लोग, गीत भी गाते

हैं, संगीत भी बजाते हैं-लेकिन सबका आयोजन उसी तरफ इशारे के लिए है। सारे तीर एक ही तरफ जा रहे हैं कि जल्दी ही तुम सीख सको कि बस खाली बैठ सको, बिना कुछ किए। राम-राम भी न जपना पड़े, क्योंकि वह भी बकवास है। धार्मिक बकवास समझ लो, मगर बकवास तो बकवास है। अगर कोई आदमी बैठ कर अंट-शंट कोई शब्द बके तो तुम उसको धार्मिक नहीं कहोगे। जैसे कोई आदमी बैठा कहे कोकाकोला, कोकाकोला, कोका-कोला, तो तुम कहोगे कि "तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है? होश से बातें करो! बंद करो यह बकवास!" लेकिन वही आदमी बैठ कर अगर कहे कि राम-राम-राम, तो अहा, धार्मिक काम कर रहा है! बात वही की वही है। कोकाकोला में भी उतने राम हैं जितने राम में, इससे ज्यादा नहीं; शायद थोड़े ज्यादा ही हों। थोड़ा रस तो है कोकाकोला में, राम में वह भी नहीं। पीओगे तो थोड़ी देर को तो कम से कम राहत मिलेगी। राम में तो कुछ भी नहीं है। यह तो तुम सूखी हड्डी चूस रहे हो। मगर राम-राम कोई कर रहा हो तो तुम्हें लगता है धार्मिक कार्य कर रहो है। यह कोई धार्मिक कार्य नहीं है।
कोई कार्य धार्मिक नहीं है, अगर मेरी बात तुम्हें समझ में आ सकती हो तो। बैठ रहना, चुप रहना। न प्रार्थना, न मंत्र, न जाप। वह अजपा स्थिति हो जहां कोई तरंग नहीं उठती चेतना में, जहां कोई आकांक्षा भी नहीं पाने की। फिर क्या घटेगा? थोड़ा सोचो! जहां कोई हलचल नहीं है, वहां तुम अपने में ही डूब जाओगे। डूब ही जाओगे। कुछ और बचा नहीं जाने को कहीं। भागने को कोई उपाय न रहा। तुम अपने में लीन हो जाओ। उस लीनता में, उस तल्लीनता में तुम्हें पहली दफा धर्म का अनुभव होगा।
दयानंद, अब करने की मत पूछो। अब तो "न करने" की बात समझो। फिर तुम्हारे भीतर जब "न करने" से धर्म का अनुभव हो जाए, तो मैं कोई अकर्मण्यता नहीं सिखा रहा हूं। फिर तुम्हारे जीवन में कृत्य हो सकता है, लेकिन उस कृत्य का पूरा का पूरा गुण बदल जाएगा। फिर तुम जो करोगे वह आनंद से करोगे-कुछ पाने के लिए नहीं, बल्की इसलिए कि कुछ पा लिया है। वह तुम्हारे भीतर के रस से झरेगा। तुम सक्रिय हो जाओगे, बहुत सक्रिय हो जाओगे। शायद पहले इतने सक्रिय कभी न रहे थे। लेकिन अब कृत्य की पूरी गुणवत्ता और होगी। अब इसका कोई लक्ष्य नहीं होगा। अब यह अपने-आप में आनंद होगा। अब तुम गीत गाओगे तो अपने में आनंद तुम वीणा बजाओगे तो अपने में आनंद। तुम ब्रह्ममुहूर्त में उठोगे तो अपने में आनंद। इसलिए नहीं कि इससे कुछ पाना है। तुम पाओगे कि यह अपने में ही आनंद है, पाना क्या है? फिर तुम अगर जाकर मंदिर में झुक रहोगे तो यह अपने में ही आनंद है; इसलिए नहीं कि कुछ पाने गये थे, कोई सौदा करने गये थे, कि परमात्मा को फुसलाने गये थे, कि उसकी खुशामद करने गये थे, कि उसकी स्तुति करने गये थे।
इस देश में रिश्वत को मिटाना मुश्किल पड़ रहा है और मुश्किल पड़ेगा, क्योंकि यह कार्य बहुत प्राचीन है और बहुत धार्मिक है। हम परमात्मा तक को रिश्वत देते रहे, तो आदमी की क्या बिसात! जब परमात्मा तक रिश्वत स्वीकार करता है, तो बेचारे छोटे-मोटे अफसर-पुलिसवाला, स्टेशन मास्टर, डिप्टी- कलेक्टर, इनकी क्या हैसियत! तुम तो हनुमान जी को दे आते हो रिश्वत, कि मेरे लड़के को पास करवा देना, एक नारियल चढ़ाऊंगा। और हनुमान जी भी खूब हैं, एक नारियल के पीछे तुम्हारे लड़के को पास भी करवा देते हैं! गजब के हनुमान जी हैं। और तुम कभी सोचते नहीं कि तुम क्या कह रहे हो।
तुम मंदिर जाओ, मस्जिद जाओ, गिरजा जाओ, गुरुद्वारा जाओ-मगर जाने का कारण एक कि कुछ पाना है। आनंद को उपलब्ध व्यक्ति भी जाएगा, लेकिन पाने नहीं, बांटने। उसके जीवन में करुणा होगी, प्रेम होगा, दया होगी। उसके जीवन में बहुत फूल खिलेंगे, लेकिन वे सारे फूल स्वान्तःसुखाय! वह अगर गुनगुनाएगा भी उपनिशद तो इसलिए नहीं कि कुछ पाना, बल्कि इसलिए कि उपनिशद के गुनगुनाने का मजा ही और! यह वाणी मधुर है, इसलिए। वह अगर धम्मपद को स्मरण करेगा तो इसलिए नहीं कि धम्मपद को स्मरण करने से भगवान बुद्ध प्रसन्न हो जाएंगे और जब प्रसन्न हो जाएंगे तो फिर कुछ काम बनेगा, कुछ काम सटेगा। नहीं उसे प्यारे लगते हैं वचन। अब तो उसका अनुभव भी यही है। बुद्ध इसी अनुभव को इतने सुंदर ढंग से कह सके हैं कि वह स्वयं कहने में असमर्थ है। उसके पास ऐसी वाणी नहीं, उसके पास ऐसे सुंदर शब्द नहीं। इसलिए उपनिशद

है, कुरान है, बाइबिल है, धम्मपद है, जिन-वचन हैं; लेकिन अब इनसे पाने की कोई आकांक्षा नहीं है। अगर अब परमात्मा भी उसको मिल जाए और कहे कि कुछ मांग लो, तो वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। वह कहेगाः "अब क्या मांगना है! जो मांगना था वह मिल चुका अब तो तुम्हें कुछ चाहिए हो तो मुझसे ले लो।"
और अभी तुम्हें परमात्मा तो क्या, अगर भूत-प्रेत भी मिल जाए, तो तुम उसी के पैर पर गिर पड़ोगे।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन को धंधे में नुकसान लग गया, दिवाला निकलने के करीब आ गया। तो गया कि कूद जाऊंगा नदी में। आधी रात का सन्नाटा, नदी के पुल पर कोई भी नहीं। बस वह कूदने को ही था कि किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा। लौट कर उसने देखा-ऐसी कुरूप स्त्री उसने अपने जीवन में नहीं देखी थी! सुन रखा था चुड़ैलें होती हैं, मगर देखी पहली दफा। एकदम घबड़ा गया। मौत से नहीं घबड़ा रहा था, चुड़ैल से घबड़ा गया। लेकिन चुड़ैल ने कहा... खिलखिला कर हंसी पहले तो। उसकी खिलखिलाहट नसरुद्दीन के प्राणों में ऐसे गयी जैसे कोई कटार चुभो दे। थर-थर कांपने लगा। कहा कि मुझे छोड़ो, मैं तो मरने जा रहा हूं। उसने कहाः "पहले मेरी सुनो। क्यों मरते हो? मैं तुम्हें तीन वरदान दे सकती हूं, अगर तुम मेरी एक इच्छा पूरी करो।"
नसरुद्दीन ने कहाः "वे कौन से तीन वरदान?"
कहाः "जो तू मांगे।" तो नसरुद्दीन ने कहाः "ठीक। तो पहला तो यह कि मेरा बकबेलेंस दस लाख का हो जाए।"
उसने कहाः "कल सुबह हो जाएगा। दूसरा बोल।"
उसने कहा कि दूसरा कि मैं जवान हो जाऊं फिर से।
उसने कहाः "सुबह, सूरज ऊगते ही अपना मुंह जाकर दर्पण में देख लेना। और तीसरा?"
उसने कहा कि मेरी पत्नी भी जवान हो जाए, नहीं तो मैं जवान हो गया, वह बूढ़ी रही तो और झंझट खड़ी होगी।
उसने कहाः "कल सुबह तू देखना। कोई अभिनेत्री तेरी पत्नी को मुकाबला न
कर सकेगी। सबको मात कर देगी। अब तू मेरी इच्छा पूरी कर।"
नसरुद्दीन ने कहाः "बोल, तेरी क्या इच्छा?"
तो उसने कहा कि आज रात मेरे साथ प्रेम कर। प्राण कंप गये। छाती की हड्डियां बजने लगीं। इस नर-कंकाल औरत से... पता नहीं सौ साल पुरानी है कि दो सौ साल पुरानी है कि तीन सौ साल पुरानी है, जिंदा है कि भूत-प्रेत है, कि क्या है कि क्या नहीं है... मगर आदमी लोभ में करने को क्या राजी न हो जाए! वे जो तीन मांगे पूरी करने वाली है, इसी शर्त पर करेगी। सोचा कि आंख बंद करके किसी तरह रात गुजार देंगे। अल्ला मियां का नाम ले-लेकर रात गुजार देंगे। अरे एक ही रात की तो बात है, फिर तो पांसा पलट ही जाएगा, सुबह दस लाख का बैंक-बैलेंस, जवान, जवान औरत, क्या कहने!
चल पड़ा। वह बुढ़िया ले गयी उसे अपने मकान पर। रात भर उस बुढ़िया ने सताया उसे। वह तो कहती थी प्रेम कर रही है, मगर नसरुद्दीन की तरफ से सताया ही जाना था। और नसरुद्दीन को भी प्रेम करना पड़ा उस बुढ़िया को। सुबह की राह देख रहा था और रात ऐसी लगे कि जैसे कटेगी ही नहीं, कि जैसे रात का अंत आने वाला नहीं है। बार-बार घड़ी की तरफ देखे, जैसे घड़ी भी आज धीमे-धीमे चल रही है। और उस स्त्री ने रात भर परेशान किया, निचोड़ कर रख दिया इस नसरुद्दीन को। बचा-खुचा दिवाला भी निकल गया। सुबह हुई। नसरुद्दीन उठा, वह बुढ़िया एकदम खिलखिला कर हंसने लगी। नसरुद्दीन ने पूछाः "तू क्यों हंसती है?" उसने कहाः "मैं इसलिए हंसती हूं... मुझे तुम पर बड़ी दया आती है। तुम्हारी कितनी उम्र?"
नसरुद्दीन ने कहाः "साठ साल।"
उस बुढ़िया ने कहाः "तुम सठिया गये। अरे साठ साल के हो गये और अभी भी तुम चुड़ैलनों में भरोसा करते हो और तुम सोचते हो कि चुड़ैलनें तुम्हारी इच्छाएं पूरी कर देंगी! अब भागो, घर जाओ!"
और उसने कहाः "बैंक बैलेंस? और दर्पण? और मेरी पत्नी?
उसने कहाः "अपने घर जाओ और मरना हो तो अब मर जाना। मगर तुम पर मुझे दया आती है कि तुम साठ साल के हो गये और अभी इस तरह की बातों में भरोसा करते हो

कि कोई चुड़ैलन मिल जाएगी और तुम्हारी सब इच्छाएं पूरी कर देगी। तुम निपट बुद्धू के बुद्धू रहे!"
मगर तब तक तो बहुत देर हो चुकी थी। लौट कर बुद्धू घर को आए, जान बची और लाखों पाए! अब तो मरने तक की आकांक्षा चली गयी कि अब मर कर भी क्या करना, अब मरने से भी बड़ा कष्ट रात भर देख लिया। नरक के दर्शन यहीं हो गये।
तुमको अगर चुड़ैलन भी मिल जाए, भूत-प्रेत भी मिल जाएं और कहें कि तुम्हारी इच्छा पूरी कर देंगे, तो तुम एकदम अपनी इच्छाओं को जाल फैला दोगे, फेहरिश्त खोल दोगे पूरी। लेकिन जिस व्यक्ति को धर्म का अनुभव हुआ है, वह धन्यवाद देगा परमात्मा को कि आपकी बड़ी कृपा, बड़ी अनुकंपा! लेकिन अब मुझे कुछ चाहिए नहीं। जो पाना था वह मेरे भीतर था। मैं दौड़ता रहा, इसलिए चूकता रहा। पाने की कोशिश करता रहा, इसलिए भटकता रहा। जब मैंने सब कोशिश छोड़ दी तो उसे अपने ही भीतर जान लिया, जी लिया, पा लिया। मैंने सब पा लिया। आपकी अनुकंपा है, धन्यवाद! अब मुझे कुछ और चाहिए नहीं। अपने को पा लिया तो सब पा लिया। अपने को जान लिया तो सब जान लिया। अपने को जीत लिया तो सारा अस्तित्व जीत लिया।
दयानंद, अब करने की बात छोड़ो। अब यहां अगर आ गये हो तो अपने पर दया करो, तुमने काफी कष्ट अपने को दे लिए। कहते होः "व्रत-उपवास, यम-नियम सब कर देखे, पर कुछ पाया नहीं।" वह तुम पाने की आकांक्षा से कर रहे थे, इसलिए गड़बड़ हो गयी। अब यहां तुम मिटना सीखो। पाना नहीं, खोना सीखो। शून्य होना सीखो। और तुम चकित हो जाओगे यह बात जान कर कि जिस दिन तुम शून्य होने में समर्थ हो, उसी दिन पूर्ण तुम्हारे भीतर उतर आता है। सब पा लिया जाता है, मिटने की तैयारी चाहिए! खोने की तैयारी चाहिए और सब मिल जाता है। और फिर तुम्हारे जीवन में व्रत भी होंगे, नियम भी होंगे, उपवास भी होंगे।
यही तो एक बहुत बड़ी अड़चन की बात बनी है। महावीर ने उपवास किए, इसलिए जैन मुनि उपवास कर रहे हैं। लेकिन बड़ी भ्रांति हो गयी। महावीर ने उपवास किए, क्योंकि उन्होंने धर्म का अनुभव किया। उस धर्म के अनुभव से उपवास में उन्हें आनंद आया। उपवास का अर्थ समझते हो? उपवास का अर्थ होता है-अपनी आत्मा के पास निवास। उपवास शब्द का अर्थ ही यही होता है-अपने पास होना। उसका मतलब अनशन नहीं होता। महावीर ने उपवास किया और जैन मुनि अनशन कर रहे हैं। उनको मैं उपवासी नहीं कहता। उपवास का अर्थ होता है। वे अपने पास आ गये, इतने पास आ गये, अपने में ऐसे लीन हो गये कि दिन आए और गये, वे अपनी मस्ती में ऐसे डूबे कि भूल ही गये! भूख भूल गयी, प्यास भूल गयी।
तुम्हें पता नहीं है, कभी-कभी जब तुम आनंदित होते हो तो भूख भी भूल जाती है, प्यास भी भूल जाती है। यह जान कर तुम चकित होओगे कि दुख में कभी भूख नहीं भूलती। इसलिए दूखी लोग ज्यादा खाते हैं और मोटे हो जाते हैं। यह दूखी लोगों का लक्षण है। कोई पशु मोटा नहीं दिखाई पड़ेगा। कोई पशु तुम्हें ऐसा नहीं दिखाई पड़ेगा कि नित्यानंद महाराज, कि अखंडानंद महाराज! कोई पशु ऐसा नहीं दिखाई पड़ेगा। अगर तुम हजार बारहसिंगों की कतार देखो तो तुम एक-सा पाओगे-एक-सा अनुपात उनकी देह का। क्या चमत्कार है! और तुम क्या सोचते हो ये कोई डंड-बैठक लगाते हैं, कि कोई योगासन वगैरह करते हैं, शीर्षासन वगैरह करते हैं, कि कोई पतंजलि के सूत्रों का अनुसरण कर रहे हैं। नहीं, ये दुखी नहीं हैं। यह आश्चर्य की बात है कि तुम्हारे तथाकथित महात्मागण या तो जैनियों के मुनि हैं, जो सूख कर हड्डी हो जाते हैं और या फिर हिन्दुओं के महात्मा हैं, जो फूलते ही चले जाते हैं।
नित्यानंद महाराज की तस्वीरे देखी? तस्वीर देखोगे तो चकित हो जाओगे।
और लोगों को तोंद होती है, अगर नित्यानंद को देखोगे तो तुमको पता चलेगा, यहां हालत बिल्कुल उल्टी है-इसमें तोंद को आदमी है! आदमी को तोंद, ऐसा तुम कह ही नहीं सकते। बस तोंद है, उसमें जरा-सा आदमी जुड़ा हुआ है। इधर ऊपर सिर लगा दिया, इधर दो टागें लगी दीं, दो हाथ लगा दिए, बाकी असलियत में तोंद है। यह दुखी आदमी का लक्षण है।
आज अमरीका में सबसे बड़ी जो समस्या है, वह है मोटापन। लोग एकमदम मोटे होते जा रहे हैं। कारण? बहुत दुख है, मानसिक दुख है। मनोवैज्ञानिक इस तथ्य पर पहुंचे हैं कि जो आदमी जितना मानसिक रूप से दुखी होता है, तनावग्रस्त

होता है, जितना अपने को खाली खाली अनुभव करता है, वह उतना ही भोजन से अपने को भर लेता है। भोजन से भरना अपने दुख को भुलाने का एक उपाय है। वह दिन भर बैठा कुछ न कुछ चबाता ही रहेगा। नहीं कुछ होगा तो पान ही चबाएगा, तम्बाकू चबाएगा, कुछ न कुछ खाता रहेगा। अमरीकन पांच दफा दिन में भोजन करते हैं। और बीच की तो बात छोड़ दें, पांच दफे के बीच में जो करते हैं उसका तो अलग ही हिसाब है। बस जरा ही मौका मिला उनका कि चले फ्रीज की तरफ।
एक महिला बहुत मोटी हो गयी थी। उसके डॉक्टर ने कहा कि तू एक काम कर, यह सुन्दर तस्वीरे ले जा। वह एक फिल्म अभिनेत्री की नग्न तस्वीर थी- सानुपातिक देह; सारे अंग जैसे होने चाहिए वैसे, अति सौष्ठव, अति सौन्दर्य! और कहा कि इस तस्वीर को तू अपने फ्रीज में लगा दे। तो जब भी तू खोलेगी और देखेगी इस तस्वीर को, तो तुझे याद आ जाएगा कि मत भोजन कर। ऐसा सुंदर तेरा भी रूप हो सकता है।
मनोवैज्ञानिकों के इस आधार पर अमरीका में अब तो... ! अभी मैं कुछ दो महीने पहले खबर पढ़ा कि फ्रीज बन गये हैं कि तुम दरवाजा खोलो, वे तत्क्षण तुमसे कहते हैंः "अपने पर दया करो! कुछ ख्याल रखो! क्या कर रहे हो, पुनर्विचार करो।" तुम आइस्क्रीम निकाल रहे हो और वे कह रहे हैंः "अपने पर दया करो। फिर एक बार सोच लो। पीछे, पछताओगे।" इस तरह के वचन बोल रहे हैं। यह इस घटना के पहले ही कहानी है।... तो उस महिला को बात जंची। उसने जाकर तस्वीर टांग ली अपने फ्रीज में और सच में इसका परिणाम हुआ। उसका वजन कम होने लगा, क्योंकि जब भी वह दरवाजा खोले... औरतों को तो एक-दूसरे से बड़ी ईर्ष्या होती है, तस्वीरों तक से ईर्ष्या हो जाती है, असली औरत होना जरूरी नहीं है। उसकी भारी ईर्ष्या होने लगी कि ऐसा ही करके दिखाऊंगी। जाकर कभी खोल भी ले दरवाजा, जो तस्वीर दिखाई पड़े, फौरन दरवाजा बंद कर दे कि नहीं, संयम रखना है। मगर एक बड़ी हैरानी हुईः वह तो दुबली होने लगी, पति उसका मोटा होने लगा! पत्नी ने कहा कि मामला क्या है। उसने कहाः "दुष्ट, जब से तूने वह फोटो टांगी है, तब से मुझे जब भी मौका मिलता है मैं फोटो देखने के लिए जाता हूं। और जब फोटो देखने गया तो सोचता हूं, थोड़ा आइस्क्रीम भी ले लो कि थोड़ा चलो भुट्टा ही निकाल लो एक। हटा वह तस्वीर, नहीं तो मैं मारा गया। तू तो दुबली हुई जा रही है और मेरी फांसी लगा दी। मुझे चैन ही नहीं मिलता। अखबार पढ़ रहा हूं, बीच-बीच में ख्याल आ जाता है कि जरा देख तो आऊं, क्या तस्वीर लायी है तू भी!
लोग खाली हैं, किसी भी तरह अपने को भर रह हैं। बैठे-बैठे चबाते रहते हैं। अमरीका में लोग कुछ नहीं तो गाद ही चबाते रहते हैं। मुंह चलता रहना चाहिए। मुंह नहीं चलता तो उनको बेचैनी होने लगती है कि अब क्या करें, यह एक तरह का मंत्रोच्चार है-गाद चबा रहे हैं। कोई पान चबा रहा है, कोई सिगरेट फूंक रहा है। धुआं ही बाहर भीतर ले जा रहे हैं। एक तरह का प्राणायाम समझो। जरा गंदे किस्म का, मूर्खतापूर्ण, मगर है प्राणायाम ही।
दुखी आदमी ज्यादा भोजन करते हैं। सुखी आदमी कम भोजन करते हैं, क्योंकि सुख से भरे होते हैं, सुख से लबालब होते हैं।
तुमने यह देखा कि महिलाओं के जैसे ही विवाह हो जाते हैं, उसके बाद वे मोटी होनी शुरू हो जाती हैं! जब तक विवाह नहीं होता तक तक उनके शरीर में एक ढंग होता है, लेकिन जैसे ही विवाह हुआ कि बस सब गड़बड़ होनी शुरू हो जाती है। चर्बी एकदम इकट्ठी होने लगती है। पता नहीं क्या इनको एकदम विवाह के बाद होता है! और लोग तो कहते हैं कि "विवाह होने के बाद फिर दोनों सुख से रहने लगे।" मगर बात में कुछ शक दिखायी पड़ता है। यह पत्नी जरूर दुखी है, यह कहे न कहे; क्योंकि बहुत सी बातें हम कहते नहीं; कहनी नहीं चाहिए, इसलिए नहीं कहते। दिखाते कुछ और हैं, होता कुछ और है।
स्त्रियां विवाह के बाद एकदम मोटी होने लगती हैं, स्थूल होने लगती हैं। उनका शरीर सौंदर्य खोने लगता है। थुलथुल देह हो जाती है उनकी। मैंने सुना, टुनटुन सवार थी एक बस में। आखिर बगल वाले आदमी ने कहा कि बाई, कब तक बर्दाश्त करूं, क्यों मुझे हुद्दे मार रही है? टुनटुन एकदम नाराज हो गयी। उसने कहाः "हुद्दे! हुद्दे नहीं। मार रही। क्या मैं श्वास लूं कि न लूं?"

अब टुनटुन श्वास लेगी तो हुद्दे तो लगेंगे ही।
महावीर ऐसे आनंद को उपलब्ध हुए कि बहुत दिन तक भूख का पता नहीं, प्यास
का पता नहीं। यह उपवास था। लेकिन नकलची तो कैसे उपवास करें! नकलचियों ने तो यह देखा, बाहर से देखा। नकलची की यह मुसीबत है, वह बाहर से ही देख सकता है, भीतर से तो देखे भी तो कैसे देखे! भीतर का तो दिखाई पड़ता भी नहीं। अंतर्तम तो छिपा रहता है, ओझल है। उसने बाहर से देखा कि महावी भोजन नहीं लेते; दिन गुजर जाते है, ओझल है। उसने बाहर से देखा कि महावीर भोजन नहीं लेते; दिन गुजर जाते हैं, भोजन नहीं लेते। तो शायद यही राज है इनका परमात्मा को पा लेने का। तो मैं भी भोजन न लूं, तो मैं भी पा लूंगा।
मगर यह राज नहीं था परमात्मा को पाने का। यह तो परमात्मा को पा लेने
की बाद की घटना है। तो ये बेचारे, आज पच्चीस सौ साल हो गये, ये नासमझ उपवास किए जा रहे हैं। यह उपवास है ही नहीं। यह शब्द गलत है इनके लिए। महावीर के लिए सही है। ये तो अनशन कर रहे हैं। और इसलिए तुम महावीर की देह में जो ताजगी देखोगे, वह इनकी देह में तो नहीं दिखाई पड़ेगी। ये तो दया-योग्य मालूम होते हैं। ये तो बड़े दीन-हीन मालूम होते हैं। क्योंकि भीतर तो कुछ आनंद है नहीं। भीतर तो दुख ही दुख है और दुख को किसी तरह भोजन से भर लेते हैं, वह भी रोक दिया। इनकी स्थिति तो त्रिशंकु की हो गयी-न इस संसार के रहे, न उस संसार के। ये तो बीच में लटक गये। ये तुम्हारे महात्मागण हैं!
व्रत भी आएगा, उपवास भी आएगा, यम-नियम भी आएंगे; मगर वे परिणाम हैं। वे ध्यान के सहज परिणाम हैं। ध्यानस्थ व्यक्ति उच्छृंखल नहीं होता, अराजक नहीं होता। उसके जीवन में बड़ी व्यवस्था होती है, नियोजन होता है। मगर नियोजन जबरदस्ती नहीं होता, आरोपित नहीं होता; सहज-स्फूर्त होता है, अनायास होता है। और स्वभावतः जब जबरदस्ती आरोपित नहीं होता, तो वैसा आदमी मतांध नहीं होता। कुछ ऐसी जि.द नहीं होती कि रोज ब्रह्ममुहूर्त में ही उठेगा, कि एक दिन बीमार है तो भी ब्रह्ममुहूर्त में उठेगा। वैसी भी कोई जरूरत नहीं। अगर बीमार है तो देर से भी उठ सकता है। उसके जीवन में सहज स्फुरणा होती है। वह अपने प्रतिपल की आवश्कता के अनुसार जीता है, चलता है। उसके भीतर एक दीया चल रहा है, जो उसके कदमों को रोशनी देता है, जो उसकी आंखों को स्पष्टता देता है। वह अपने ही प्रकाश में अपने जीवन को नियोजित करता है।
यहां कल ही मुझे दो लेख एक साथ मिले-संयोग की बात। एक तो हे जर्मनी की प्रसिद्ध पत्रिका "स्टर्न" में छपा लेख मेरे खिलाफ। जो कारण मेरे खिलाफ दिया है पत्रिका ने, वह यह है कि अडोल्फ हिटलर जैसा व्यक्ति हूं और मैंने संन्यासियों के ऊपर परिपूर्ण रूप से काबू पा लिया है। वे मेरे इशारे से चलते हैं, उठते हैं, बैठते है। उनकी अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं है।
इससे कोई झूठी बात नहीं हो सकती, क्योंकि मैं तो दिन भर अपने कमरे के बाहर भी नहीं निकलता। मैं इस आश्रम में भी कभी पूरा नहीं गया हूं। इस स्थान से लेकर अपने कमरे तक, इसके सिवाय मुझे दूसरा रास्ता मालूम नहीं है। इस आश्रम के दफ्तर में कभी नहीं गया हूं। इस आश्रम का हिसाब-किताब मुझे पता नहीं है। कौन क्या कर रहा है, यह मुझे मालूम नहीं है। अगर मुझे आंख बंद करके आंख पर पट्टी बांध कर एक जगह छोड़ दिया जाए और आंख की पट्टी खोल दी जाए, तो अपने कमरे तक पहुंचने में मुझे मुश्किल होगी। पूछना पड़ेगा कि भई मेरा कमरा कहां है! और "स्टर्न" को मुझे एडोल्फ हिटलर सिद्ध करने की पड़ी है, क्योंकि जर्मनी में एडोल्फ हिटलर से ऐसी घबड़ाहट बैठ गयी है कि किसी को भी अडोल्फ हिटलर सिद्ध कर दो, तो उससे घबड़ाहट बैठ जाए।
और साथ ही एक दूसरा लेख मिला। नासिक में किन्हीं सज्जन ने, मैं उन्हें जानता नहीं, नाम है-आचार्य शिवाजीराव भोंसले, उनका वक्तव्य छपा है। उन्होंने मेरे संबंध में कहा है कि यह व्यक्ति तो बहुत महान हैं, इनके विचार बहुत अद्भुत हैं, इनके पास सारी मनुष्यता को रूपांतरित करने का संदेश है। मगर इनके अनुयायी इनकी सुनते नहीं। और वे इनके सारे काम को खराब किए दे रहे हैं।
दोनों बातें झूठ हैं; क्योंकि न तो मैं कोई आरोपित कर रहा हूं किसी के ऊपर कुछ, इसलिए अडोल्फ हिटलर होने का तो सवाल ही नहीं है। और जब मैं आरोपित

ही नहीं कर रहा हूं तो संन्यासी नहीं सुनते, यह सवाल भी नहीं उठता। नहीं सुनने की बात तो तब उठे जब मैं उनसे कहू कि ऐसा करो और वे न करें। मैं तो किसी को कुछ कह नहीं रहा हूं कि ऐसा करो। मैं तो सिर्फ इतना ही निवेदन कर रहा हूं-यह भी निवेदन है, आदेश नहीं कि कुछ "न करने" से मैंने पाया है; तुम भी उस कुछ "न करने" की दिशा में डुबकी मारो। और फिर रोशनी तुम्हें जब मिल जाए, उसी रोशनी में चलना, ताकि तुम्हारा व्यक्तित्व न खो जाए, तुम्हारी स्वतंत्रता न खो जाए।
तो मैं कोई नियंत्रण कर ही नहीं रहा हूं-न तो एडोल्फ हिटलर जैसा और न किसी और जैसा। और जब नियंत्रण ही नहीं कर रहा हूं तो मेरी मानते नहीं संन्यासी, यह बात तो बिल्कुल गलत है। मनाने को कोई सवाल ही नहीं है। मैंने किसी को कभी कहा ही नहीं-कैसे उठो कैसे बैठो, कब उठो कब न उठो, क्या खाओ क्या पीओ। इस सब व्यर्थ की बकवास में मैं पड़ता नहीं हूं।
दयानंद, अगर तुम यहां आ गये हो तो "न करने" की कल सीखो; वही ध्यान है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, व्यक्ति के मर जाने पर क्यों सभी लोग प्रशंसा करते हैं? वे भी जो कि जीवन में जीवन भर उसकी निंदा करते रहे! इसका राज क्या है?

राज भारती! कुछ खास राज नहीं। बात सीधी-साफ है कि अब बेचारा मर ही गया,
अब मरे को क्या मारना! जब तक जिंदा था तब तक उसके पीछे पड़े थे। उससे स्पर्धा थी, संघर्ष था। अब मर ही गया, अब कोई स्पर्धा भी न रही, कोई संघर्ष भी न रहा। अब तो दुश्मन भी उसके संबंध में अच्छी बातें कहेंगे।
वोल्तेयर मरा-फ्रांस का बड़ा विचारक-और रूसो से उसका बड़ा विरोध था, जीवन भर दोनों में घमासान तर्क युद्ध छिड़ा रहा। दोनों सिद्ध करते रहे एक-दूसरे को मूढ़। जब वोल्तेयर मर गया तो किसी ने भाग कर रूसो को खबर दी कि सुना तुमने, प्रसन्न हो जाओ कि वोल्तेयर की मृत्यु हो गयी!
रूसो ने कहाः "ऐसा! आदमी वह महान था। अगर यह बात सच है कि वह मर गया, तो आदमी वह महान था। और अगर यह बात झूठ है तो मैं अपने शब्द वापिस लेता हूं। अगर जिंदा है तो टक्कर चलेगी। अगर मर ही गया तो अब मरे को क्या मारना! मुर्दे से कौन लड़े!"
लेकिन इसके पीछे लंबी कहानी है। खो गयी है कहानी। मुर्दो से लोग डरते हैं। भूत हो जाए, प्रेत हो जाए-कुछ तो होंगे ही। जो भी मर जाता है, उसको हम कहते हैं "स्वर्गीय" हो गये। हालांकि सौ में से निन्यानबे स्वर्गीय हो नहीं सकते, मगर हम किसी को नहीं कहते कि नारकीय हो गये। जो मरता है वही स्वर्गीय हो गया! प्रभु को प्यारा हो गया! प्रभु ने उसे इतना चाहा कि उठा लिया?
क्यों? सदियों पुराना एक भय है कि आदमी मर गया-भूत होगा, प्रेत होगा, सताए, परेशान करे। हम डरते हैं। हम भयभीत होते हैं। हम घबड़ाते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी दोनों बात कर रहे थे। पत्नी बीमार थी। मरणासन्न थी। पत्नी ने कहा कि नसरुद्दीन, एक करार करो कि अगर मैं तुमसे पहले मर जाऊ और अगर मैं बचू मरने के बाद, जैसा कि हिंदुओं का मानना है, तो मैं आऊंगी प्रमाण देने कि हां यह बात सच है। या तुम पहले मर जाओ तो तुम आना और मुझे प्रमाण देना यह बात सच है।
नसरुद्दीन घबड़ाया। यह तो मरणासन्न है, नसरुद्दीन को तो अभी मरना भी नहीं है। और यह बाई गजब की बातें कर रही है! नसरुद्दीन तो सोच रहा था दिल ही दिल में कि अब छूटे तब छूटे; यह कह रही है कि बाद में भी आकर प्रमाण देगी! ल्ेकिन अब उससे कुछ विवाद भी नहीं कर सकता, तो कहाः "अच्छी बात, मगर एक बात का ख्याल रखना कि दिन में आना, रात में मत आना। रात में मुझे वैसे ही डर लगता है। दूसरी बात, तुमको में यह भी बता दूं, रात में आओगी तो घर पर मैं तुम्हें मिलूंगा भी नहीं। मैं अकेला घर में सो भी नहीं सकता। मैं किसी दोस्त के घर सोऊगा। आओ तो दिन में आना, भरी दुपहरी में आना। प्रमाण मुझको ही मत देना, मोहल्ले वालों को भी मिल जाए, चार आदमियों के सामने देना। एकांत में प्रमाण मुझे नहीं चाहिए।

यह घबड़ाहट! तुम जरा सोचो, तुम्हारी पत्नी मर जाए और फिर आकर प्रमाण दे... जिंदगी भर प्रमाण दिए उसने और मर कर भी पीछा न छोड़े!
अक्सर हम जब भयभीत होते हैं तो हम भय को समादर में छिपाते हैं। तुम्हें यह पता है, खाते-बही तुम शुरू करते हो तो लिखते हो-श्री गणेशाय नमः! क्यों? तुमको शायद पता न हो कि गणेश बिल्कुल प्रारंभ में बहुत उपद्रवी थे, विघ्न कारक थे। कहीं भी कोई अच्छा काम हो रहा हो तो उनसे नहीं देखा जाता था। बिगाड़ खड़ा कर दें, उपद्रव मचा दें। यूं भी शिव जी के बेटे हैं, ले आते होंगे शिवाजी की बारात के कुछ और संगी-साथी। तो कहीं भी हू- हुल्लड़ मचा दें। घेराव डाल दें, हड़ताल करवा दें, कोई भी व्यवधान खड़ा कर दें। पुराने शास्त्रों में इस बात को उल्लेख है कि पहले वे व्यवधान और उपद्रव करने वाले देवता थे। अब ऐसे आदमी को क्या करो! एक ही उपाय है कि इनका पहले ही स्मरण कर लो कि भैया, आप भर कृपा करना! बाकी सबसे तो हम निपट लेंगे। तो श्री गणेशाय नमः इसलिए सबसे पहले। बड़े-बड़े देवता हो गये और बड़े- बड़े अवतारी पुरुष हो गये, किसी की फ्रिक नहीं; ये सूंडधारी गणेशजी, मगर इनको सबसे शुरू में लिखना पड़ता है-श्री गणेशाय नमः! क्योंकि अगर इनको नंबर दो पर रखो, उसी में नाराज हो जाएं। चले आएं, एकदम घुस आएं भीड़ में, उपद्रव करने लगें।
मैं स्कूल में कभी भी जिस क्लास में रहा वहीं कैप्टन बना दिया जाता था एकदम! क्योंकि शिक्षकों को एक बात पता चल गयी थी कि अगर मुझे कैप्टन नहीं बनाया तो मैं उपद्रव करूंगा। तो वे कहते-श्री गणेशाए नमः! मैं कैप्टन हो जाऊ तो उपद्रव कैसे करूं! मुझे दूसरे जो उपद्रव करें उनको रोकना पड़े। तो जिस क्लास में भी पढ़ा, वहां सारे स्कूल में यह खबर थी कि जिस क्लास में यह विद्यार्थी आए, इसको कैप्टन एकदम बना ही देना, यह उपद्रव मचाएगा।
तुम पूछ रहे हो कि व्यक्ति के मर जाने पर क्यों सभी लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। करनी पड़ती है। इसीलिए तो विवाह के अवसर पर लोग शुभकामना करते हैं, आशीर्वाद देते हैं बड़े बूढ़े हूए तो, समसामायिक हुए तो बधाइयां देते हैं, क्योंकि यह आदमी मर रहा है बेचारा! खतम! इति आ गयी इनकी। जैसे कहते हैं न, जब चींटी मरने को होती है तो उसके पंख ऊग आते हैंः इनका विवाह होने लगा, अब चींटी मरने के करीब आयी! अब आगे से इनका कोई भविष्य नहीं है। अब सब अंधकारपूर्ण है। अब कर लो जितनी भी बधाइयां वगैरह करनी हैं और जितनी भी शुभकामनाएं करनी हैं। अब इनको आखिरी विदाई दे दो कि भैया, आगे तुम जानो और भगवान जाने! इसीलिए तो तुम महात्माओं की, संतों की इतनी आवभगत करते हो-मर गये बेचारे! मरे-मराए लोग! चलती-फिरती लाशें! अब इनका सम्मान न करो तो क्या करो और! अब और करने योग्य कुछ बचा भी नहीं। जिंदा होते तो कुछ और भी कर सकते थे। अब तो इनके प्रति जितना भी समादर प्रगट कर सको, करो। अगर मुर्दो को यह पता चल जाए... ।
मैंने सुना है कि एक राजनेता मरा। लाखों की भीड़ इकट्ठी हुई। राजनेता था, भीड़ में उसकी सदा उत्सुकता थी। एकदम छाती पीट कर रोने लगी उसकी आत्मा। देख रही थी आत्मा एक झाड़ पर बैठ कर। एकदम छाती पीट कर रोने लगी। पुराने मरे एक राजनेता ने पूछा कि भई क्यों ऐसी छाती पीट रहे, क्या बात है? अरे खुश होओ, कितने लोग विदा करने आए!
"इसलिए तो रो रहा हूं कि अगर ये दुष्ट पहले ही बता देते कि इतना मेरे प्रति इनका प्रेम है, तो मरता ही क्यों? तब तो इनमें से किसी का पता न चला। अब आए हैं, जबकि मैं मर चुका। अरे जिन्दगी में आए होते तो मजा आ जाता। इसलिए छाती पीट कर रो रहा हूं कि अगर इतने लोग जिन्दगी में साथ होते तो प्रधानमंत्री हो गया होता। तब तो एम. एल. ए. तक होने में मुसीबत थी। खोजता फिरता था, लोग भागते फिरते थे। मै। पुकारता था, वे कहते थे काम है। और अब ये सब काम छोड़ कर चले आए हैं।"
बुजुर्ग राजनेता, जो पहले मर चुका था; वह हंसने लगा। उसने कहाः तुम समझे नहीं, ये सब खुशी मना रहे हैं। ये सब प्रसन्न हो रहे हैं कि चलो झंझट मिटी, एक और स्वर्गीय हुए! चलो इनको भी राजघाट पहुंचा दिया!
चंदूलाल उन दिनों बीमा-कंपनी के दफ्तर में काम किया करता था। काम तो
लग गया, बस अपने दफ्तर में बैठा बैठा सोया करता। दफ्तर के कर्मचारी

परेशान-न खुद काम करे, न दूसरों को काम करने दे। अपना पड़े-पड़े कुर्सी पर ही खर्राटे भरे। मैनेजर ने समझाया कि देखो चंदूलाल, तुम काम खुद तो करते नहीं और खर्राटे ऐसे लेते हो कि दूसरों को भी काम नहीं करने देते। आखिर यह कब तक चलेगा?
लेकिन जब बात सीमा के बहुत आगे बढ़ने लगी तो एक दिन मैनेजर ने उसे नौकरी से इस्तीफा दे देने के लिए कह दिया। चंदूलाल ने अपनी आदतों को सुधारने की बजाय इस्तीफा देना ही उचित समझा, सो उन्होंने इस्तीफा लिख कर दे दिया। दफ्तर के सारे लोगों ने देखा कि अब यह जा रहा है, तो क्यों न इसके जाने की खुशी में एक पार्टी का आयोजन कर दिया जाए। सो उसके जाने के उपलक्ष में एक पार्टी का आयोजन हुआ। सभी ने उसके विषय में कुछ न कुछ कहा। किसी ने कहा कि ऐसा साथी खोजना कठिन है, इसकी वजह से ही दफ्तर में कुछ रौनक थी। मैनेजर ने आंखों से आंसू टपकाते हुए कहा कि चंदूलाल, सच कहता हूं कि तुम्हीं इस दफ्तर की जान थे। तुम्हारे जाने से हम सबको बड़ा दुख हो रहा है।
तुम्हारे कारण ही दफ्तर की प्रतिष्ठा में चार चांद लग गये थे।
चंदूलाल तो यह सुन कर अपनी सीट से खड़ा हो गया और बोला कि ऐसी की तैसी
उस इस्तीफे की! अरे मुझे क्या पता था कि तुम सब मुझसे इतना प्रेम करते हो। अब मैं कहीं आने-जाने वाला नहीं।
वे तो जो मर गये हैं बेचारे, लौट नहीं सकते, नहीं तो तुम्हारी प्रशंसाएं सुन कर लौट आएं; वे कह दें कि ऐसी की तैसी मरने की। अब हमें नहीं मरना। जब इतने लोग हमारे पीछे दीवाने हैं। पत्नी ऐसा छाती पीट-पीट कर रो रही है, जिसने जिंदगी भर हमें छाती पिटवायी और रोआया। काश हमें पता होता कि यह इतना प्रेम हमें करती है! बेटे इस तरह रो रहे हैं, जो हमेशा जेब में हाथ डाले रखते थे और जितना झपट लें उस कोशिश में लगे रहते थे। मुहल्ले- पड़ोस के लोग तक दुख मना रहे हैं, जिनने हर तरह से सताया, मुकदमे चलाए, अदालतों में घसीटा। गांव के गुंडे बदमाश भी मरघट पर पहुंचाने आए हैं हजार काम छोड़ कर। काश, हमको यह पता होता कि ये लोग हमें इतनी मुहब्बत करते हैं, तो हम मरते ही क्यों!
अगर अ दमी के वश में हो तो तत्क्षण वापिस लौट आए, एकदम वापिस लौट आए। अगर लोग वापिस लौटने लगें, तो राज भारती, प्रशंसा बंद हो जाए। फिर कोई मरे की प्रशंसा न करे। फिर लोग डरें; अभी डरने का कोई कारण नहीं। अब मर ही गया, अब क्या बिगाड़ सकता है, करो प्रशंसा! और भय भी है कि कहीं मर कर सताए न, कहीं मर कर पीछा न करे, भूत-प्रेत न हो जाए। होना तो चाहिए भूत ही प्रेत, कोई देवी-देवता इतने तो दिखाई पड़ते नहीं कि इन लोगों में से देवी-देवता होते होंगे लोग। इनकी हरकतें जाहिर करती हैं कि ये कहां जाते होंगे।
जब चंदूलाल मरा तो सारे लोग उसे पहुंचाने गये, बड़ी भीड़-भाड़ थी। संयोग-वशातचंदूलाल की अर्थी आगे-आगे चली जा रही है, उस भीड़-भाड़ में अर्थी की धक्कम-धक्की में एक ट्रक भी जो कोयले से भरा हुआ था, वह भी फंस गया। वह भी उसी दिशा में जा रहा था, सो उसको भी अर्थी के पीछे चलना पड़ा। नसरुद्दीन अपने साथी से बोला कि हदहो गयी, यह तो मुझे पक्का पता था कि यह कहां जाएगा, मगर यह नहीं मैंने सोचा था कभी जिंदगी में कि अपने साथ ईंंधन भी ले जाना पड़ता है। नरक तो जाने ही वाला है यह, मगर यह ईंधन का ट्रक, यह एक नयी बात है! पहले भी आदमी मरते थे, नरक जाते थे। ईंधन वहीं मिलता था। अगर चूल्हा जलेगा और कढ़ाए चढ़ाए जाएंगे और उनमें तुम पकोड़ों की तरह तले जाओगे, मगर अपने साथ कोयला ले जाना, यह तो बात जंचती नहीं, कुछ, कि सताओ भी हमीं को और कोयला भी हम लेकर आएं!
नसरुद्दीन ने कहाः "इससे तो दिल बैठा जा रहा है। यह क्या बात हुई कि नरक की किमत भी खुद ही चुकाओ। आज पहली दफा नरक से घबड़ाहट हो रही है-वह कहने लगा-कि हम तो सोचते थे चले जाएंगे, उठाया मुहं चले जाएंगे, जो होगा देखा जाएगा।" लोग तो नरक ही जाएंगे-यह तुम्हें भी पता है-जिनका तुम कहते हो स्वर्गीय हो गये। लेकिन घबड़ाहट लगती है, डर लगता है-कहीं ये सताएं न, परेशान न करें।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मृतकों की, पितरों की पूजा का आधार ही यही है-भय, कि आप तो मर गये, हमें अभी जिंदा रहना है, जिंदा रहने देना, कृपा

रखना! तो यहां हिंदू हैं कि पितर-पक्ष मनाते हैं। कोई नहीं मिलता तो कौओं को ही भोजन करवाते हैं, कि भैया पहुंचा देना पितरों तक खबर, कि कृपा करना! हे पितर देवता, आप उसी तरफ रहना! अब चले ही गये तो अच्छा हुआ, इधर लौट मत आना। हम मजे में हैं। हमारी खोज-खबर लेने मत चले आना।
और कुछ राज नहीं है।
जीवन में तो निंदा की जाएगी, क्योंकि जीवन में अहंकार को चोट लगती है। किसी की प्रशंसा करना बड़ा कठिन काम है। अगर कोई तुमसे कहे कि फलां आदमी बहुत सुंदर बांसुरी बजाता है, तुम तत्क्षण बोलोगेः "अरे वह क्या बांसुरी बजाएगा-चोर उच्चका! वह बांसुरी बजाएगा! वह क्या बांसुरी बजाएगा? चार सौ बीस, वह बांसुरी बजाएगा! उसे हम सात पीढ़ी से जानते हैं। वह बांस भी बजा ले तो बहुत, बांसुरी क्या बजाएगा!" तुम्हें बर्दाश्त के बाहर है यह भी कहना कि वह बांसुरी सुंदर बजाता है। तुम जरूर कुछ न कुछ भूल-चूक निकाल लोगे। भूल-चूक निकालने में लोग इतने कुशल हैं, क्यों? क्योंकि भूल-चूक से तुम्हारा अहंकार तृप्त होता है। जितनी तुम दूसरों में भूल चूक निकाल सकते हो, उतना ही तुम्हें लगता है कि हम बड़े। बौर जितना तुम दूसरों में प्रशंसा के कारण देखोगे, उतना ही तुम्हें लगेगा हम छोटे। और अपने को कोई छोटा मानना चहता नहीं। अपने को कौन छोटा मानना चाहता है!
अरबी कहावत है कि परमात्मा भी खूब मजाक करता है। जब आदमियों को बना कर भेजता है तो हम आदमी के कान में कह देता है कि तुझ जैसा गजब का आदमी मैंने पहले कभी बनाया नहीं! बस वह भ्रांति हर आदमी अपने दिल ही दिल में लिए रहता है। कह तो सकते नहीं किसी से, क्योंकि कहो तो लोग कहेंगे-पागल हो, अहंकारी हो! छिपा कर रखना पड़ता है। लेकिन तरकीबों से कहना भी पड़ता है, क्योंकि बिल्कुल छिपा कर भी नहीं रख सकते। तो बड़ा मकान बना कर दिखलाना पड़ेगा, बड़ी सीढ़ियां चढ़कर बताना पड़ेगा-यश की, पद की, प्रतिष्ठा की, सफलता की-ताकि लोगों को सिद्ध हो जाए परोक्ष रूप से कि "हूं तो मैं गजब का! तुम क्या हो, दो कौड़ी के हो! तुम्हारी हैसियत क्या, बिसात क्या!"
इसीलिए हम जिन्दा में तो किसी की प्रशंसा कर सकते नहीं। प्रशंसा मुश्किल पड़ती है। वह हमारे अहंकार के विपरीत है। निंदा आसान है और निंदा करने के लिए हम क्या क्या नहीं कर सकते!
चंदूलाल का मकान नदी के किनारे था। जब चंदूलाल शादी करके घर आए तो कुछ दिनों बाद उन्होंने पाया कि उनकी नयी पत्नी बड़े ही क्रोध में है। उन्होंने पूछा कि बात क्या है। श्रीमती जी बोली कि मुहल्ले के कुछ उचक्के सामने ही नदी के घाट पर रोज नग्न स्नान किया करते हैं और एक दिन तो कलमुंहे बिल्कुल ही नंगे हुड़दंग मचा रहे थे, बिल्कुल मेरे सामने।
चंदूलाल ने खिड़की से देखा, कुछ दिखाई नहीं पड़ा। तो चंदूलाल ने कहाः "मुझे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।"
तो पत्नी ने कहाः "अरे स्टूल पर खड़े हो कर देखो! ऐसे कहीं दिखाई पड़ेगा?"
तो चंदूलाल स्टूल पर खड़े हुए। जब पत्नी कहे स्टूल पर खड़े होओ तो खड़े होना पड़े स्टूल पर, पत्नी कहे हाथी पर बैठो तो हाथी पर बैठना पड़े। पत्नी जो कहे वह पति को करना ही पड़े। यह तो शाश्वत नियम है। इसमें जो पति डगमगाया, वह मुश्किल में पड़ा। चढ़ कर स्टूल पर गौर से देखा, कोई लुच्चे-लफंगे नहीं थे, कोई उचक्के नहीं थे, मोहल्ले के लड़के-कोई होगा आठ साल का, कोई दस साल का। अब वे नंगे न नहाएं तो कया सूट-पैंट और टाई पहनकर नहाएं? टोप लगा कर और जूते पहनकर नहाएं? मगर अब पत्नी से क्या कहना! चंदूलाल ने कहाः "मैं जाता हूं, समझाता हूं।" जाकर लड़कों को समझाया कि भाई, यहां नग्न स्नान मत किया करो। मुझे कोई एतराज नहीं, मगर मेरी पत्नी मेरी जान खाती है। तुम जरा दूर को निकल गये। नदी तो बड़ी पड़ी है, जरा आधा मील नीचे। वहां दिल खोल कर नहाओ। वहां कोई मकान भी नहीं है। तो मैं ही नहीं परेशान, दूसरा भी कोई परेशान नहीं होगा।
थोड़ा ना-नुच के बाद लड़के मान गये। मगर दो-चार दिन के बाद श्रीमती जी बोलीं कि देखो, उन नालायकों ने फिर नग्न होकर नहाना शुरू कर दिया। चंदूलाल बोलेः "लेकिन अब तो वे दूर वाले घाट पर नहाते हैं, आधा मील नीचे!"

श्रीमती जी बोलींः "लेकिन दूरबीन लगा कर देखने पर तो वे वैसे के वैसे
ही पास दिखाई देते हैं।"
अब अगर देखने की ही जि.द कर रखी है तो स्टूल पर चढ़ो, दूरबीन लगाओ। फिर
तो बड़ी मुश्किल है। अहंकार जि.द किए बैठा है कि दूसरे में भूल-चूक निकालेंगे ही निकालेंगे। वह जीता ही इस पर है। और तब किसी के पर जाने पर एक पछतावा भी होता है, एक पश्चात्ताप, कि जिंदगी भर भूल चूक निकाली, अब किसी तरह से हिसाब-किताब ठीक कर लो। अब प्रशंसा कर दो, अब क्या बिगड़ता है! अब तो आदमी गया ही। अब अहंकार को कोई चोट लगती नहीं।
इसलिए जिन लोगों ने जीसस को सूली दी, वे ही यहूदी ईसाई बन गये। जिन यूनानियों ने सुकरात को जहर पिलाया वे ही यूनानी सदियों से सुकरात का गुणगान कर रहे हैं। जिन लोगों ने महावीर पर पत्थर फेंके, उनके कानों में खील ठोंके, वे ही लोग उनको भगवान कह रहे हैं। जिन्होंने बुद्ध को मार डालने के हजार तरह के उपाय किए, पागल हाथी छोड़ा, चट्टान गिरायी उनके ऊपर, और संभवतः जहर पिलाने की चेष्टा की, वे ही लोग अब उनको परमात्मा का अवतार मान रहे हैं। वे ही लोग! यह बड़ी हैरानी की बात लग सकती है, मगर हैरानी की कुछ भी नहीं पश्चात्ताप पकड़ता है।
जीसस को दुनिया में मानने वाले सर्वाधिक लोग हैं उसका कारण सूली है, जीसस नहीं। अगर जीसस को सूली न लगती तो इतनी बड़ी संख्या जीसस को मानती नहीं। सूली देकर जो पश्चात्ताप हुआ इस आदमी के मरने के बाद, इतने लोगों को अपराध-भाव अनुभव हुआ कि हमने यह क्या किया, करना नहीं था ऐसा-तो अब क्या करें? इससे विपरीत करो! ताकि रफा दफा हो जाए बात। और पता नहीं, कौन जाने यह ईश्वर का बेटा हो ही! और फिर आगे बदला ले! तो अब निपटारा कर ही लेना ठीक है। वे ही लोग ईसाई हो गये। ईसाई होकर उन्होंने कुछ ईसा ने जो कहा था उसका पालन किया हो ऐसा नहीं; सिर्फ नाम लेबिल बदल लिया। रहे तो वे वही के वही, आज भी वही के वही हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता।
महावीर के पीछे जो लोग चल रहे हैं, वे कौन लोग हैं? वे वही के वही लोग हैं। महावीर नग्न थे। तुम जरा सोच लो कि महावीर के नग्न रहने के साथ लोगों को कितनी अड़चन हुई। गांव-गांव से भगाए गये। लोग उनके पीछे कुत्ते लगा देते थे, ताकि उनको गांव में न टिकने दें। वे ही लोग अब महावीर की पूजा कर रहे हैं। लेकिन अगर कोई दूसरा व्यक्ति आज नग्न खड़ा हो जाए तो वे ही लोग उसकी निंदा करने को तत्पर हो जाएगे-वे ही लोग! हां, अगर महावीर की ही धारा में खड़ा हो और महावीर का ही अनुसरण करे और महावीर की ही लीक पर बिल्कुल लीक-लीक चले, लकीर-लकीर चले, तो सम्मान करेंगे। क्योंकि वह कुछ महावीर से भिन्न नहीं अपना अस्तित्व जाहिर कर रहा है।
तुम देखते हो, क्यों तीर्थंकर, पैगंबर अपनी जीवित अवस्था में अपमानित किए जाते हैं? मुहम्मद को लोगों ने जिंदगी में एक दिन शांति से न रहने दिया। और अब करोड़ों लोग स्मरण करते हैं। ये वे ही लोग हैं, जिन्होंने शांति से न रहने दिया। अब पश्चात्ताप कर रहे हैं। अब हाथ धो रहे हैं, लहू के दाग मिटाने की कोशिश कर रहे हैं। और ये दाग ऐसे नहीं हैं जो मिट जाएं। यह मजबूरी में, आत्मग्लानि में सम्मान चल रहा है। मगर मुर्दों का सम्मान करने में सुविधा है, क्योंकि मुर्दों के संबंध में तुम कहानियां गढ़ सकते हो, जिंदा आदमियों के संबंध कहानियां गढ़ता बहुत मुश्किल है।
महावीर के संबंध में क्या-क्या कहानियां लोगों ने नहीं गढ़ी। महावीर
के संबंध में पहली कहानी तो हुए थे एक ब्राह्मणी के गर्भ में; लेकिन जैन ब्राह्मणों के विरोध में रहे हैं, तो यह तो वे बरदाश्त कर नहीं सकते कि महावीर और ब्राह्मण घर में पैदा हों, तो पहली शल्य-क्रिया गर्भ बदलने की महावीर के लिए की गयी, कि देवता आए आकाश से और उन्होंने गर्भणी ब्राह्मणी का गर्भ निकाला क्षत्राणी के गर्भ में महावीर को रखा और क्षत्राणी का गर्भ निकाल कर ब्राह्मणी के गर्भ में बदल दिया। ऐसी देवताओं ने चार सौ बीसी की! तब महावीर क्षत्रिय के घर में पैदा हुए, क्योंकि तीर्थंंकर सदा ही क्षत्रिय होने चाहिए। महावीर के पहले तेईस तीर्थंकर हो चुके थे, वे सब क्षत्रिय ही होने चाहिए। अब यह थोथी कहानी गढ़नी पड़ी-सिर्फ ब्राह्मणों का अपमान करने के लिए, कि कहीं तीर्थंकर और ब्राह्मण-कुल में पैदा हो सकता है!

जैनों के चौबीस तीर्थंंकरों में एक महिला है-मल्लीबाई। लेकिन जैन उसे मल्लीबाई नहीं कहते, मल्लीनाथ कहते हैं। मैं जब छोटा था तो मैं भी यही समझता था कि मल्लीनाथ भी पुरुष हैं, नाथ से साफ होता है कि पुरुष हैं। यह तो बहुत बाद में मुझे समझ में आया कि मल्लीनाथ पुरुष नहीं थे, स्त्री थे। लेकिन कहानी को बदल लेना पड़ा जैनों को, क्योंक स्त्री पर्याय से तो मोक्ष हो ही नहीं सकता। जैसे ब्राह्मण कुल में तीर्थंकर पैदा नहीं होता, ऐसे ही स्त्री-पर्याय से मोक्ष नहीं होता। वह तो पुरुष पर्याय से ही मोक्ष होता है। सो दूसरा चमत्कार उन्होंने किया। यह वैज्ञानिक अब कर रहे हैं। यही तो हमारे शास्त्रों की खूबी है कि हम सब जो पहले कर चुके हैं, वह अब यह बेचारे तीन हजार साल बाद कर रहे हैं। हमने पहले ही स्त्री को ऑपरेशन करके पुरुष कर दिया। लिंग-परिवर्तन हम कब का कर चुके हैं! यह अब कर रहे हैं और समझते है समाचार है यह, कि कोई स्त्री को पुरुष बना दिया, कि किसी पुरुष को स्त्री बना दिया-विटामिन और हारमोन, इनकी बदलाहट से। यह तो हम बहुत पहले कर चुके। हमने मल्लीबाई को मल्लीनाथ बना दिया-सिर्फ एक धारणा को बचाए रखने के लिएः पुरुष का अहंकार।
मल्लीबाई को बहुत गालियां पड़ी होंगी-कई कारणों से। एक तो पुरुष नग्न
हो तो ही तुम दिक्कत दोगे और मल्लीबाई स्त्री थी और नग्न हुई होगी, तो समझ सकते हो कि कितनी तुमने दिक्कत न दी होगी। स्त्री और नग्न हो जाए, यह तो नारी की लज्जा गयी।
यह तो तुम्हारी नारी की धारणा ही नष्ट हो गयी। तो जिंदा में तो अपमान किया होगा। सब तरह से अपमान किया होगा। फिर मर जाने के बाद तुम पछताए होओंगे। तुमने फिर लीपा पोती की। फिर तुमने कहा कि अब कुछ हिसाब जमा लेना चाहिए। हिसाब सीधा-साफ था, जरा-सी तरकीब करनी थीः मल्लीबाई को मल्लीनाथ कर दो।
उन्नीस सौ बावन में हिमालय में नील गाय पायी जाती थी। उसकी संख्या बहुत बढ़ गयी और वह खेतों में बहुत उपद्रव करने लगी। संसंद में सवाल उठा कि इसको गोलियां मार दी जाएं, इसकी हत्या की जाए, यह खेतों को बर्बाद कर देगी। यह उत्पात बहुत बढ़ गया है। इसकी संख्या रोज बढ़ती जा रही है। मगर सवाल यह था कि अगर नील गाय को मारा... हालांकि नील-गाय गाय नहीं है, सिर्फ नाममात्र को गाय है; लेकिन अगर "गाय" शब्द भी रहा उसमें तो हिंदू उपद्रव खड़ा कर देंगे। और फौरन विरोध शुरू हो गया, कि गाय की हत्या नहीं कि जा सकती। "गऊमाता"! शब्द ही काफी है। लोग शब्दों से जीते हैं। तो तुम्हें पता है, संसद ने क्या तरकीब निकाली। उन्होंने उसका नाम रख दियाः नील-घोड़ा। फिर गोली मार कर खत्म कर दिया। नील घोड़े को मारने में किसको तकलीफ है? किसी हिंदू ने एतराज नहीं उठाया, नील घोड़े को मारना हो मारो; नील-गाय को भर मत मारना! वही गाय गरीब घोड़ा होकर मारी गयी। लोग शब्दों से जीते हैं।
वही मल्लीबाई मल्लीनाथ होकर पूजी गयी। मल्लीबाई होकर उसको सताया गया, परेशान किया गया, हैरान किया गया। लेकिन जब ये लोग मर जाएं तो फिर कहानियां गढ़नी आसान हो जाती है।
महावीर के संबंध में कहानियां हैं कि उनको पसीना नहीं निकलता। तीर्थंकरों को पसीना नहीं निकलता। क्या पागलपन की बात है! कोई प्लास्टिक के बने होते हैं? कुछ होश की बात करो। तीर्थंकरों को तो और ज्यादा निकलता होगा, क्योंकि नंग-धड़ग रहेंगे, धूप-धाप में घूमेंगे... । और अधिक तीर्थकर उत्तर भारत में हुए। महावीर खुद बिहार में हुए जहां सूरज आग की तरह बरसता है। वहां पसीना न निकले!
और फिर जैनों की धारणा है कि तीर्थंंकर स्नान नहीं करते। स्नान की जरूरत ही नहीं। जब पसीना ही नहीं निकलता तो स्नान की क्या जरूरत है? यह तो साधारण आदमियों का काम है स्नान वगैरह करना। तीर्थंकर को पसीना ही नहीं निकलता। तीर्थंकर जब जिंदा रहे होंगे, तब यह कहानी गढ़नी मुश्किल थी, क्योंकि प्रत्यक्ष सामने लोग जाकर देख लेंगे, फिर? हां, जब मर गये तब तुम कहानी गढ़ सकते हो। अब तुम्हारे हाथ में है। अब कुछ भी करो तुम।
कहते हैं, सांप ने काट खाया महावीर को तो दूध की धार बही।

मैं एक जैन सभा में बोल रहा था। मुझसे पहले एक जैन मुनि, चित्रभानु बोले। उन्होंने कहा कि "यह बिल्कुल वैज्ञानिक है।" विज्ञान की अभी प्रतिष्ठा है, इसलिए हर तरह की मूढ़तापूर्ण बात को वैज्ञानिक सिद्ध करने की कोशिश चलती है। विज्ञान की प्रतिष्ठा है, साख है; इसलिए किसी भी चीज़ को वैज्ञानिक सिद्ध करने की चेष्टा होती है। हर चीज को! लेकिन मानने वाले को दिखाई नहीं पड़ेगा कि ये मूर्खतापूर्ण बाते हैं। जो नहीं मानता, उसको साफ दिखाई पड़ जाएगी कि यह क्या पागलपन की बात कर रहे हो! और उन्होंने क्या वैज्ञानिक उल्लेख किया, तालियां पिट गयीं। जैन तो बिल्कुल बाग-बाग हो गये, हृदय गद्गदहो गया! स्त्रियों की आंखों से आंसू बहने लगे, कि मुनि महाराज क्या गजब की बात कह रहे हैं!
और मैंने कहा कि यह कहां के मूर्खों के बीच में फंस गया! वे क्या समझा रहे थे, वे कह रहे थे कि जब स्त्री के स्तन से दूध निकल सकता है, तो स्तन भी आखिर है तो शरीर का ही हिस्सा। जब स्तन में से दूध निकल सकता है तो पैर में से क्यों नहीं निकल सकता?
मैं उनके पीछे बोला। मैंने कहा कि यह बात तो बड़े पते की बता रहे हैं। अंधे को अंधेरे में बड़ी दूर की सूझी! इसका मतलब यह हुआ कि महावीर के पैर में स्तन था। और पैर में ही नहीं रहा होगा, क्योंकि क्या पता सांप कहां काटे, सारे शरीर पर स्तन रहे होंगे। अगर आज होते तो गजब हो जाता। हर फिल्म में मांग होती। जहां जाते भीड़ लग जाती-स्तन ही स्तन! और चाहिए ही क्या!
और स्तन में कुछ ऐसे ही दूध नहीं आ जाता। स्तन में पूरा यंत्र है खून
को दूध में रूपांतरित करने का। वह यंत्र पैर में होना चाहिए, तो ही दूध बन सकता है। ऐसा कोई दूध भरा हुआ नहीं है भीतर स्तन में। कोई डब्बा नहीं है स्तन कि उसके भीतर दूध भरा है कि दबा दिया कि पिचकारी निकल गयी दूध की! वहां यंत्र है। नहीं तो पुरुष ही दूध पिलाने लगें न फिर! स्तन तो पुरुषों के पास भी है। छोटे-मोटे सही... तो छोटे-छोटे इल्ले-पिल्लों को पिलाएं, कोई बात नहीं, बड़े-बड़ों को न सही। मगर यंत्र नहीं है।
और अगर तुम यह समझते हो कि महावीर के शरीर में दूध ही दूध भरा था तो सांप ने जब काटा तब तक दूध कभी का दही हो गया होता। और ऐसी बास उठती दही की, सड़ गया होता दही, कि सांप की हिम्मत ही न पड़ती पास आने की। सांप तो सांप, पशु-पक्षी, आदमी सब एकदम भागते। जहां महावीर पहुंच जाते वही एकदम तहलका मच जाता, जैसे प्रलय आ गयी हो!
लेकिन इसको वैज्ञानिक कह कर समझाया जा रहा है। बात कुल कविता की है, विज्ञान क्या है इसमें? बात काव्य की है, प्रीतिकर है। इतनी ही बात कही जा रही है कि महावीर को तुम चोट भी करो तो उनसे प्रेम ही निकलता है, बस इतनी ही बात कहने की है। उनका तुम अपमान भी करो तो भी उनके भीतर से करूणा ही बहती है, बस इतनी ही बात कहनी है। इसको प्रतीक कहने का है।
लेकिन पीछे कहानियां गढ़ी जाती हैं। तो फिर उनमें कुछ हिसाब रखने की जरूरत नहीं रह जाती। जो मौज आए, जैसी कहानी गढ़नी हो वैसी कहानी गढ़ लो! जीसस को पानी पर चलाओ, मोज.ेज से समुद्र कटवा दो। समुद्र दो हिस्सों में कट कर खड़ा हो गया और उनके मोजेज़ और यहूदी उनके पीछे निकल गये। जिंदा आदमी तो ये सब काम नहीं कर सकता तो जिंदा आदमी की तुम प्रशंसा कैसे करो? इसलिए जिंदा पैगंबर तो इनकारे जाते हैं, अस्वीकारे जाते हैं। और मर जाने के बाद पश्चात्ताप में, ग्लानि में, अपराध में तूम कहानियां गढ़नी शुरू कर देते हो। फिर उन्हीं कहानियों को लोग पूजते हैं। फिर उन्हीं कहानियों को लोग मानते हैं। फिर उन्हीं कहानियों के आधार पर और कहानियां गढ़ते चले जाते हैं। फिर धीरे धीरे असली आदमी तो खो ही जाता है, एक नकली आदमी बन कर खड़ा हो जाता है-बिल्कुल झूठा आदमी।
अब जीसस क्वांरी बेटी से पैदा हुए, यह और गजब की बात! वह ऑपरेशन भी कुछ इतना गजब का नहीं था जो महावीर के लिए किया गया। क्वांरी कन्या से पैदा होना... बड़ा कठिन काम किया उन्होंने भी! कैसे किया, यही बड़ा मुश्किल मामला है। यह हो नहीं सकता। मगर जब कहानी गढ़नी हो, तो फिर कोई पाबंदी नहीं रह जाती। यह तुमने सदियों से किया है। यह तुम आज भी कर रहे हो। अगर महावीर जिंदा हों तो तुम आज भी अपमान करोगे। अगर जीसस मौजूद हों तुम फिर सूली

लगाओगे। बुद्ध अगर सामने खड़े हो जाएं तो बस तत्क्षण तुम्हारी सब पूजा खो जाएगी। लेकिन मरे हुए बुद्ध को तुम अपने अनुकूल बना लेते हो।
यह राज की बात समझो, राज भारती। मरे हुए व्यक्ति को तुम जैसा चाहो वैसा बना लेते हो, क्योंकि वह तुम्हारे हाथ में है। तुम जो रंग देना चाहो दे दो, जो ढंग देना चाहो वह दे दो। लेकिन जिंदा व्यक्ति तो अपने ढंग का होता है, अपने रंग का होता है। और जिंदा व्यक्ति के साथ तुम कहानियां नहीं गढ़ सकते। और ऐसे व्यक्ति-बुद्ध या महावीर या जीसस जैसे लोग-तुम्हें कहानियां गढ़ने भी नहीं देंगे। तुम्हारी कहानियां तोड़ देंगे, तत्क्षण तोड़ देंगे। ऐसे लोग सत्य को दिखाने के लिए जीवन भर आतुन होते हैं, झूठ गढ़ने के लिए नहीं।

अंतिम प्रश्नः ओशो, क्या तर्कशास्त्र बिल्कुल व्यर्थ है?

सागर! बिल्कुल व्यर्थ तो नहीं; अपनी जगह उसकी सार्थकता है। लेकिन सीमा है उसकी। उसे सीमा के बाहर मत खींचना।
पदार्थ के संबंध में तर्कशास्त्र की उपयोगिता है, लेकिन चेतना के संबंध में नहीं। तर्कशास्त्र जीता है संदेह पर। संदेह उसकी आत्मा है। और चैतन्य को अनुभव करना हो तो श्रद्धा के फूल चाहिए।
एक तर्कशास्त्र के प्रोफेसर से किसी ने पूछाः "आपके घर में किसका शासन चलता है?"
प्रोफेसर ने कहाः "अपनी-अपनी जगह सभी शासन करते हैं।"
पूछने वाले ने कहाः "मैं कुछ समझा नहीं। कुछ विस्तार से समझाइए।" प्रोफेसर ने कहाः "सुनो, मेरी पत्नी बच्चों को अनुशासित करती है, उन्हें डांटती-डपटती है। मेरे बच्चे हमेशा नौकरों पर हुक्म चलाते हैं। मेरे घर के नौकर-चाकर अपनी अपनी औरतों पर शासन करते हैं। और मुझे जब भी किसी पर गुस्सा आता है तो मैं अपने कुत्ते पर बरस पड़ता हूं और उसकी अच्छी मरम्मत कर देता हूं। इस प्रकार सब अपनी-अपनी जगह शासन कर रहे हैं।"
यह तर्कशास्त्र का प्रोफेसर है, इसने ठीक-ठीक सरणी बांट ली है कि कौन किस पर शासन करे। सबने अपना-अपना क्षेत्र बांट लिया।
मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा एक दिनः "तेरे घर में झगड़ा नहीं होता, नसरुद्दीन?"
उसने कहाः "कभी नहीं! क्योंकि विवाह के बाद ही मैंने पहला काम यही तय किया कि अपना-अपना बंटवारा कर लेना चाहिए!"
मैंने कहाः "कैसा बंटवारा किया?"
तो नसरुद्दीन ने कहाः "बंटवारा ऐसा किया कि बड़ी-बड़ी जो समस्याएं हैं जीवन की वे मैं सम्हालूंगा, छोटी-मोटी जो बातें हैं वे पत्नी सम्हालेगी।" मैंने कहाः "यह तो बड़ी गजब की बात है! पत्नी राजी हो गयी?"
उसने कहाः "बिल्कुल राजी हो गयी।"
मैंने कहाः "मैं इतना और पूछना चाहता हूं कि बड़ी-बड़ी समस्याएं यानी क्या और छोटी-छोटी समस्याएं यानी क्या?"
तो उसने कहाः "छोटी-छोटी समस्या यानी कौन सा मकान खरीदना, कौन सी कार खरीदना, बच्चों को किस स्कुल में पढ़ाना, मेरी पत्नी कौन-से कपड़े पहने, मैं कौन से कपड़े पहनूं, किस डाक्टर से इलाज करवाना-ये छोटी छोटी बातें।"
और मैंने पूछा; "बड़ी-बड़ी बातें?"
उसने कहा कि "ईश्वर है या नहीं, स्वर्ग है या नहीं, पुनर्जन्म होता है
या नहीं? ये बड़ी बड़ी समस्याएं मैं तय करता हूं। झगड़ा होता ही नहीं। हमने बांट कर ली है।"
तर्कशास्त्र अगर बंटवारा कर सके तो झगड़ा नहीं है। तर्कशास्त्र विज्ञान का उपाय है, धर्म का नहीं श्रद्धा को विज्ञान में मत डालना और तर्क-शास्त्र को धर्म में मत डालना, तो दोनों का सह-अस्तित्व हो सकता है। गुलजान बहुत दिनों से नसरुद्दीन के पीछे पड़ी थी कि मुझे साड़ी खरीदनी है, मगर नसरुद्दीन उसे टालता रहा। मगर जब एक दिन नसरुद्दीन साड़ी खरीदने के लिए राजी हो गया तो गुलजान की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। नसरुद्दीन

गुलजान को लेकर साड़ियों की दुकान पर पहुंचा और दुकानदार को साड़ियां दिखाने के लिए कहा। दुकानदार ने अनेक साड़ियां दिखायीं। गुलजान को डेढ़-डेढ़ सौ वाली दो और तीन सौ रूपये वाली एक साड़ी बहुत पसंद आयी। नसरुद्दीन ने दुकानदार को तीन सौ रूपये वाली साड़ी पैक करने को कहा। जब साड़ी पैक करके दुकानदार लाया तो नसरुद्दीन बोलाः "क्षमा करें महाशय, कृपया इसके बदले में डेढ़-डेढ़ सौ वाली ये साड़ियां हमें चाहिए।"
दुकानदार ने उसे अलग रख कर डेढ़ डेढ़ सौ रूपये वाली दो साड़ियां पैक कर दीं। पैकिट लेकर जब नसरुद्दीन चलने को हुआ तो दुकानदार ने कहाः "बड़े मियां, पैसे?"
नसरुद्दीन बोलाः "कैसे पैसे?"
दुकानदार बोलाः "अरे इन दो साड़ियों के पूरे तीन सौ रूपये!"
नसरुद्दीन बोलाः "लेकिन ये साड़ियां तो मैंने तीन सौ रूपये साड़ी के बदले में ली हैं। बोलो ली हैं या नहीं?"
अब दुकानदार घबड़ाया। बोलाः "आप कह तो सही रहे हैं, ली तो आपने तीन सौ रुपये की साड़ी के बदले में, तो उसी के पैसे दे दीजिए।"
नसरुद्दीन बोलाः "लेकिन तीन सौ रूपये वाली साड़ी मैंने ली ही नहीं, फिर पैसे कैसे? वह साड़ी तो मैं कब की वापिस कर चुका हूं।"
तर्क की अपनी जगह है। उसे हर जगह मत प्रवेश करवा देना।
नसरुद्दीन की कहानी में आगे क्या हुआ, वह अगर जानना हो, तो तुम्हें रूबी हॉस्पीटल जाना पड़े। कई फ्रेक्चर हो गये हैं। उनकी मरम्मत हो गयी। दुकानदार टूट पड़ा। उसके नौकर-चाकर भी टूट पड़े। पट्टियां बंधी हैं सारे शरीर पर। मैं देखने गया था। मैंने नसरुद्दीन को पूछा कि नसरुद्दीन, बहुत दुख होता होगा, बहुत तकलीफ होती होगी?
उसने कहाः "नहीं, वैसे तो नहीं होती। जब हसंता हूं तब होती है।"
मैंने कहाः "तुम हंसते काहे को हो?"
उसने कहाः "हंसता इसलिए हूं कि मैं भी कहां के मूरख दुकानदार के पास पहुंच गया! उसी घटना को सोच कर हंसी आ जाती है। मगर दुष्टों ने भी क्या मार की! और मेरी पत्नी भी क्या खड़े हो कर देखती रही!"
तर्क की अपनी जगह है। उसे अपनी जगह पर छोड़ दो, उसकी उपयोगिता है; व्यर्थ नहीं है। लेकिन उसे सीमा के बाहर मत जाने दो। तर्क अगर तुम्हारी श्रद्धा को खंडित न करे तो तुमने उसका उपयोग कर लिया। तर्क यानी मन। श्रद्धा यानी हृदय। तर्क यानी विचार। श्रद्धा यानी भाव। तर्क यानी बहिर्यात्रा। श्रद्धा यानी अंतर्यात्रा।
आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
सातवां प्रवचन

व्यक्ति होना धर्म है

पहला प्रश्नः ओशो, आपका हम बूढ़ों के लिए क्या संदेश हे?

पंडित तुलसीदास शास्त्री, आत्मा न तो बूढ़ी होती है न जवान। देह के साथ तादात्म्य हो तो बूढ़ापे की भ्रांति होती है। देह बीमार हो तो बीमारी की भ्रांति होती है। देह मरे तो मृत्यू की भ्रांति होती है।
मैं देह हूं, इसमें ही हमारी सारी भ्रांतियां छिपी हैं। इस तादात्म्य
को छोड़ो। देह में हो, देह नहीं हो।
मैं देह का विरोधी नहीं हूं। देह मंदिर है, पुजास्थल है--उतना ही पवित्र जितना काबा या काशी। उससे भी ज्यादा पवित्र, क्योंकि काबा तो फिर भी पत्थर है। देह के भीतर तो स्वंय परमात्मा विराजमान है। लेकिन स्मरण रखो कि वह जो भीतर बैठा है मेहमान हो कर, वह देह के साथ एक नहीं है, देह से भिन्न है, देह से अन्य है। फिर न कोई बुढ़ापा है, न कोई जवानी है, न कोई बचपन है। फिर तुम शाश्वत हो। शाश्वत से संबंध जोड़ना है। शाश्वत के प्रति सजग होना है।
मन बूढ़ा होता है। मन सदा ही बूढ़ा होता है। देह तो कभी जवान भी होती है;
मन कभी जवान नहीं होता। मन जवान हो ही नहीं सकता। मन का गुणधर्म बुढ़ापा है। इस सत्य को ठीक से समझो।
मन का अर्थ ही होता हैः स्मृति। स्मृति का अर्थ होता हैः जो बीत गया,
जो जा चुका, जो अतीत हो चुका। मन उसी का संग्रह करता है, जो अब नहीं है। सांप तो जा चुका, रेत पर उसके चिन्ह रह गए हैं। व्यक्ति तो जा चुका, धूल पर उसके पगचिन्ह छूट गए हैं। ऐसा ही मन है। मन अतीत है। मन व्यतीत हैं। जा चुके का संग्रह है। इसलिए मन सदा ही मरा हुआ है, मुर्दा है, बूढ़ा है।
मन के साथ हम अपने को बहुत कस कर बांधे हुए हैं। हमने अपना सारा दांव
मन के साथ लगा दिया है। हिन्दू मन होता है, मुसलमान मन होता है। आत्मा न तो हिन्दू होती है, न मुसलमान होती है। जिस दिन तुम मन से जागोगे, उस दिन पाओगे-कैसा हिन्दू होना, कैसा मुसलमान होना? कैसा ज्ञान, कैसा अज्ञान? आत्मा तो शुद्ध चैतन्य है। मन तो धूल की तरह जम जाता है दर्पण पर।
और वह धूल तुम पर काफी जम गयी होगी। तुम्हारा नाम ही खबर देता हैं। तुम प्रश्न पूछते हो समय भी छोड़ नही सके। लिखते हो-"पण्डित तुलसीदास शास्त्री"। पाण्डित्य तो बूढ़ा होगा। पाण्डित्य तो सडागला होता है। अन्यथा हो ही नहीं सकता।
पाण्डित्य को छोडो। पाण्डित्य का क्या करोगे? पाण्डित्य का अर्थ क्या होता है?-उधार, बासा! औरों से इकट्ठाकर लिया। उपनिशद, गीता, कुरान, बाइबल, धम्मपद, इन सबसे संग्रहित कर लिया। अपना तो कुछ भी नहीं है। और जो अपना नहीं है, वह मुक्तिदायी नहीं है। जो अपना नहीं है वह बंधन बन जाता है। बुद्ध कहते थे कि मैं एक चरवाहे को जानता हूं, जिसका कुल काम इतना थाः दूसरों की गाएं चरा लाना। लेकिन वह उनकी गिनती कर कर के खुश होता था, कि आज इतनी गाएं चरा कर लौटा, कि आज इतनी गाएं चरा कर लौटा। बुद्ध ने कहा, मैंने उससे पूछा:"पागल, इसमें एकाध गाय भी तेरी हैं?" तो वह चौंका। उसने कहाः "मेरी! मेरी तो इसमें एक गाय भी नहीं हैं। सब औंरो की हैं, गांव वालों की हैं।"
तो बुद्ध ने कहाः "जब तेरी एक गाय नही हैं, तो कितनों को चरा कर लौटा इससे क्या होगा?"
पण्डित दूसरों की गाएं गिनता रहता है। गीता में ऐसा लिखा, कुरान में ऐसा लिखा, बाइबिल में ऐसा लिखा-इसी हिसाब-किताब में लगा रहता है। भूल ही जाता है कि जीसस ने जिसका जाना था वह मेरे भीतर भी छिपा है, सीधा ही क्यों न जान लूं! इतनी लंबी यात्रा करने की क्या जरूरत, कि दो हजार साल पहले जीसस हुए, हुए या नहीं हुए, यह भी आज तय करना मुश्किल है। दो हजार साल की परीक्रमा करूं, फिर कुछ जानूं। वह जानना भी कितने दूर तक प्रामाणिक है,

कहना मुश्किल है। क्योंकि जिन्होंने संग्रहित किया है, उन्होंने खुद भी नहीं जाना था। जीसस ने कुछ कहा होगा, उन्होंने कुछ सुना होगा। यह स्वभाविक है।
हम अपने हिसाब से सुनते हैं। हम अपनी बुद्धि से सुनते हैं, अपने अनुभव
से सुनते हैं। फिर उन्होंने संग्रहित किया। फिर सदियां सदियां उसकी व्याख्या करती रही हैं। लोग आते रहे, जोड़ते रहे, तोड़ते रहे। आज हमारे हाथ में जो है, उसमें कितना प्रामाणिक है, कहना बहुत मुश्किल है। कोई उपाय नहीं है जांच करने का। गीता पर एक हजार टीकाएं है। कृष्ण पागल तो नहीं थे। उनका तो अर्थ एक ही रहा होगा; एक हजार अर्थ तो नहीं हो सकते। एक हजार अर्थ तो अर्जुन की क्या गति होती! कृष्ण भी पागल होते और अर्जुन भी पगला जाता। अर्थ ही बिठालने में मुश्किल हो जाती। अर्थ ही कभी नहीं बैठता। वह पहेली बन जाती बात, सुलझती ही नहीं।
और इन अर्थ करने वालों से पूछो। हर-एक दावा है कि उसका अर्थ सही है। वे
ही शब्द हैं, लेकिन अर्थ की अलग अलग कलमें लोंगो ने लगायी हैं। उन्हींशब्दों में से शंकराचार्य ज्ञान निकाल लेते हैं, संन्यास निकाल लेते है, त्याग निकाल लेते हैं। उन्हींशब्दोंमें से कर्म-संन्यास निकाल लेते हैं, कि सब कर्म को छोड़ कर व्यक्ति परमात्मा को पा सकता है, और कोई उपाय नहीं है।
उन्हींशब्दों में से रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ भक्ति निकाल लेते हैं। ज्ञान नहीं, भक्ति। ज्ञान तो कूडा करकट हैं। भक्ति और भाव, भाव भरे आंसू, पूजा और प्रार्थना-उससे परमात्मा पाया जा सकता है। उससे ही तिलक कर्म निकाल लेते हैं। वे ही शब्द। ज्ञान भी छोड़ा, भक्ति भी छोड़ी, कर्म निकाल लिया-कर्मठ पुरुष, कर्मयोगी ही केवल परमात्मा को पा सकता है। कृष्ण भी अगर इन एक हजार टीकाओं को पढे. तो खुद संदिग्ध हो जाएंगे कि मेरा मतलब क्या था! खुद ही सोच-विचार में पड़ जाएंगे कि अब मैं क्या करूं, कौन-सा सही मेरा मतलब है? इन एक हजार टीकाओं की भीड़ में से तुम खोज पाओगे, क्या सच है? असंभव? फिर तुम भी जो खोजोगे, वह तुम्हारी टीका होगी; वह एक हजार एकवीं टीका होगी। तुम भी यूं ही तो नहीं छोड़ दोगे। तुम भी कुछ अर्थ लगाओगे। तुम भी कुछ अर्थ बिठाओगे। तुम अपने को जमाओगे।
बुद्ध रोज रात्रि को, जब उनका प्रवचन पूरा होता, तो कहते थे नियम से कि भिक्षुओ, अब जाओ। दिवस का अन्त हुआ, अब अन्तिम कार्य पूरा करो, ताकि दिवस की पूर्णाहुति हो। विश्राम के पहले कार्य पूरा कर लेना।
रोज रोज कहने की जरूरत नहीं थी। मतलब था कि ध्यान करके और सो जाओ। रोज रोज क्या कहना, एक दफा समझा दिया था, हजार दफे समझा दिया था, फिर तो यह प्रतीक हो गया था कि भिक्षुओ, अब अपना अंतिम कार्य पूरा कर लो और फिर विश्राम में जाओ। एक दिन सुबह उन्होंने कहा कि तुम्हें पता है भिक्षुओ, कल रात क्या हुआ! जब मैंने तुमसे कहा कि अब उठो, अंतिम कार्य पूरा कर लो, यूं ही बहुत देर हो गयी है-तो तुम सब ध्यान करने चले गए। एक चोर भी आया हुआ था सभा में, वह एकदम चौंका वह बडा हैरान भी हुआ कि बुद्ध को कैसे पता चला कि मैं चोर हूं और मेरे काम का समय आ गया! वह चोरी करने चला गया, कि गजब के आदमी हैं बुद्ध भी, कि खूब चेताया कि अब क्या बैठा है तू, अब उठ, अपने काम में लग! नही तो फिर पीछे पछताएगा।
एक वेश्या भी आयी थी। वह भी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी, एक क्षण अवाक हो गयी। चौंक कर उसने बुद्ध को देखा कि क्या इनको खबर मिल गयी, क्या जासूस छोड़ रखे हैं। क्योंकि वह तो कपड़े वगैरह बदल कर आयी थी कि कोई उसे पहचान भी न सके। ऐसी ही बन कर आयी थी कि जैसे भिक्षुनी हो। कैसे इनको पता चल गया! जाऊं। रात देर हुई जाती है, ग्राहक आने लगे होंगे। अंतिम काम पूरा करूं। चोर चोरी करने चला गया, वेश्या अपनी दुकानदारी पर चली गयी, भिक्षु ध्यान करने लगे। बुद्ध ने एक ही बात कही थी, तीन तरह के लोंगो ने तीन तरह के अर्थ निकाल लिए।
पाण्डित्य से कुछ हाथ नहीं आने वाला। पाण्डित्य थोथी चीज है। इस जगत में सबसे ज्यादा थोथी चीज अगर कोई है तो पाण्डित्य है। पाण्डित्य बोध नहीं है। बोध तो ध्यान से मिलता है। बोध तो समाधि से मिलता है। पाण्डित्य

मिलता है अध्ययन से, चिन्तन से, सोच-विचार से। दोनों की प्रक्रियाएं अलग हैं। बोध मिलता है निर्विचार होने से, निश्चिंत होने से, मन के पार होने से! अ-मनी दशा में बोध जगता है। और पाण्डित्य तो मन का ही खेल है। पाण्डित्य तो बस तोंतो जैसा है। सच पुछो तो तोते भी शायद पण्डितों से कहीं ज्यादा होशियार होते हैं।
एक पण्डित तोते को खरीदने गया। वह चाहता था धार्मिक तोता। पण्डित था, चाहता था द्वार पर कोई धार्मिक तोता। सुन रखी थी उसने कहानी कि जब पहली दफा शंकराचार्य मंडनमिश्र के गांव पहुंचे तो उन्होंने गांव के बाहर कुएं पर पानी भरती हुई स्त्रियों से पूछा पनघट पर कि शंकराचार्य का निवास कहां है।
तो वे स्त्रियां हंसने लगीं। उन्होंने कहाः"यह भी कोई पूछने की बात है! जिस द्वार पर तोते भी उपनिशद का पाठ करतें हों, समझ लेना वही मंडनमिश्र का घर है।"
शंकर भीतर प्रविष्ट हुए और निश्चित ही तोतों की पंक्ति बैठी हुई थी। उपनिशदों के वचन तोते दोहरा रहे थे। यही मंडन मिश्र का घर है।
इस पण्डित ने भी यह कहानी सुनी थी, यह भी चाहता था कि मेरे द्वार पर भी
एक तोता लटका रहे, कि सारा गांव जाने। पूछा दुकानदार से कोई ऐसा तोता है। उसने कहाः "तोता तो है-और बड़े गजब का तोता है! मगर दाम भी लगेंगे। दो हजार से कम नही लुंगा। बड़ी मेहनत से तैयार किया है।"
पण्डित ने कहाः "देखूं तो पहले!" तोता सुंदर था, बड़ा प्यारा था। तोते
के दोनों पैरों में छोटे छोटे काले धागे बंधे हुए थे। पण्डित ने पूछाः "ये धागे किसलिए है?"
उस दुकानदार ने कहा: "अगर बाएं पैर का धागा धीरे से खींच दो, किसी को दिखायी भी नही पड़ेगा, तो यह तत्क्षण गायत्री मंत्र बोलता है।"
और पण्डित ने पूछा: "दाएं पैर का धागा?"
कहा: "अगर दाएं पैर का धागा खींच दो तो यह नमोकार मंत्र बोलता है। मेरे पास दोनों तरह के ग्राहक आते हैं-हिन्दू भी, जैन भी। सो दोनों से निष्णात कर रखा है।"
पण्डित ने पूछा: "और अगर दोनों धागे एक साथ खींच दूं तो?"
तोते ने कहा: "अरे उल्लू के पट्ठे, चारों खाने चित नहीं गिर पडूंगा?" तोते भी थोड़े ज्यादा अकल रखते हैं। पण्डित तो बिल्कुल ही थोथे होते हैं।
तुलसीदास, पहला काम तो यह करो, यह "पण्डित" की बदनामी जाने दो। यह पण्डित को नाम के आगे मत जोड़ो। इसके गिरते ही बुढ़ापा विदा हो जाएगा। तुम फिर ताजे हो जाओगे। यह धूल झाड़ दो। मगर तुम दोनों तरफ से दबे हो।
कबीर ने कहा है... पता नहीं उनका क्या मतलब था! मगर मुझे तो लगता है, जैसे तुमको ही देख कर कहा हो कि "दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय"। आगे "पंडित", पीछे "शास्त्री"! तुम साबित बच गए, यही बहुत है। तुम यहां तक आ गए, यही बहुत है। आगे से "पण्डित" को गिरा दो, पीछे से "शास्त्री" को गिरा दो।
तुलसीदास बहुत है। पर्याप्त है। नाम कोई चाहिए। उतने से काम हो जाएगा। नाम की औपचारिकता है। नाम का कोई अस्तित्व नहीं है। कामचलाऊ है।
अनाम हम पैदा होते है, अनाम ही हम जीते है, अनाम ही हम मरते हैं। परमात्मा का कोई नाम नहीं है-और न हमारा कोई नाम है। हम सब परमात्मा के ही रूप हैं। लेकिने ये पण्डित और शास्त्री तुम्हें बूढ़ा कर रहे हैं। इन दोनों का त्याग कर सको तो तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाए। ढो तो चुके शास्त्र बहुत, पाया क्या? अब भी न चेतोगे तो कब चेतोगे? अगर कुछ मिला हो तो मैं नहीं कहता छोड़ो। मगर पुनर्विचार कर लो, मिला है कुछ? किसी को कभी नहीं मिला, तुमको कैसे मिल सकता है? कोई अपवाद नहीं हो सकता।
पाण्डित्य से कभी किसी को कुछ नहीं मिला। हां, धोखा होता है मिलने का, भ्रांति होती है मिलने की। क्योंकी सुंदर सुंदर शब्दों की कतारें बंध जाती है, प्यारे शब्दों की पंक्तियां लग जाती हैं, सुंदर सुंदर सुभाषित कंठस्थ हो जाते हैं, और यह भ्रांति हो जानी बहुत मुश्किल नहीं है कि बहुत बार दोहराने पर लगने लगे कि ये सारे शब्द मेरे हैं। तुम झूठ भी बोलते रहो

बहुत दिन तक, तो वह भी सच मालूम होने लगेगा। यही तो कुल जमा आत्मसम्मोहन की व्यवस्था है। जिस बात को तुम बहुत दिन तक बोलते रहोगे, खुद ही भूल जाओगे कि यह झूठ थी। झूठ बोलने का सबसे बड़ा खतरा यही है: दूसरे तो धोखा खाते हैं, खाते ही हैं, बोलने वाला खुद धोखा खा जाता है।
मैंने सुना है, एक पत्रकार स्वर्ग पहुंचा। द्वारपाल ले कहा: "क्षमा करें, हमारा कोटा पूरा है। बारह पत्रकार से ज्यादा हम अंदर लेते नहीं। और सदियां हो गयीं, बारह पत्रकार हैं। वैसे भी उनकी भी कोई जरूरत नहीं है। एक औपचारिकतावश उनको रखा हुआ है। अखबार यहां निकलता नहीं, क्योंकि अखबार निकलने योग्य घटनांए नहीं घटती। न कोई किसी की पत्नी भगाता है, न कोई डाका डालता है, न कोई चुनाव लड़ता है। यहां समाचार होते ही नहीं।"
द्वारपाल ने कहा: "तुमने सुना तो होगा, जार्ज बर्नार्ड शॉ ने समाचार
की क्या परीभाषा की है? बर्नार्ड शॉ ने कहा है कि अगर कुत्ता आदमी को काटे तो यह कोई समाचार नहीं है; जब आदमी कुत्ते को काटे, वह समाचार है। यहां आदमी कुत्ते को काटे, यह तो होता ही नहीं; यहां कुत्ता भी आदमी को नहीं काटता। समाचार यहां कुछ घटता नहीं। अखबार यहां कोई निकलता नहीं। तुम करोगे भी क्या? वह सामने रहा दरवाजा नरक का, वहां चले जाओ। वहां खुब अखबार छपते है, रोज रोज नए अखबार निकलते हैं। फिर भी समाचार इतने ज्यादा हैं वहां कि अखबार कम पडते हैं, समाचार ज्यादा हैं। नरक में तो समाचार ही समाचार समझों। ऐसी शायद ही कोई घड़ी बीतती हो, जब कुछ उपद्रव न हो रहा हो। कही घेराव, कहीं हड़ताल, कहीं किसी ने किसी की गर्दन काट दी, कही कोई किसी की पत्नी ले भागा, कहीं कोई किसी का पति ले भागा। नरक क्या है- समझो दिल्ली है!"
कल ही मैंने अखबार में पढ़ा कि एक आदमी दिल्ली स्टेशन पर उतरा, उसका कोई सामान लेकर नदारद हो गया। वह बेचारा सामान खोजने गया, लौट कर आया, कोई उसकी पत्नी ले कर नदारत हो गया। सामान भी गया पत्नी भी गयी। उसको जल्दी आना चाहिए, नहीं तो कोई उसी को उड़ा ले जाएगा। अभी भी कुछ तो बचा है। जान बची और लांखो पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए! पकड़े गाड़ी और भागे, निकल भागे।
दिल्ली में खतरा है।
और नरक तो समझो एकाध दिल्ली नही; दिल्लियां ही दिल्लियां बसी हैं।
सारे राजनेता वहां है।
बहुत समझाया द्वारपाल ने, लेकिन अखबार वाले तो जिद्दी होते ही हैं।
उसने कहा: "कुछ भी हो, एक काम करो, चौबीस घंटे का मुझे मौका दे दो। मैं किसी अखबार वाले को अगर राजी कर लूं नरक जाने के लिए तो फिर तो जगह एक खाली हो जाएगी, मुझे दे सकोगे?"
द्वारपाल ले कहा: "यह ठीक है। यह बात मेरी समझ में आती है। तुम चौबीस घंटे के लिए भीतर हो जाओ। अगर किसी को राजी कर लो तो तुम रह जाना, वह चला जाएगा। हमें कुछ फर्क नहीं पड़ता। अ रहा कि ब रहा, सब बेकार हैं। तुम रहोगे, तुम्हें रहना हो तुम रह जाओ।
वह आदमी अंदर गया और जाते से ही जो उसे मिला, उसने अफवाह उड़ानी शुरू की नर्क में एक नया अखबार निकल रहा है। बड़ी तनखाह है। प्रधान संपादक की, उपप्रधान संपादक की, और पत्रकारों की जरूरत है। तनखाह, बंगला, कारें, सब... । उसने ऐसा शोरगुल मचाया चौबीस घंटे में कि जब चौबीस घंटे बाद वह द्वार पर आया तो सोचता था कम से कम एकाध चला गया होगा। द्वारपाल ने एकदम उसे रोक लिया, संगीन उसके सामने कर दी कि भीतर रहना, बाहर मत जाना, क्योंकि बाकी बारह ही भाग गए हैं। वे सब नरक चले गए। अब कम से कम एक तो होना ही चाहिए, कहने को; शैतान हांकेगा ड़ींग कि तुम्हारे पास एक अखबार वाला नही है। अक्सर हर बात में वह डींग हांकता है। यह तुम देख रहे हो कि नरक और स्वर्ग के बीच में जो दिवाल है, इसकी ईंटे गिर गयी है। उसी तरफ के शैतानों ने ईंटें खींच ली है। एक दूसरे पर ईंटें निकाल निकाल कर मारते हैं, तो दीवाल की ईंटें गिर गयी हैं। दीवाल में छेद हो गए हैं। परमात्मा ने एक दिन कहा उस शैतान से कि देख, दीवाल सुधरवा, तेरे ही आदमियों ने गड़बड़ की हैं। उसने कहा: "हमें कोई फिक्र नहीं है, दीवाल रहे की जाए। हमें क्या चिंता! अरे दीवाल न रहेगी तो हमारे आदमी स्वर्ग पर कब्जा कर लेंगे। तुम्हें फिक्र हो अपने को

बचाने की तो दीवाल सुधरवा लो।" परमात्मा भी तैष में आ गया। उसने कहा कि मुकदमा चलाऊंगा। उसने कहा: "चला लेना मुकदमा! सारे वकील तो यहां है! तुम मुकदमा कैसे चलाओगे? वकील कहां से पाओगे?" तो वह हर बात में इस तरह की हरकत करता है। वह यही कहने लगेगा कि तुम्हारे पास अब कोई अखबार वाला नही है। अब तू भीतर रह।
लेकिन वह अखबार वाला खड़ा होकर सोचने लगा। उसने कहा कि अब मैं नहीं रूक सकता। द्वारपाल ने कहा: "तू पागल हो गया है, तूने ही झूठी अफवाह उड़ायी, तू क्या करेगा जा कर?"
उसने कहा: "हो न हो, इस बात में कुछ सचाई होनी ही चाहिए। जब बारह आदमी चले गए तो बात बिल्कुलझूठ हो यह नहीं हो सकता। माना कि मैनें ही शुरू की थी, मगर संयोगवशात ऐसा लगता है कि बात में कुछ सचाई होगी। मैनें तो झूठ की तरह ही शुरू की थी, मगर अगर सत्य न होता बात में तो इतने लोग प्रभावित न होते। सत्यमेव जयते! जब इतनी विजय हो गयी है तो.
लोग कहते हैं कि सत्य की विजय होती है, सचाई और ही है: जो चीज जीत जाए, लोग उसी को सत्य कहने लगते हैं। झूठ जीत जाए तो झूठ सत्य हो जाता है। सत्य की विजय होती है या नहीं, कहना मुश्किल है; मगर जो भी जीत जाए लोग उसे सत्य मान लेते हैं। वह अखबार वाला नही रूका। उसने कहा, चौबीस घंटे से एक मिनट ज्यादा नहीं ठहरने वाला। तुमने ही चौबीस घंटे का मौका दिया था, मुझे बाहर जाने दो; नहीं तो मैं बहुत शोरगुल मचाऊंगा, मैं बहुत उपद्रव मचा दूंगा। जब बारह चले जाएं तो मैं रहने वाला नहीं। तुम खुद भी सोचो। तुम कई बार कोई चीज झूठ शुरू करते हो और धीरे धीरे खुद भी उस पर भरोसा आ जाता है। पुनरूक्ति से भरोसा आता है।
अडोल्फ हिटलर ने लिखा है अपनी आत्मकथा में: किसी भी झूठ को दोहराते रहो बार बार, वह सच हो जाता है। झूठ और सच में-उसने कहा है-इतना ही भेद है। बहुत बार दोहराए गए झूठ सच हो जाते हैं। और सच भी पहली दफा कहा जाता है तो झूठ ही मालूम पड़ता है।
पाण्डित्य है क्या? उधार बातों को तुम दोहराते हो। दोहराते दोहराते आत्मसम्मोहित हो जाते हो। वही गीता को पढ़ रहे हो रोज। इसलिए तो तुम्हारे तथाकथित पुरोहित, तुम्हारे महात्मा एक बात समझाते हैं कि पाठ करो। और किसी किताब का पाठ नहीं करना होता। अगर तुम्हें भूगोल पढ़नी है, इतिहास पढ़ना है, तो पढ़ लिया, बात खत्म हो गयी। यह नहीं कि रोज उठ कर पाठ कर रहे हैं। पाठ करने का मतलब क्या है? पाठ करने का मतलब यह है कि रोज रोज उसी को दोहराओ, दोहराए चले जाओ, इतना दोहराओ इतना दोहराओ कि जैसे पत्थर पर लकीर खिंच जाए। और कुछ लोग हैं जो जिंदगी भर गीता दोहरा रहे हैं। उनको गीता बिल्कुल कंठस्थ हो जाती है। गीता सामने रख लेते हैं और दोहराए चले जाते हैं। कई बार तो तुम चकित होओगे है। वे फिर कि वे जो दोहरा रहे हैं, वह पृष्ठ ही सामने नही होता, उसकी जरूरत ही नहीं है पृष्ठ की। कोई भी पृष्ठ हो, चलेगा।
मुल्ला नसरूददीन एक दिन पढ़ रहा था कुरान शरीफ। मैं चकित हुआ, क्योंकि
वह किताब उल्टी रखे था। मैंने पूछा: "यह क्या कर रहे हो, बड़े मियां? किताब उल्टी है!"
उसने कहा: "किताब से करना क्या है? अरे मुझे शब्दशब्द याद है। किताब कैसी रहे, सीधी रहे कि उल्टी रहे। यह दिखता है मेरे लड़के ने हरकत की है। मैं तो आंख बंद करके अपना कुरान पाठ कर रहा हूं, वह इसको उल्टी कर गया होगा। वह दुष्ट जो न करे सो थोड़ा है।"
मगर क्या प्रयोजन है, जब तुम्हें कंठस्थ ही है तो सीधी हो किताब कि उल्टी हो किताब, पन्ना सामने हो कि न हो। यंत्रवत तुम दोहराए चले जाते हो। पाण्डित्य यंत्र की भांति है। छूटो तुलसीदास। पांडित्य से छूटो, शास्त्रीयता से छूटो-अगर सत्य को पाना है। और सत्य किताबों में नहीं है। सत्य तुम्हारे भीतर है। सत्य मैं तुम्हें नहीं दे सकता। कोई भी तुम्हें नहीं दे सकता। जिन्होंने पाया है वे केवल इतना ही इशारा कर सकते हैं कि तुम भी अपने भीतर जाओ तो पा लोगो। कोई दे नहीं सकता। सत्य हस्तांतरणीय नहीं है। यह कोई वस्तु नहीं है कि एक हाथ से दूसरे हाथ में दे दो। नहीं तो

हर बाप जैसे संपत्ति दे जाता है अपने बेटे को, हर गुरू अपने शिष्यों को सत्य दे जाता। लेकिन सत्य इतना आसान नहीं।
गुरू केवल तुम्हारी प्यास जगा सकता है, प्यास प्रज्वलित कर सकता है। तुम्हारे भीतर सत्य की आकांक्षा को गहन कर सकता है। एक ऐसी त्वरा पैदा कर सकता है कि तुम्हारा रोआं रोआं अभीप्सा से भर उठे सत्य को पाने की। लेकिन सत्य तुम्हें ही पाना होगा।
लेकिन खतरा यह है कि सुंदर सुंदर वचन शास्त्रों के, मोहक वचन शास्त्रों के भ्रांति दे सकते हैं। ऐसा लग सकता है कि पा लिया, सब तो मालूम है!
इस देश के बड़े से बड़े दुर्भाग्यों में यही है कि इस देश में सभी को ब्रम्हज्ञान है। यहां पान बेचनेवाले से लेकर प्रधानमंत्री तक सबको ब्रम्हज्ञान है, क्योंकि कौन है जिसको दो-चार चौपाइयां न आती हों, कौन है जिसको गुरूग्रन्थ साहब के दो-चार पद न आते हों? कौन है जिसको गीता के कुछ श्लोक न आते हो? कौन है जो ब्रम्ह के संबंध में थोड़ी-सी बातें न कर सके, जो सारे जगत को माया न कह सके? जीवन कुछ कहता हो उनका, लेकिन शब्द उनके दोहराए चले जाते हैं-"जगत माया है! ब्रम्ह सत्य है।"
ये बातें कोरी बातें है; इनके भीतर कोईप्राण नहीं हैं। ये लाशें हैं।
ये पिंजड़े हैं, जिनके भीतर कोई पक्षी नही है। ये कितने ही हीरे-जवाहारातों से जड़े हों, सोने के बने हों, सावधान रहना, इसमें उलझा मत जाना।
तुम पूछते हो तुलसीदास: "आपका हम बूढ़ों के लिए क्या संदेश है?"
पहली तो बात यह, बूढ़ा होना तुम्हें आवश्यक नहीं है। तुम होना ही चाहो
तो बात और है। तुमने जिद्द ही कर ली हो, तुम्हारी मौज। तुमने संकल्प ही कर लिया हो बूढ़ा रहने का, तो फिर इस दुनिया में कोई भी कुछ भी नहीं कर सकता। यह तुम्हारी स्वतंत्रता है। अन्यथा ये दोनों जो चट्टानें तुमने लटका रखी हैं अपनी गर्दन से-पांडित्य की और शास्त्रीयता की-इनको गिरा दो, निर्भार हो जाओ। अभी तुम्हारे पंख आकाश में खुल जाएंगे। अभी भी तुम उड़ सकते हो। कभी भी तुम उड़ सकते हो।
मृत्यू के अंतिम क्षण तक भी व्यक्ति चाहे तो एक क्षण में परमात्मा को
पा सकता है। साहस चाहिए-थोथे ज्ञान को छोड़ने का।
और बड़ा मजा है। लोग संसार छोड़ने को राजी हैं, धन छोड़ने को राजी है, पद छोड़ने को राजी हैं, मगर ज्ञान छोड़ने को राजी नहीं हैं! मैं देखता हूं किसी ने गृहस्थी छोड़ दी, पत्नी छोड़ दी, बच्चे छोड़ दिए, दुकान छोड़ दी; मगर सब छोड़-छाड़ कर अब भी वह जैन है, या हिंदू है, या मुसलमान है। आश्चर्य! ज्ञान नहीं छोड़ा। वह थोथा जो यांत्रिक, शाब्दिक ज्ञान था, उसे और छाती से जकड़ लिया है। धन छोड़ने में कुछ बड़ी खुबी नही है, क्योंकि धन तो बाहर है। ज्ञान छोड़ने में मुश्किल पड़ती है, क्योंकि ज्ञान लगता है भीतर है। ज्ञान भी भीतर नहीं है; वह भी बाहर है।
तुम जहां हो, अंतर्तम में बैठे, वहां ज्ञान भी नहीं है; वहां तो एक निर्दोष मौन है। वहां कोईशब्द नहीं है। वहां निःशब्द है वहां तो एक संगीत है-एक मौन संगीत, एक शून्य संगीत। उसे अनाहत नाद कहो, या जो तुम्हारी मर्जी हो। समाधि कहो, निर्वाण कहो, कैवल्य कहो-जो शब्द देना हो। मगर इतना खयाल रखना कि वह शून्य संगीत है। वहां कोईशब्द नहीं है, न कोई ज्ञान है, न कोई अज्ञान हैं। वहां केवल वह शुद्ध चैतन्य है। वहां तुम सिर्फ द्रष्टामात्र हो। उस द्रष्टा के सामने ज्ञान भी बाहर है। विचार भी उस द्रष्टा के सामने दृश्य हैं।
तुम भी जरा आंख बंद कर के कभी बैठो तो देख सकोगे-यह गीता का श्लोक जा रहा। जैसे कि रास्ते पर लोग चलते हैं ऐसे ही श्लोक चलते हैं मन के रास्ते पर। कुछ भेद नहीं है। जैसे नदी बहंती है बाहर तुम किनारे पर बैठकर नदी को बहता देख सकते हो, वैसे ही भीतर बैठ कर मन की बहती हुई धारा को देख सकते हो। कोई फिल्मी गाना सुनता है, कोईशास्त्रीय ज्ञान सुनता है, मगर भेद जरा भी नहीं है। क्या फर्क है? दोनों ही बाहर हैं। तुम द्रष्टा हो, दृष्य नहीं। तुम देखनेवाले हो; जो दिखाई पड़ता है वह नहीं। बस इस द्रष्टा में रमो, तुलसीदास, मुक्त हो जाओगे बुढ़ापे से। मुक्त हो जाओगे सारे बंधनों से।

और कहीं जाने की जरूरत नहीं है-न पहाड़, न कंदराओं में। जहां हो वहीं बैठे-बैठे द्रष्टा में थिर होते जाओ। जितना ही तुम्हारे भीतर का द्रष्टा- भाव स्थिर होगा, यहीं रहोगे, इसी जगत में रहोगे, यही सब काम करोगे, फिर भी ऐसे रहोगे जैसे जल में कमल। कुछ छुएगा नहीं। कुंवारे रहोगे।

दूसरा प्रश्नः ओशो, सीखने से भी अनसीखना क्यों इतना कठिन मालूम पड़ता है?

आनंद मैत्रेय! सीखने से अहंकार को तृप्ति मिलती है। मैं जानता हूं, इतना जानता हूं-तो अहंकार भरता है। अहंकार बिल्कुल खाली चीज है। कुछ न कुछ भरने को चाहिए। धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, यश हो, सम्मान हो, ज्ञान हो, त्याग हो-कुछ न कुछ भरने को चाहिए।
अहंकार थोथा है। अगर कुछ भी भरने को न हो तो अहंकार फुग्गे की तरह फूट जाता है। अहंकार में कुछ न कुछ भरने की सतत कोशिश करनी होती है। फिर भी कभी भर नहीं पाता। झूठ को तुम कितना ही सम्हालो, कितना सम्हालोगे? आज नहीं कल, कल नहीं परसों, गिरेगा। कितना ही चलाओ, उसके पास पैर नहीं हैं और प्राण भी नहीं हैं।
अहंकार छाया की तरह है। उसमें कुछ भी तथ्य नहीं है; सिर्फ भ्रांति है; सिर्फ आभास है। तुम आत्मा हो, अहंकार नहीं। आत्मा तो भरी-पूरी है-इतनी भरी- पूरी है कि उसमें रंचमात्र स्थान नहीं है और भरने को। परमात्मा भरा हुआ है, अब और क्या भरने को जगह उसमें होगी? सारा अस्तित्व उसमें समाया हुआ है।
लेकिन अहंकार बिल्कुल थोथा है। और इसलिए अहंकार हमेशा चेष्टा में लगा रहता है कि कुछ भर ले, कहीं से भी कुछ मिल जाए तो भर ले। तलाश करता रहता है। अहंकार पूरे वक्तकोशिश में लगा रहता है-"लोग मेरे संबंध में क्या कहते है।?" लोग अच्छा कहते हैं न मेरे संबंध में? लोग मेरी प्रशंसा करते हैं न? अहंकार कुछ भी करने को राजी है, लोग प्रशंसा भर करें। कोई भी मूढ़ता करवा लो आदमी से, प्रशंसा भर करो। हर तरह की बेवकूफी करने को वह राजी है, बस तुम प्रशंसा भर करो। तुम्हारी प्रशंसा मिलती रहे तो वह एक दफा भोजन करने को राजी है, भूखा मरने को राजी है, उपवासा रहने को राजी है, सिर के बल खड़ा होने को राजी है, तरह तरह के शरीर को तोड़ने-मरोड़ने के व्यायाम करके दिखाने को राजी है। योग कहेगा उसको। तुम उससे कुछ भी करवा लो। जमीन पर घिसट-घिसट कर तीर्थयात्रा कर सकता है।
एक गांव में मैं गया। किसी ने कहा कि आपको मालूम है, हमारे गांव में एक बहुत प्रसिद्ध संत हैं!
"उनकी क्या प्रसिद्धि है?"
कहा कि वे दस साल से खड़े हुए हैं। उनका नाम ही "खड़े श्री बाबा" है! दस साल से खड़े हुए हों कि सौ साल से खड़े हुए हों, इसमें खूबी की बात क्या है? आदमी बुद्धू होगा, जिसको बैठना भी नहीं आता। इसने अपने अकल गंवायी। इसकी अकल मारी गयी।
लोंगो ने कहा: "अरे आप क्या कहते हैं? हजारों लोग दर्शन करने आते हैं।"
मैंने कहा: वे ही मूढ़ जो इसका दर्शन करने आते हैं इसको खड़ा करवाए हुए हैं। वे दर्शन करने आना बंद कर दें, फिर देखें यह कितनी देर खड़ा रहता है! यह भाग खड़ा होगा। मगर हजारों लोग आ रहे हैं, चढ़ोतरी चढ़ रही है।
मैं जब उस रास्ते से गुजरा, तो मैंने देखा वहां भीड़ लगी है। चौबीस घन्टे अखन्ड कीर्तन चलता है। "कीरन्तन" कहना चाहिए, कीर्तन नहीं। क्योंकि चौबीस घंटे चलाओगे मुहल्ले वालों का जीना हराम हो गया है। मगर कुछ कह भी नहीं सकते, धार्मिक कार्य हो रहा है! कोई बाधा भी नहीं डाल सकता। और वह कीर्तन चलाना पड़ता है चौबीस घंटे, ताकि बाबा सो न जांए, कहीं नद्ध न लग जाए बाबा की। और उनकी हालत मैंने देखी तो पैर उनके हाथीपांव जैसे हो गए हैं। हाथीपांव की बीमारी होती है न, सारे शरीर का रक्त पैरों में चला जाता है चला ही जाएगा, दस साल तुम खड़े रहोगे... ! ते शरीर सुख गया है, पैर काफी मोटे

हो गए हैं। अब तो वे बैठना भी चाहें तो बैठ सकतें नहीं। अब तो पैर मुड़ेगे भी नहीं। अब तो पैर बिल्कुल जड़ हो गए हैं। नसें फूल गयी हैं। यह आदमी भयंकर रोग से ग्रस्त हो गया-अपने ही हाथ से! मगर गिर सकते है; क्योंकि नद्ध स्वाभाविक चीज है। तो बैसाखियां लगा दी हैं, ताकि वे बैसाखियों के सहारे खड़े रहें। और बैसाखियां छप्पर से बांध दी हैं, ताकि लाख उपाय करें तो भी गिर नहीं सकते, छप्पर से लटके रहेंगे। और सोने उनको देते नहीं हैं, सेवकगण पूरे वक्त उनकी सेवा कर रहे हैं, ताकि उनको नद्ध न लग जाए।
और मैंने पूछा: "यह पागलपन किसलिए है,"
किसी ने कहा:"अरे कृष्ण ने गीता में नहीं कहा-निशा सर्वभूतायां तस्यांजागर्ति संयमी! संयमी पुरुष तो जागता है। जब सो जाते हैं तब भी जागता है। यह संयम की पराकाष्ठा है।"
मैंने कहा: "इन्होंने तो कृष्ण को भी मात कर दिया। यह मैंने कभी सुना नहीं कि कृष्ण खड़े श्री बाबा थे। कोई ऐसी घटना नहीं है कृष्ण के जीवन में। ऐसी घटनाएं तो हैं कि वे सोए थे, लेटे थे, जब दुर्योधन और अर्जुन उनके पास गए थे कि महाभारत में हमारे साथ युद्ध में भागीदार हों, तो सोए हुए थे। खड़े श्री बाबा नहीं थे कि खड़े थे। लेटे थे। दुर्योधन तो अकड़ की वजह से सिर के पास खड़ा हुआ। अर्जुन पैर के पास खड़े हुए। अगर खड़े होते तो बडी मुश्किल हो जाती, दुर्योधन कहां खड़ां होता? दुर्योधन पर दया करके वे लेटे हुए थे। नहीं तो संयमी तो जागा ही रहता है। दुर्योधन को देख कर आंख बंद कर ली होंगी कि बेचारा दुर्योधन आ रहा है, सिर के पास खड़ा होना पड़ेगा, अब मैं ही खड़ा हो जाऊं तो यह कहां खड़ा होगा! इसको छप्पर पर चढ़ना होगा।"
कोईकृष्ण के जीवन में तो ऐसा उल्लेख नहीं आता। तो उनका मतलब कुछ और रहा होगा, ये खड़े श्री बाबा समझे नहीं है। और जो इनको समझा रहे हैं, वे भी कुछ समझे नहीं हैं।
कुल मतलब इतना है कि जो व्यक्ति ध्यानस्थ है वह नद्ध में भी, गहरी निद्रा में भी, उसके भीतर का साक्षी भाव जागा रहता है। वह अपने स्वप्नों का भी द्रष्टा होता है। उसका द्रष्टा भाव नहीं खोता। चाहे वह जागे, चाहे सोए, चाहे उठे, चाहे बैठे, उसका द्रष्टा भाव सदा बना रहता है। एक क्षण को भी द्रष्टा-भाव से च्युत नहीं होता। लेकिन खड़े रहने की कोई जरूरत नहीं है। खुद विष्णू महाराज लेटे हुए दिखाई पड़ते हैं क्षीर सागर में। क्या मौज से लेटे हुए हैं! इनको अकल न आयी, नहीं तो खड़े श्री बाबा हो जाते। यह बुद्धूपन पहली दफा इस आदमी को सूझा है!
और जब मैं उनका चेहरा देखा तो उनकी हालत दयनीय थी, दया योग्य थी। आंखें उनकी निस्तेज हो गयी हैं, फीकी हो गयी हैं। हो ही जाएंगी, क्योंकि सारा खून निचुड़ गया है। चेहरा निष्प्राण है, जैसे कोई मुर्दा खड़ा हो। कोई भाव नहीं है। चेहरे पर कोई फूल नहीं खिलते मालूम होते, न कोई दीया जलता मालूम पड़ता है। लेकिन रस क्या है फिर? रस एक है कि यह जो हजारों लोंगो की कतार लगी है चौबीस घंटे, यह जो सम्मान मिल रहा है। तुम कोई भी मूर्खता करवा लो आदमियों से, सम्मान मिलना चाहिए।
रूस में ईसाइयों का एक सम्प्रदाय था जो अपनी जननेंद्रियां काट डालता था, क्योंकि इसी बात को सम्मान मिलता था। ये ही असली ब्रम्हचारी थे। तो हर वर्ष इनकी जमात इकट्ठी होती थी और जिनको इनका शिष्य होना होता था, वे इकटृठे होते थे। बड़ी भीड़ लगती थी, लाखों लोग देखने इकट्ठे होते थे। और उस विक्षिप्तता की अवस्था में बैंड-बाजा रहे हैं, शोरगुल मच रहा है, धूप-दीप जलाए जा रहे हैं। लोग ऐसे जोश-खरोश में आ जाते थे कि कई बार भीड़ में से ऐसे व्यक्ति, जो सिर्फ देखने आए थे, वे उछल पड़ते, कपड़े फेंक देते। और वहां तलवारें रखी रहती थीं, तलवार उठा कर जननेंद्रिय काट डालते। फिर पीछे पछताएं, अब पीछे पछताने से क्या होता है जब चिडिया चुग गयी खेत! मगर तब तक तो सम्मान मिल चुका होता था। और तब तक तो हो ही गए साधु, फिर लौटना भी बहुत मुश्किल है, फिर अपमानजनक है।
इसलिए किसी साधु को हम लौटने नहीं देते। इससे बड़े अपमान की कोई बात नहीं समझी जाती कि कोई आदमी साधु से लौट आए।

एक महिला मेरे पास आ कर रोती थी हमेशा। उसका पति साधु हो गया था। मैंने उसे कहा: "तू ठहर। मैं तेरे पति को जानता हूं। मैं उनको पकड़ूंगा।" मैं काशी गया था, वे मुझे मिलने आ गए। मैंने उन्हें समझाया-बुझाया। अब तक उनकी भी अकल दुरूस्त आ गयी थी एक आठ महीना साधु रहने के बाद। उनको भी समझ में आ गया था कि कुछ सार नहीं है। बुद्धू बन गए। मगर अब किस मुंह से घर लौटें!
मैंने कहा: "तुम फिक्र न करो। हम तुम्हारे घर लौटने का स्वागत करवा देंगे, और क्या चाहिए! बैंड-बाजे से स्वागत होगा, स्टेशन से ही जुलूस निकलेगा। जितना बड़ा जुलूस तुम्हारा साधु होने के वक्त निकला था, उससे बड़ा जुलूस निकलवा देंगे, और क्या चाहते हो?"
सो वे राजी हो गए। उनको मैं समझा-बुझा कर ले आया, मित्रों को खबर की। भीड़-भाड़ इकट्ठी करवा दी, फूल-मालाएं पहना दीं। और तो सब ठीक, चकित मैं तो तब हुआ, जब उनकी पत्नी ने उनको घर में घुसने देने से इनकार कर दिया। उसने कहा: "साधु हो कर और भ्रष्ट होते हो! अरे बेशरम! अब एक भूल की साधु हो कर, अब दूसरी भूल करते हो। तुम्हारे साथ मुझको भी डुबाओगे?"
मैंने कहा: "तूने हद कर दी। तू मेरे पीछे पड़ी थी। मैं तीन दिन इस आदमी
के साथ सिर पचाया, बमुश्किल उसको राजी करवाया। इतनी भीड़-भाड़ इकट्ठी करवायी। ये सब किराए से आदमी लाना पड़े। और तू कहती है घर में नहीं--... ।" उसने कहा: "कभी नहीं! साधु हो गए, अब इनको मैं पतिभाव से नहीं देख सकती। और मैं इन्हें अपनी देह नहीं छूने दूंगी। यह तो बिल्कुलभ्रष्ट हो जाने की बात हो जाएगी। अब जो हुआ सो हुआ।"
वह आदमी बेचारा खड़ा रह गया। मैंने कहा: "अब बड़ी मुसीबत हुई। भैया, तू मेरे घर चल। तेरी दूसरी शादी करवाएंगे, अब और क्या करें! इससे बेहतर स्त्री खोज देंगे, और क्या कर सकतें हैं! अब जो भूल हो गयी कि तुझे समझा कर ले आए... ।"
जब मैंने कहा दूसरी स्त्री खोज देंगे, तब वह स्त्री चौंकी। उसने कहा: "कहीं जाने की जरूरत नहीं है! क्योंकि अगर दुसरी स्त्री का मामला हो तो मुर्दा स्त्री भी जिंदा हो जाती है, एकदम, कि नहीं, यह कभी बर्दाश्त नहीं होगा! चलो घर में अंदर! शांतिपूर्वक घर में रहो!

और वह मेरे पास उनको आने के लिए मना करने लगी कि वहां जाना मत। यह आदमी तुम्हें भ्रष्ट करवा दिया। और अब यह और भ्रष्ट करवाने में लगा हैं कि दूसरी स्त्री खोज देंगे।
साधुओं को हम फिर एक दफा साधु बना देते हैं, उनको इतना स्वागत-सम्मान
दे देते हैं, उनके अहंकार को ऐसा भर देते हैं कि फिर बेचारे अटक जाते हैं। फांसी लग गयी। फिर अगर लौटना चाहें तो हम उनका खूब अपमान करते हैं, भंयकर अपमान करते हैं।
एक जैन मुनि ने मेरी बात मान कर मुनि-वेष छोड़ दिया। मैं हैदराबाद में था। मैं एक सभा में जैनियों की बोलने गया था, वे भी मेरे साथ चले गए। मै मंच पर बैठा। वे भी पुरानी आदत हो गयी थी उनकी, कोई दस साल, बारह साल साधु रह चुके थे, सो वे भी कैसे श्रावकों बीच बैठें! सो वे भी मेरे साथ आ कर मंच पर बैठ गए। अब जैन इसको कैसे बर्दाश्त करें कि जो आदमी साधु रह कर और फिर साधुपन छोड़ दिया, वह मंच पर बैठे! उनके मंदिर में! खुसर-पुसर शुरू हो गयी। मैनें कहा: "मामला क्या है? मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। मैं बोल रहा हूं, आप लोग कुछ खुसर-पुसर कर रहे हैं। बात पहले तय हो जानी चाहिए, बात क्या है?"
उन्होंने कहा कि हमें आपसे कोई एतराज नहीं है, मगर ये सज्जन मंच पर नहीं होने चाहिए। इनको हम नीचे उतारेंगे। इन्होंने मुनि-वेष छोड़ा है। मैंने कहा कि इन्होंने मुनिवेष छोड़ा है, मैंने तो कभी मुनि-वेष ग्रहण भी नहीं किया। इन्होंने कम से कम ग्रहण भी किया था। ये मुझसे तो ज्यादा ही आदर योग्य हैं। बैठे रहने दो, तुम्हारा क्या बिगड़ता हैं? उन्होंने कहा कि नहीं, हमारे मंदिर में यह नहीं होगा। उपद्रव हो जाएगा आप इनको समझा कर नीचे उतार दो।

मैंने देखा कि वह तो लिखा तो मंदिर में था कि "अहिंसा परमोधर्मः" लेकिन हालत वहां ऐसी थी कि वे मारपीट पर उतारू थे उनकी। मैंने उनसे कहा कि भैया, तुम नीचे उतर जाओ, नाहक मारपीट हो जाएगी! मगर वे भी आखिर थे तो जैनमुनि! ऐसे श्रावकों से हार जाएं! और फिर उनको भी उतरने में संकोच मालूम पड़े, पैर अटकें। तो वे मंच से न उतरें, वे एकदम ऐसे चिपक कर बैठ गए मंच से कि मैंने उनसे कहा कि तुम उतरते हो कि वे लोग उतारने को तैयार हो रहे हैं! नहीं उतरे और लोग दौड़ पड़े और उन्हें खींचने लगे नीचे।
मैंने उनसे कहा कि अजीब पागलपन है! न वह आदमी उतरने को तैयार है। उसको बारह साल तक सम्मान मिला है तो वह एकदम से छोड़ने को राजी नहीं। और तुम बारह साल तक सम्मान देते रहे। और मैं तुम्हारा कभी मुनि नहीं रहा और न कभी रहूंगा, मुझको तुम मंच पर बिठाले हुए हो, तो इस बेचारे को बैठा रहने दो! उन्होंने कहा कि आप बैठें, कोई भी बैठ सकता है; मगर इस आदमी ने हमारे साथ दगा किया, धोखा किया। यह भ्रष्ट है! इसको तो हम नीचे उतारेंगे। खीचांतानी हुई। वे उनको नीचे उतार कर रहे। मारपीट की हालत खड़ी हो गयी। जब उन सज्जन ने देखा कि अब पिटने की ही नौबत है, तभी वे उतरे। मगर उस दिन से जो वे नदारद हुए तो मुझे दिखाई नही पडे कि वे कहां गए। फिर मैं उनकी बहुत तलाश करता रहा कि वे गए कहां! मगर उनको ऐसा सदमा पहुंचा कि फिर उनका पता ही नहीं चला आज तक। इस बात को हुए कोई आज बारह साल हो गए। वे कहां भाग गए मंच से उतर कर फिर... मुझे शक्ल नहीं दिखायी। तिरोहित ही हो गए एकदम! सम्मान देते हैं हम--इसलिए सम्मान देते हैं कि फिर लौटना मुश्किल हो जाए। और लौटने वाले को हम अपमान देते हैं, ताकि जिनको सम्मान मिल रहा है वे भी सावधान रहें, कि परिणाम क्या होगा! ये सब अहंकार को भरने की बातें हैं। सीखने से अहंकार भरता है। सबसे ज्यादा सरलता से अहंकार को भरने का जो उपाय है, वह है ज्ञान से भर लेना। सबसे सस्ता मार्ग-शास्त्रों से भर लेना। कुछ लगता नहीं। कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। कोई बड़ी बुद्धिमत्ता नहीं चाहिए। तुम पूछते हो आनंद मैत्रेय: "सीखने से भी अनसीखना क्यों इतना कठिन मालूम पड़ता है?" इसलिए अनसीखना कठिन मालूम पड़ता है, अनसीखने का अर्थ है: अहंकार को खाली करना। अहंकार को खाली करना का अर्थ है: अहंकार को मरना, अहंकार को मरने के लिए तैयार करना, अहंकार की मृत्यू। जैसे ही अहंकार का पोषण बंद हुआ, अहंकार मरा।
महर्षि रमण से एक जर्मन दार्शनिक ने कहा कि मैं बहुत दूर से आपके पास कुछ सीखने आया मुझे सिखाएं।
रमण ने कहा: "फिर तुम गलत जगह आ गए। फिर तुम कहीं और कहीं जाओ। हम तो यहां सिखाते नहीं, भुलाते हैं। अगर कुछ अनसीखना हो तो ठहरो, क्योंकि यहां तो सारी प्रक्रिया यही है कि जो तुम जानते हो, उसको छीन लेना है। क्योंकि तुम्हारा जानना भी भ्रांत है; तुम्हारा नहीं है, थोथा है, बासा है, उधार है, दो कौड़ी का है। उसे छींन लें तो तुम निर्दोष हो जाओ। और निर्दोष चित्त ही जान सकता है।
पंडित का चित्तनिर्दोष नहीं हो जाता। पापी भी पहुच सकते है; पंडित
कभी पहुंचा है, ऐसा सुना नहीं!
मैंने सुना है, एक बार एक पंडित स्वर्ग पहुंचा। वह बड़ा हैरान
हुआ। उसका खूब स्वागत किया गया, खूब बैंड-बाजे बजाए गए। ऐसा स्वागत! सारे स्वर्ग के निवासी इकट्ठे हुए। और उसके साथ ही एक बहुत बड़ा संत, एक बहुत बड़ा ऋषि भी मरा था। उसी दिन। वह भी आया। दोनों करीब-करीब साथ स्वर्ग के द्वार पर पहुंचे। ऋषि का कोई स्वागत ही नहीं किया गया। द्वारपाल ने ऐसा भीतर ले लिया और कहा कि ठीक है, आ जाइए। पंडित बड़ा हैरान हुआ। दिल ही दिल में सोचने लगा कि ठीक ही कहा है कि पांडित्य का सब जगह सम्मान होता है, आज अपनी आंखों से देख लिया कि स्वर्ग में भी... ! यह आदमी तो महर्षि था। इस आदमी को तो मैंने भी सम्मान दिया। इस आदमी के वचनों से तो मधु बरसता था। मगर इसकी भी कोई फिक्र नहीं है। और मेरा तो सब जानना उधार था। अदभुत है पांडित्य की बात! ठीक ही कहां लोगों ने कि सर्वत्र पूजा मिलती है पंडित को। सम्राट को तो अपने देश में मिलती है, पंडित को सब देशों में मिलती है। स्वर्ग तक में यही बात है।

उसकी यह हालत देख कर द्वारपाल ने कहा: "आप भूल में न पड़ें, आप भ्रांति में न पड़े, बात कुछ और है। बात यह है कि ऋषि-मुनि तो यहां रोज आते रहते हैं, पंडित आप पहले हो। आज तक पंडित आया ही नहीं। आप किस भूल-चूक से आ गए हो; फाइल में कुछ गड़बड़ हो गयी, किसी और की जगह आप को ले आया गया! इसलिए इतना उत्सव मनाया जा रहा है, क्योंकि यह अनहोनी घटना है। ऐसा कभी हुआ ही नहीं था आज तक। ऋषि-मुनि तो रोज आतें हैं, अब इनका क्या स्वागत करें! इनकी तो कतार लगी रहती है। आते ही ये लोग हैं। मगर आप अनूठे हैं, अद्वितीय है! आपने तो गजब कर दिया। आपने सब नियम तोड़ दिए। आप अपवाद हैं। सदियां बीत गयीं, जब से स्वर्ग बना आप नहीं आए। आप जैसा कोई व्यक्ति नहीं आया। और हमें शक है कि अब दुबारा शायद फिर कभी नहीं आएगा। कभी एकाध बार भूल हो जाती है। आ गए हैं आप किसी भूल से, तो हम स्वागत कर रहे हैं। आप इस भ्रांति में न हों कि पांडित्य को सम्मान हो रहा है।"
पंडित तो अहंकारी व्यक्ति होता है, महा अहंकारी व्यक्ति होता है। यह
भी हो सकता है कि पंडित अपने को समझता हो कि मैं बड़ा विनम्र हूं। यह भी हो सकता है कि वह विनम्रता दिखाता भी हो। यह भी हो सकता है कि आपसे कहता हो कि मैं आपके चरणों की धूल हूं। मगर जरा उसकी आंखो में देखना, वह यह कह रहा है कि देखो मैं कितना विनम्र हूं, मुझसे ज्यादा विनम्र कोई और है? है कोई पृथ्वी पर माई का लाल, जो मुझसे ज्यादा विनम्र हो? और अगर कोई पंडित तुमसे कहे कि मैं तो आपके चरणों की धूल हूं और तुम कहो कि भैया, यह तो हमें मालूम ही है, कि तुम चरणों की धूल से भी गए-बीते हो-देखना कैसा गुस्सा हो जाता है! एकदम भनभना जाएगा कि क्या कहा। और तुम अगर कहो कि हम तो सिर्फ वही कह रहे हैं जो आपने कहा, हम तो आपकी बात ही स्वीकार कर रहे हैं। वह इसलिए उसने कहीं नहीं थी कि आप स्वीकार करो। वह इसलिए उसने कही थी कि आप कहो कि नहीं नहीं, आप और चरणों की धूल! आप तो मोर-मुकुट है! आप तो सरताज हैं! आप तो कोहिनूर हीरे हैं! आप और चरणों की धूल, कभी नहीं कभी नहीं! यह आपकी विनम्रता है। यही तो सिद्ध करती है कि आप मोर मुकुट हैं!
तीन ईसाई फकीर एक चौराहे पर मिले। एक ईसाई फकीर ने कहा कि हमारा जो आश्रम है, उस आश्रम में जैसा त्याग है, जैसी तपश्चर्या है, जैसा कठोर व्रत-नियमों का अनुशासन है, वैसा कहीं और नहीं।
दूसरे ने कहा: "यह बात ठीक हो सकती है। लेकिन हमारे आश्रम में जैसी ज्ञान की धारा बहती है, जैसा पांडित्य, जैसा उज्ज्वल पांडित्य, जैसी शास्त्रीयता है, जैसे शुद्धशास्त्रों के जानकार हैं, जैसी खोजी हैं, शोध करने वाले हैं-ऐसे कहीं और भी नहीं।"
तीसरा खड़ा मुस्कुराता रहा। दोनों ने कहा: "आप कुछ बोले नहीं?"
उसने कहा: "कुछ बोलने की जरूरत नहीं। हमारा आश्रम विनम्र है। बोलने
की कुछ आवश्यकता नहीं। हम तो विनम्र लोग हैं। विनम्रता में हमसे आगे कोई भी नहीं है। विनम्रता में तो हम समझो गौरीशंकर के शिखर हैं। और ये सब दो कौड़ी की बातें हैं-त्याग तनश्चर्या, और पांडित्य इत्यादि। विनम्रता असली चीज है। क्योंकि कहा है जीसस ने: धन्य हैं व जो विनम्र हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। सो अन्त में पछताओगे। जब देखोगे कि स्वर्ग का राज्य हमारा, तब रखा रह जाएगा सब ज्ञान और रखी रह जाएगी सब तपश्चर्या। तब पछताओगे, तब रोओगे। अभी वक्त है। अभी भी आ जाओ हमारी तरफ। अभी भी विनम्र हो जाओ।
आदमी का अहंकार ऐसा है कि वह किस-किस तरकीब से अपने को भर लेगा, कहना बहुत मुश्किल है। बड़े सूक्ष्म उसके मार्ग हैं। और ज्ञान सूक्ष्मतम प्रक्रिया है। इसलिए अनसीखना कठिन मालूम पड़ता है, मृत्यू जैसा मालूम पड़ता है। छोड़ना ही नहीं चाहता कोई। ऐसा पकड़ते हैं हम? और पकड़ने के लिए हम सब तरह के तर्क इकट्ठा करते हैं, सब तरह के कारण खोजते हैं, सब तरह की व्यवस्था जुटाते हैं। ऐसा नहीं कि हम यूं ही पकड़े हुए हैं, हम पकड़ने के लिए पूरा का पूरा चारों तरफ से तकों का जाल बिछाते हैं। हम सिद्ध करते हैं कि पकड़ना आवश्यक है, अनावश्यक नहीं है। बिना ज्ञान के क्या होगा? बिना शास्त्रों के कैसे तिरोगे? यह तो शास्त्रों के सहारे तो तिरा जाता हैं।

और शास्त्र हैं क्या-कागजों की नावें है! इनमें डूबना हो तो बैठना; तिरना हो तो शायद तैरना ही सीख ले तो काम आए। तैरना ही काम आएगा। ये कागज की नावों में बैठ कर मत चल पड़ना, इनमें बड़ा खतरा है। नावें जैसी लगती हैं ये। बड़ा खतरा यही है कि बिल्कुल नाव जैसी लगती है-कागज की नाव। इसलिए तो उसको नाव कहते हैं। और तुमने असली नाव तो देखी नहीं, कागज की ही नावें देखी हैं। हिन्दुओं की, मुसलमानों की, जैनों की, बौद्धों की, सबकी कागज की नावें हैं। अलग रंग की होंगी, अलग ढंग की होगी, अलग झंडे उड़ रहे होंगे। मगर सब कागज की नावें हैं। और दूसरा खतरा यह है कि किनारे पर ही नहीं डूबतीं कागज की नावें; डूबने में थोड़ा समय लगता है, गलने में थोड़ा वक्त लगता है; सो किनारा भी छुट जाएगा और जब डूबने की घड़ी आएगी, तब तुम हैरान होओगे कि तुम्हें तैरना तो आता नहीं। तैरना तो तुमने कभी सीखा नहीं। तुम अपने पैर पर तो कभी खड़े हुए नहीं। तुमने ध्यान तो कभी सीखा नहीं।
ध्यान तैरने जैसा है और ज्ञान कागजी नाव है। और सस्ते में निपट जाए बात, तो कौन झंझट में पड़े तैरने की! तैरने के लिए साहस चाहिए, छाती चाहिए। क्योंकि दूसरा किनारा दिखायी भी तो नहीं पड़ता-और तूफान है, अन्धड़ है और अज्ञात में उतरना है। इस किनारे पर सब सुरक्षा है। फिर सभी लोग नावों में जा रहे हैं, तुम अकेले ही तैरने की बात करोगे तो लोग कहेंगे: "पागल हुए हो? अरे जहां सब जा रहे हैं, उनके साथ चलो! अकेले मत चल पड़ना, नहीं तो भटक जाओगे। यह भवसागर है, इसमें तो भीड़ के साथ रहना।"
और ध्यान रखना एक बात, इसमें भीड़ जितनी भटकी है, व्यक्ति कभी भटका नहीं होता। इस दुनिया में भीड़ ने जितने पाप किए है, व्यक्ति ने कभी नहीं किए हैं। हिन्दुओं की भीड़ जैसे पाप करती है, वैसा कोई हिन्दू व्यक्ति नहीं कर सकता। मुसलमानों की भीड़ जैसा पाप करती हैं वैसा मुसलमान व्यक्ति नहीं कर सकता। मंदिर जलाना हो तो कोई एक मुसलमान से कहो कि जला दो, तो उसकी भी छाती फटेगी, उसको भी पीड़ा होगी कि मैं यह क्या कर रहा हूं! सोचेगा। मगर अगर भीड़ मुसलमानों की हो-अल्ला हू अकबर! फिर जब भीड़ कर रहीं है तो उत्तरदायित्व खो जाता है। फिर अपना क्या उत्तरदायित्व? इतने लोग कर रहे थे, कोई हम थोड़े ही कर रहे थे। हम तो सिर्फ संग साथ हो लिए थे। हम न भी होते तो भी मंदिर जलता ही। कोई हमारे होने से नहीं जल गया। और जब इतने लोग कर रहे थे तो ठीक ही कर रहे होंगे। इतने लोग गलत कैसे हो सकते है?
किसी व्यक्ति से पूछो कि किसी मुसलमान की छाती में छुरा भोंक सकोगे? व्यक्ति से। निपट व्यक्ति से। तो वह भी सोचेगा कि आखिर मुसलमान, यह मुसलमान, जिसको शायद पहले कभी देखा भी नहीं, झगड़ा-झांसे का तो सवाल नहीं, मुलाकात भी नहीं, शत्रुता तो दूर रही, मित्रता भी नहीं। शत्रु होने के पहले मित्र तो होना जरूरी है! परिचय भी नहीं है, राम-राम भी नहीं हुई कभी। इस अपरिचित अनजान आदमी की छाती में छुरा भोंक रहा हूं! इसकी भी मां होगी, जो घर राह देखती होगी, जैसे मेरी मां राह देखती है। इसकी भी पत्नी होगी, जो विधवा हो जाएगी। शायद जिंदगी भर भीख मांगेगी, कि उसे वेश्या हो जाना पड़े। इसके भी बच्चे होंगे, जो अनाथ हो जाएंगे। मैं यह क्या कर रहा हूं? और इसने क्या बिगाड़ा है?
लेकिन अगर भीड़ इस आदमी को मार रही हो, फिर तुम्हें चिंता नहीं होती। जिम्मा भीड़ का हो गया।
भीड़ में व्यक्ति का उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। कोई उत्तरदायित्व किसी का नहीं रह जाता। इसलिए भीड़ ने जैसे पाप किए हैं दुनिया में, व्यक्तियों ने नहीं किए। मैं व्यक्ति का समर्थक हूं, भीड़ का विरोधी हूं। मैं चाहता हूं दुनिया में व्यक्ति ही व्यक्ति रह जाएं, भीड़े समाप्त हो जाएं। न कोई हिन्दू हो, न कोई मुसलमान हो, न कोई जैन हो। व्यक्ति हो। फिर तुम्हें जो प्रीतिकर लगे, व्यक्ति की हैसियत से करो। तुम्हें अगर प्रीतिकर लगता है महावीर का रास्ता, तो व्यक्ति की हैसियत से चलो उस रास्ते पर। मगर भीड़ के अंग मत बनो। तुम्हें अगर प्रीतिकर लगती है मुहम्मद की बात तो ठीक है, तुम बिल्कुल मालिक हो अपने, तुम उस मार्ग से चलो। मगर भीड़ के हिस्से मत बनो।

दुनियां से भीड़े मिट जाएं तो दुनिया से निन्यान्नवे प्रतिशत पाप मिट जाएं। मगर भीड़ो के नाम पर सब हो जाता है। "इस्लाम खतरे में है!" जैसे कि इस्लाम भी खतरे में हो सकता है! इस्लाम क्या खतरे में होगा? कैसे खतरे में होगा? इस्लाम को जला सकते हैं कि पानी में डुबा सकते हैं? क्या खतरा करोगे इस्लाम का? मगर कोई पूछता ही नही। "इस्लाम खतरे में है" बस-भीड़ पागल हो उठती है। "हिन्दू धर्म खतरे में है"--भीड़ पागल हो उठती हैं। बस भीड़ की याद दिला दो कि लोग चल पडे। फिर लोगों से तुम कुछ भी करवा लो। भारत के नाम कोई पाप करवा लो; यह बड़ी भीड़ है। पाकिस्तान के नाम पर कोई भी पाप करवा लो; यह बड़ी भीड़ है। ईरान के नाम पर कोई भी पाप करवा लो-करवा रहे है लोग अभी। कोई भी पाप!
अभी ईरान के बादशाह के पिता का मकबरा जो करोड़ों रूपए की लागत से बना था, एक सुंदरतम इमारत थी दुनिया की, वह मुल्लाओं ने खड़े हो कर अभी चार दिन पहले डायनामाइट लगवा कर उड़वा दिया। बुलडोजर चलवा कर संगमरमर की वह अद्भूत इमारत मिट्टी में मिलवा दी। और उसकी जगह पर बनवा रहे हैं वे पेशाबघर-जनता के लिए, सार्वजनिक पेशाबघर। ये मुल्ला, हैं, ये अयातुल्ला हैं! ये पंडित हैं, ये धार्मिक हैं! यह पागलों की जमात! मगर भीड़ जो भी करवा ले।
भीड़ के खिलाप व्यक्ति को बल देना जरूरी है। और व्यक्ति होने का साहस
ही धर्म है। भीड़ में डूबना राजनीति है। व्यक्ति होना धर्म है, अध्यात्म है।
लद गए राजनीति के दिन, चुक गए राजनीति के दिन। अब एक सूर्योदय होना चाहिए, जो व्यक्ति का हो, जिसमें व्यक्ति की गरिमा प्रतिष्ठित हो। और इसके लिए सबसे बड़ा काम यह होगा कि हम बहुत-सी बातें जो सीखें बैठे हैं, उनको अनसीखा करें।
क्या-क्या तुम सीखे बैठे हो, कभी तुमने सोचा है? लेकिन अंधे की तरह चले जाते हो। किसी हिन्दू से पूछो कि यह चुटैया किसलिए बढ़ा रखी है? सोचा ही नहीं उसने कभी। और जो सोचते हैं, वे और नालायकी की बात बताएंगे। एक किताब मैं पढ़ रहा था-"हिंदू धर्म क्यों?" सात सौ पृष्ठों की बड़ी किताब है, उसमें हिंदू धर्म को वैज्ञानिक सिद्ध किया गया है। हर चीज वैज्ञानिक! सभी की यह चेष्टा है इस समय कि हर चीज वैज्ञानिक सिद्ध कर दो, क्योंकि विज्ञान की साख है। तो कुछ भी उल्टा-सीधा, लेकिन किसी तरह वैज्ञानिक सिद्ध करने कोशिश करो। तो चुटैया वैज्ञानिक है, उस किताब के लेखक ने लिखा है। वे एक हिंदू संन्यासी हैं। संन्यासी इस तरह की बातें करते है! लेकिन भीड़ में चाहे संन्यासी हों, चाहे महात्मा हों, चाहे साधू हों, उनकी हैसियत अध्यात्म की नहीं होती। तो उन्होंने लिखा है कि जिस तरह बड़े-बड़े मकानों पर लोहे को सीखंचा लगा देते हैं; ताकि बिजली वगैरह गिरे तो मकान को कोई नुकसान न हो, लोहे के सींखचे में से बिजली प्रवेश करे और जमीन में चली जाए-ऐसे हिन्दुओं ने सबसे पहले यह विज्ञान खोजा। चुटैया में गांठ बांध कर खड़ी रखो, इससे बिजली वगैरह गिरेगी तो तुमको कोई हानि नहीं होगी। यह लोहे का सीखंचा है!
इन सज्जन से एक धर्मसभा में मेरा मिलना हो गया। मैंने कहा कि रूको, आपकी चुटैया कहां है? क्योंकि हिंदू संन्यासी तो बिल्कुल घुटमुण्ड होता है, चुटैया होती ही नहीं उसकी। संन्यासी तो बिल्कुल घुटमुण्ड होगा। मैंने कहा: "अगर तुमने जो लिखा है वह सच है, तब तो बिजलियां खोज-खोज कर संन्यासियों पर गिरेंगी। ऐसी सरपट खोपड़ी, जैसे रेसकोर्स का मैदान! बिजलियों को तो मौज आ जाएगी।"
कितने संन्यासी मरे हैं बिजलियों से, मैंने उनसे पुछा। संन्यासीतो बचने ही नहीं चाहिए। जहां जाएंगे बेचारे, फौरन बिजली गिरी, क्योंकि वह चुटैया है ही नहीं जो बचाए।
उन्हीं सज्जन ने लिखा है कि हिंदू इसलिए खड़ाऊं पहनते हैं, क्योंकि खड़ाऊं अंगूठे और अंगुली के बीच में दबानी पड़ती है, उससे एक नस पर दबाव पड़ता है। उस नस के दबाव के कारण आदमी में ब्रम्हचर्य सधता है।
क्या गजब की बातें कर रहे हो! अगर इतना मामला आसान हो तब तो हिंदुस्तान की आबादी का मसला अभी हल हो जाए; सिर्फ खड़ाऊ पहनाने की जरूरत

है। कहां के संतति-नियमन के गलत-सलत साधन और क्यों ब्रम्हचर्य की शिक्षा दे रहे हो लोगों को? सिर्फ खड़ाऊं पहनाओ, बस पर्याप्त हैं। और खड़ाऊं पहनाने से अगर नस दबती है, वह भी पैर की, अंगूठे के पास की, तो नसबंदी करने की क्या जरूरत है? जाकर अस्तपाल में पैर के अंगूठे की नस ही क्यों नहीं दबवा लेते? एक दफा दबवा लो इकट्ठा तो फिर जूता पहनो, चप्पल पहनो, जो पहनना हो पहनो। ब्रम्हचर्य को उपलब्ध हो गए। फिर तो कोई अड़चन ही न रही।
तो मैंने उनसे पूछा कि ऋषि-मुनियों के बच्चे कैसे पैदा हुए? और इस देश में तो सभी लोग कहते हैं कि हम ऋषि-मुनियों की संतान हैं। इतनी संताने ऋषि- मुनियों की! और हर ऋषि-मुनि के बच्चे थे। हिन्दू ऋषि-मुनि कोई ब्रम्हचारी नहीं थे; काफी बच्चे-कच्चे थे उनके। खड़ाऊं भी पहने रहे और बच्चे-कच्चे भी होते रहे! तो कोई जंतर-मंतर जानते होंगे कि नस को दबने भी न दिया, खड़ाऊं भी पहनी और नस के दबने से भी बच गए। या फिर ये बच्चे नाजायज होंगे, कि ऋषि-मुनि खड़ाऊं पहने रहे और लुच्चे-लफंगे बच्चे पैदा करते रहते। क्या, मामला क्या है?
वे तो एकदम भनभना गए कि आप किस तरह की बातें कर रहे हैं! आप हिंदू धर्म
के दुश्मन हैं!
मैंने कहा: "मैं किसी का दुश्मन नहीं हूं, न किसी का दोस्त हूं। मैं तो सिर्फ यह पूछ रहा हूं कि ये बेवकूफी की बातें हैं और इनको तुम विज्ञान कहते हो!"
लेकिन सब धर्मो की चेष्टा चलती है कि अपने को वैज्ञानिक सिद्ध करने
की जिस तरह भी बन सके, उलटे-सीधे ढंग से।
भीड़ यह कोशिश करती है कि हम बहुत समझदार हैं और भीड़ नामसमझ होती है। भीड़ समसामायिक भी नही होती, समझदार होना तो दूर है। भीड़ रहती है दो-तीन हजार साल पहले।
अनसीखना करना होगा ये सब बातें। व्यर्थ की बातें छोड़नी पड़ेंगी। ये टुच्ची बातें हैं। और इन्हीं टुच्ची बातों के भेद हैं तुममें। कोई बड़े भेद नहीं हैं। ईसाई में और हिंदू में, हिंदू में और जैन में, जैन में और बौद्ध में कोई बड़े भेद नहीं हैं-टुच्ची बातों के भेद हैं, दो कौड़ी की बातों के भेद हैं। मगर भेदों में तलवारों खिंची रहीं, गर्दनें कटती रहीं, हत्याएं होती रहीं। क्योंकि हम उन भेदों को बहुत महत्तवपूर्ण समझते हैं। अनसीखा करो यह सब कचरा। यह कचरा हटाओ! कठिन तो है, क्योंकि इसको हटाते वक्त छाती फटेगी। लगेगा कि सब गया। यही तो हमारी संपदा थी। यही तो हमारे विचार थे। यही तो हमारी संस्कृति थी। फिर हमारी भारतीय संस्कृति का क्या होगा! फिर हमारे धर्म का क्या होगा! फिर हमारा प्राचीन सनातन धर्म, इसका क्या होगा!
तुमने कुछ ठेका लिया हुआ है इन सब चीजों के बचाने का? तुम्हें प्रयोजन है? तुम बच जाओ तो पर्याप्त। तुम अपने जीवन को अनुभव कर लो तो काफी। और यह कचरा है तो जाने दो। इसको बचाने की कोई आवश्यकता नहीं-सिर्फ भारतीय है, इसलिए बचाएंगे; कि हिंदू है, इसलिए बचाएंगे; कि जैन है, इसलिए बचाएंगे। सत्य है तो बचेगा, असत्य है तो जाने दो। लेकिन सत्य बचेगा तुम्हारे अनुभव से, तुम्हारे तथाकथित शास्त्रों को पकड़ लेने से नहीं।
काश हम अपने शास्त्रों को एक बार फिर से गौर कर के देखें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे-कितना कचरा भरा है! और हम पूजा किए चले जा रहे हैं।
छोड़ना कठिन तो है आनन्द मैत्रेय, लेकिन छोड़ना अत्यंत अनिवार्य है। बिना छोड़े, बिना इन सब मूढ़तापूर्ण धारणाओ को अंधविश्वासों को त्यागे कोई व्यक्ति अपने भीतर के चैतन्य को निर्मल नहीं कर सकता, न उस दर्पण को साफ कर सकता है। क्योंकि धूल से मोह है, तो दर्पण कैसे साफ करोगे? और दर्पण साफ हो तो दर्पण में प्रतिबिंब बने परमात्मा का। परमात्मा तो मौजूद है; हमारा दर्पण गंदा है।

तीसरा प्रश्न: ओशो, मैं भी शादी करना चाहता हूं। आपके कल के प्रवचन के बाद मैं भी डांवाडोल हो गया हूं। ओशो, मैं क्या करूं?

प्रमोद! भारतीय हो कर इतनी जल्दी डांवाडोल होते हो! शर्म नहीं आती? कभी नहीं! झंडा ऊंचा रहे हमारा! कुछ भी हो जाए, अपनी बात पर जमे रहो। ऐसी बातें तो लोग कहते ही रहते हैं, सुनते ही क्यों हो? बहरे बन कर बैठो। जब ऐसी खतरनाक बातें कहीं जाएं, कान में अंगुलियां डाल लो।
डांवांडोल! यह तो लक्षण नहीं। यह तो सनातन-धर्मियों का लक्षण है ही नहीं। हम डांवांडोल तो हुए ही नहीं सदियों से। हम तो जहां बैठे हैं वही बैठे हैं। हम इंच भर नहीं सरकते। दुनिया सरक जाए, दुनिया कहीं चली जाए, हमें फिक्र नहीं। हमने तो जो पकड़ लिया सो पकड़ लिया। हम कोई धोखेबाज नहीं हैं, दगाबाज नहीं हैं। हम कोई बेईमान नहीं है। अरे एक दफा जो पकड़ा सो पकड़ा, फिर लाख बुद्धि कहे कि गलत है, हम बुद्धि की भी नहीं सुनेंगे। विवेक कुछ भी कहे, विवेक को अनसुना करो।
ऐसा महान कार्य करने जो रहे हो-विवाह करने! और विवेक की सुनोगे तो मुश्किल में पड़ जाओगे। विवेक इत्यादि तो विवाह के बाद। पहले विवाह तो हो जाने दो। फिर तो अड़चनें बहुत आएंगी। मुझे क्या पता कि तुम भी यहां हो, मैं कभी ऐसी बात ही नहीं करता। अब मुझसे जो भूल हो गयी, माफ करो। ऐसे भी बहुत अड़चनें आती हैं, और यह अड़चन आ गयी! शुभ कार्य में हजार बाधाएं पड़ती हैं! नसरूद्दीन का एक धनपति की लड़की से प्रेम चल रहा था। दोनों समय निकाल
कर एक-दूसरे को मिला करते थे। नसरूद्दीन उसके सामने अनेकों बार विवाह का प्रस्ताव रख चुका था, मगर वह हर बार टाल जाती थी। एक दिन उसने बड़े ही घबड़ाए स्वर में नसरूद्दीन से कहां कि जानते हो नसरूद्दीन, कल पापा का दिवाला निकल गया!
नसरूद्दीन बोला: "मैं पहले ही जानता था कि वह बुड्ढा, वह खूसट हमारे विवाह में कोई न कोई अड़चन अवश्य खड़ी करेगा!"
अड़चनें तो आ सकती हैं हजार! अड़चनों की कोई कमी है? जल्दी करो! कहीं कोई अड़चन ऐसी न आए कि जिससे विवाह करने जा रहे हो उसके पिता का दिवाला निकल जाए, कि जिससे विवाह करने जा रहे हो वह किसी और से विवाह करने को उत्सुक हो जाए, कि जिससे विवाह करने जा रहे हो तुम्हीं उसमें उत्सुक न रह जाओ। देर नहीं करनी, अच्छे काम में कभी देर नहीं करनी। काल करै सो आज कर, आज करै सो अब; पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब?
मुल्ला नसरूद्दीन के दफ्तर में, जैसा भारतीय सभी दफ्तरों में चलता है, कोई काम नहीं करता था। लोग गपषप करते, तम्बाखू बनाते हाथ में, पान चबाते, पिचकारी मारते। टांगे फैला कर कुर्सी पर झपकियां लेते, अखबार पढ़ते। सब करते-सिवाए काम के। घबड़ा गया नसरूद्दीन। एक मनोवैज्ञानिक से सलाह ली। उसने कहा: "तुम यह सूत्र टांग दो जगह-जगह, हर टेबिल पर। इससे उनको बोध आएगा।"
सो नसरूद्दीन ने यह दोहा जगह-जगह टांग दिया-सुंदर अक्षरों में लिखवा कर। हर टेबिल पर, आगे-पीछे, कहीं से भी नजर जाए तो दिखाई पड़ता रहे। काल करै सो आज कर, आज करै सो अब; पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब?
तीसरे दिन मनोवैज्ञानिक नसरूद्दीन को रास्ते में मिला, हाथ पर पलस्तर चढ़ा था नसरूद्दीन के, सिर में पट्टी बंधी थी, लंगड़ा कर चल रहा था। पूछा मनोवैज्ञानिक ने: "क्या हुआ?"
नसरूद्दीन ने कहा: "अब तुम कुछ बोलो मत। अब जो हुआ सो हुआ। वह तो यह कहो कि मेरी हालत अभी खराब है, नहीं तो मजा चखाता कि तुम्हें छठी को दूध याद आ जाता। सब मनोविज्ञान भुला देता। यह तुम्हारे दोहे की बदौलत है।" मनोवैज्ञानिक ने कहा: "मैं कुछ समझा नहीं।"
नसरूद्दीन ने कहा: "तुम समझोगे भी नहीं, तुममें बुद्धि नहीं है। अरे नहीं चलता था काम तो ठीक था, कम से कम सब चलता तो था, काम नहीं चलता था कोई बात नहीं। मगर जिस दिन यह मैंने सूत्र टांगा तुम्हारा, उसी दिन गड़बड़ हो गयी। मैनेजर मेरी पत्नी को ले भागा और चिठ्ठी लिख कर छोड़ गया-"बहुरि करोगे कब, पल में परलय होएगी! सोच तो रहा था बहुत दिन से, मगर आपने खूब चेताया; सो मैंने सोचा कर ही गुजरो जो करना है। आप ठिक कहते हैं।" चिठ्ठी लिखकर गया हैं कि आप ठिक कहतें हैं। असिस्टेंट मैनेजर मेरी स्टेनो को ले भागा। कैशियर साफ कर दिया पूरी तिजोड़ी और तिजोड़ी पर तख्ती लटका गया-वही तख्ती जो

मैने लटकायी थी उसके दफ्तर में। और यह तो सब ठीक था; वह जो चपरासी था वह एकदम अंदर घुस गया और उसने मेरी पिटाई कर दी। मैंने उससे पूछा, यह तू क्या करते है? उसने कहाः "यह मैं सोच रहा था आज कम से कम पन्द्रह साल से; मगर तुमने वह दोहा क्या लटकवा दिया, मैंने भी सोचा कि अरे जो करना है, सो कर ही लो! बात तो सच्ची है, कि फिर क्या पता पन्द्रह साल तो यू ही निकल गए! अरे कल क्या भरोसा, तुम न रहो, मै न रहूं!" सो यह हालत देख रहो मेरी? जरा ठिक हो जांऊ, फिर आ कर तुम्हें मजा चखाऊंगा।"
मुझे पता नहीं था, प्रमोद कि तुम शादी करना चाहते हो, नही तो कभी ऐसी
बात नहीं करता। सुनी अनसुनी करो। समझो कि कही ही नहीं। शादी कर गुजरो। शादी में एकदम खराबियां हीं खराबियां नहीं हैं, बड़े लाभ भी हैं। शादी न हो तो संसार वैराग्य पैदा ही न हो। सारा वैराग्य ही विवाह पर खड़ा हुआ है। यह तो का उपद्रव ही हैं जो आदमी को विरागी बनाता हैं। नही ंतो लाख कहते रहें महात्मागण, कोई विरागी होने वाला है? ये तो पत्नियां ही हैं जिन्होंने न मालूम कितने लोंगो को स्वर्ग पहुचा दिया! पता नहीं कौन नासमझ कहता है कि स्त्रियां नरक के द्वार हैं। स्वर्ग के द्वार हैं! उसमें तरमीन कर लो, सुधार कर लो!
हां, पत्नी जरा ढंग की चुनना। ऐसी चुनना कि बस आवागमन से छुटकारा हो जाए। बार-बार फिर न चुनना पड़े। जब चुन ही रहे हो... ।
आखिर बहुत सोच-विचार के बाद चंदूलाल ने एक धनी विधवा से शादी कर ही ली। काफी उत्सव चला। बधाई देने के लिए आए ढब्बू जी और नसरूद्दीन। ढब्बू जी ने चंदूलाल के कान में कहा कि पता नहीं यार, तुमने क्यों इस बदसुरत खूसट बुढ़िया से शादी कर ली! जरा देखो तो मुंह में एक दांत तक नहीं और आंखे भी कैसी भैंगी हैं कि एक कहीं जा रही है, दूसरी कहीं जा रही है!
चंदूलाल बोला: "मित्रों, ये बातें कान में कहने की नहीं। अरे तुम खुल्लमखुल्ला कह सकते हो, क्योंकि इसके कान भी खुदा के फजल से बंद हो चुके है। अरे बहरी भी है! खोज के लाए हैं।"
प्रमोद, खोजो ही तो फिर ठीक से ही खोज लेना, कि बस इस जीवन के बाद फिर दोबारा खोजने की जरूरत न रहे। ऐसा अनुभव हो जाए कि लाख तुम उपाय करो तो भी माया-मोह मिटा कर रहे। लाभ हैं, एकदम हानियां ही हानियां नहीं हैं। मुल्ला नसरूद्दीन के मित्र चंदूलाल एक दिन उनसे मिलने आए। नसरूद्दीन
ने जब चंदूलाल को देखा तो एकदम प्रसन्नता से भर गए और लिपट गए चंदूलाल से और उन्हें गोद में उठा कर नाचने लगे। चंदूलाल की उन्होंने बड़ी आवभगत की। पत्नी तो यह देख कर बहुत जलभुन गयी। जब चंदूलाल चले गए तो गुलजान क्रोध से बोली कि सुनो जी, शर्म नहीं आती तुम्हे? अपने मित्रों के आने पर तो तुम खुशी से पागल हो जाते हो, उन्हें गोद में उठा लेते हो और नाचने लगते हो। लेकिन मेरी सहेलियां जब-जब आती हैं तो तुम ऐसा दिखलाते हो कि जैसे तुम्हें उनके आने से कोईखुशी ही न हुई हो।
नसरूद्दीन बोला: "अरे नासमझ, प्रसन्नता तो उस समय भी मुझे बहुत होती है, चाहता हूं कि दौड़कर उन्हें गोद में उठा लूं और उठा कर नाचने लगूं, आलिंगन में भर लूं। मगर जैसे ही तेरा खयाल आता है कि सब प्रसन्नता का सत्यानाश हो जाता है।
प्रमोद, एक स्त्री चाहिए ही चाहिए-दूसरी स्त्रियों से बचाने के लिए। नहीं तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे। एक स्त्री तो होनी ही चाहिए, आदमी बड़ा कमजोर है, बहुत धक्कम-धक्की खाएगा। एक रक्षक चाहिए ही। हालांकि पतियों को खयाल यही होता है कि वे रक्षक हैं। स्त्रियां बड़ी होशियार है, वे यह भ्रांति देती हैं कि आप रक्षक हैं। मगर सचाई उलटी है। सचाई यह है कि पन्ती रक्षा करती है, नहीं तो ये इस गड्ढे में गिरेंगे उस गड्ढे में गिरेंगे। ये जगह-जगह गिरेंगे, हाथ-पैर तोड़ कर आएंगे, रोज इनकी हालत खराब होती चली जाएगी।
चंदूलाल का बेटा उससे पूछ रहा था कि पापा, यह सरकार ने नियम क्यों बनाया है कि पुरुष एक ही स्त्री से विवाह कर सकता है?
चंदूलाल ने कहा: "बेटा, सरकार उनकी रक्षा के लिए है जो स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते। यह पुरुषों के हित के लिए बनाया हुआ है। नहीं तो

पुरुष तो ऐसी झंझट में पड़ेंगे और ऐसे पिटेंगे कि जीवन तो वैसे ही दूभर है, और दूभर हो जाएगा।"
तो प्रमोद, पत्नी रक्षा करेगी। खुशी का तो सत्यानाश हो जाएगा, वह दूसरी बात है, उसकी तुम फिक्र न करो। वह तो अच्छा ही है हो जाए, क्योंकि वह हो जाए तो फिर आवागमन से छूटने की इच्छा जगती है। इस देश में जितनी आवागमन से छूटने की आकांक्षा है उतनी दुनिया के किसी देश में नहीं है। उसका कारण? इस देश में विवाह जैसा मजबूत है, वैसा दुनिया में कहीं भी नहीं। सो दुनिया में थोड़ी आशा रहती है लोंगो को। यहां बिल्कुल आशा नहीं रहती।
एक महिला ने पूछा है, उसी प्रश्न के उत्तर में, जो मैंने कहा उस बाबत
कि आप जो विवाह के संबंध में कहते हैं, उससे मैं राजी नहीं हूं। जब से मैं और मेरे पति आपके संन्यासी हुए हैं, तब से हमारे जीवन में आनन्द ही आनन्द है। पहले भी हमारा जीवन बड़ा प्रेमपूर्ण था, अब और भी प्रेमपूर्ण हो गया है।
हे देवी, कम से कम पति के दस्तखत तो करवा लेती! बिना पति के दस्तखत के मैं नहीं मानूंगा। पतिदेव क्यों चुप हैं? वे भी तो बोलें! और महिला ने लिखा है कि मुझे बहुत दुख हुआ कि आपने विवाह के संबंध में ऐसी बात कह दी। अगर सच में ही जीवन इतना प्रेमपूर्ण है और इतना आनंदपूर्ण है तो इतनी चोट खाने की बात नहीं। कहीं कुछ गड़बड़ होगी। कहीं कोई घाव होगा, जो छू गया होगा। कहीं कोई ड़र लगा होगा, कहीं कुछ भय लगा होगा। नहीं तो बात चुभती नहीं। चुभने की कोई जरूरत नहीं।
मैं कुछ प्रेम के विरोध में नहीं हूं। मैं तो सिर्फ इस बात का तुम्हें इशारा देना चाहता हूं कि जीवन में जितने कम बंधन हों उतना अच्छा। प्रेम करो, जी भर कर करो, मगर बंधन क्यों बांधने? बंधन से इतना आग्रह क्यों है? क्या तुम्हें प्रेम पर भरोसा नहीं है? प्रेम पर भरोसा है ही नहीं। प्रेम पर किसी को भरोसा नहीं है। इसलिए हमें कानून की जरूरत पड़ती है। अगर प्रेम पर भरोसा हो तो कानून की कोई जरूरत नहीं है। प्रेम पर्याप्त होगा। विवाह अनावश्यक हो जाएगा।
विवाह इसलिए आवश्यक है कि प्रेम तो संदिग्ध है मामला, कितनी देर टिकेगा! फिर कानून आएगा, अदालत रहेगी, पुलिस वाला रहेगा, मजिस्ट्रेट रहेगा, समाज, प्रतिष्ठा, ये सब रोकेंगे। अगर प्रेम पर सच में भरोसा हो तो विवाह बिल्कुल अनावश्यक है। लेकिन प्रेम है कहां? और प्रेम इस देश में तो हो कैसे सकता है, यहां तो नियोजित विवाह हो रहा हैं।
अब ये प्रमोद कह रहे हैं कि मैं विवाह करना चाहता हूं। तुम विवाह करना चाहते हो कि तुम्हारे माता-पिता विवाह करना चाहते हैं? और वे तो कर ही चुके विवाह, अब उनको क्या परेशानी है? तुम विवाह करना चाहते हो कि पंडित जन्म कुंडली बिठालने को बैठे हुए हैं कि वे जन्म-कुंडली मिला कर रहेंगे तुम्हारी? कि जब तक तुम जन्म-कुंडली न मिलाओगे तब तक उनको चैन न पड़ेगा। और जिनसे तुम जन्म-कुंडली मिलवाने जाते हो, उनकी हालत तो देखो। उनकी और उनकी पत्नी के बीच तो देखो-कैसे राग छिड़े हैं! वे अपनी नहीं मिला पाए, वे तुम्हारी मिला रहे हैं!
इस देश में सब जन्म-कुंडलियां मिल कर विवाह होते हैं और फिर कैसा तुमुलनाद छिड़ता है! कहीं कुंडलियां मिलाने से कोई विवाह बनते हैं? कहीं पंडितों से, ज्योतिषियों से मां-बाप से निर्णय होने वाला है? हां, तुम्हारा किसी से प्रेम हो, तुम्हारी प्रीती हो, तो ठीक। मैं प्रेम को पक्षपाती हूं। मैं इतना प्रेम को पक्षपाती हूं, इसलिए मैं कहता हूं कि विवाह की इतनी आतुरता क्या? इतनी जल्दबाजी क्या? क्या तुम्हें डर है कि अगर दो-चार दिन विवाह नहीं किया तो फिर ऐसा न हो कि प्रेम खिसक जाए? अगर ऐसा डर है तो रुको, क्योंकि दो-चार दिन बाद चाहे विवाह करो या न करो, वह खिसक ही जाएगा। और एक दफा विवाह कर लिया और फिर खिसक गया, तब क्या करोगे? तब बहुत मुश्किल में पड़ जाओगे। तब बहुत असुविधा अनुभव करोगे। तब फांसी लग जाएगी।
प्रेम करो, वर्ष दो वर्षप्रतीक्षा करो। एक दूसरों के साथ रहो। जल्दबाजी बच्चों की मत करो। दो वर्ष कम से कम मौका दो। और तुम्हें लगे कि

दोनों का जीवन एक आनंदपूर्ण यात्रा पर निकल रहा है साथ-विवाह हो गया! फिर विवाह की औपचारिकता निभानी हो तो निभा लेना। और जब तक यह निश्चित न हो जाए कि तुम्हारा प्रेम इतना थिर है, तब तक विवाह करना मत। और जब तय हो जाए कि प्रेम थिर है, तभी बच्चों को जन्म देना! क्योंकि जो बच्चे प्रेम से पैदा होते है वे ही जायज होत है, बाकी सब बच्चे नाजायज हैं। सिर्फ इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुमने अपनी पत्नी से ही बच्चे पैदा किए। अगर वे बिना प्रेम के पैदा हो रहे है, न तुम्हारा पत्नी से कोईप्रेम है न उसका तुमसे कोईप्रेम है, क्योंकि साथ-साथ रह रहे हो, मजबूरी है, गुजार रहे हो, अब इसी गुजारने में बच्चे भी पैदा हुए जा रहे हैं।
चंदूलाल गए थे तलाक देने। पत्नी एकदम उनको पकड़ कर ले गयी अंदर। चंदूलाल तो दुबले-पतले आदमी हैं। पत्नी भारी मजबूत। अंदर ले गयी एकदम और वकील से कहा कि हमें तलाक चाहिए।
सब बंटवारा हुआ जाता था लेकिन झंझट एक आ गयी कि तीन बच्चे थे, तो वकील
ने कहा: "तीन बच्चे हैं, इनका बंटवारा कैसे हो?"
तो पत्नी ने कहा कि उठो जी, अगले साल आएंगे! जब चार बच्चे हो जाएंगे तक बंटवारा कर लेंगे।
वकील भी चौंका। उसने कहा कि तरकीब तो बड़ी गजब की निकाली! मगर यह बच्चा किस तरह होगा, जो कि तलाक के लिए पैदा किए जा रहा है? यह बच्चा किस तरह का होगा!
पत्नी ने कहा: "तुम बातें फिजूल की मत करो, तुम्हें अपने कानून से मतलब, मुझे अपनी जिंदगी से मतलब। इस चंदूलाल का भरोसा ही किसको है, इसके भरोसे बैठती हो तीन भी नहीं होते!"
बच्चे इकट्ठे होते चले आते हैं, फिर जाल फैलता चला जाता है। फिर इनकी व्यवस्था करनी है, फिर उनको शिक्षा देनी है। फिर तुम उलझते चले जाते हो। प्रमोद, विवाह करना, पहले प्रेम तो करो! पहले बीज तो बोओ, फिर फसल काटना। एकदम फसल ही काटने लगे! कहते हो: "हम तो फसल काटेंगे!" फसल क्या काटोगे? कागजी फूल खरीद लाओगे बाजार से। प्लास्टिक के फूल खरीद लाओगे। असली गुलाब चाहिए तो फिर मेहनत करनी होगी।
प्रेम तपश्चर्या है। प्रेम साधना है। और प्रेम से जो फूल निकलें वे
ही सुंदर हैं। प्रेम से अगर विवाह भी निकले तो सुंदर है। मैं विवाह के विपरीत नहीं हूं। मै उस विवाह के विपरीत हूं, जो यह मान कर चलता है कि विवाह से प्रेम निकलेगा। ऐसा न कभी हुआ है, न हो सकता है। हां, कभी संयोगवशात, जैसे कोई अंधेरे में तीर मारता रहे, हजार तीर चलाए और एकाध लग जाए निशाने पर, लग जाए तो तीर, नहीं तो तुक्का--वह बात अलग। ऐसे कभी-कभी तुक्के लग जाते हैं और तीर हो जाते हैं। मगर पृथ्वी प्रेम से शून्य है। मैं चाहता हूं पृथ्वी प्रेम से पूर्ण हो। मैं चाहता हूं कि तुम परमात्मा का जीवन से ऊब कर मांगो। मैं चाहता हूं तुम परमात्मा को जीवन के उत्सव से मांगो। मैं चाहता हूं तुम जीवन के आनंद से भर कर परमात्मा को पुकारो। उसे धन्यवाद दे कर पुकारो। तुम पुकारो इसलिए कि तूने इतना दिया मुझे-अनुग्रह से, आनन्द से, महोत्सव से, अहोभाव से!
मैं वैराग्य के पक्ष में नहीं हूं। मैं तो चाहता हूं कि तुम परमात्मा को, जीवन की इतनी यह महान भेंट जो उसने तुम्हें दी है, इसका रस पीकर, इसका मधुरस पीकर, इसकी मदिरा में मस्त हो कर पुकारो! तब तुम्हारे जीवन में एक और ही तरह के धर्म का जन्म होगा। मैं अपने संन्यासी को उसी तरह का जीवन देना चाहता हूं-विराग का नहीं, उत्सव का; त्याग का नहीं, धन्यता का!
परमात्मा अगर धन्यवाद का अंग हो, तो ही सच है। परमात्मा अगर विराग से
आ रहा है, उदासी से आ रहा है, उदासीनता से आ रहा है, तो झूठ है। वह केवल तुम्हारा हारापन है, थकापन है। वह वास्तविक धर्म नहीं है।

आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
आठवां प्रवचन

विद्रोह और ध्यान

पहला प्रश्नः ओशो, आपने कहा कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम धार्मिक नहीं
थे क्योंकि उनके जीवन में कहीं विद्रोह की चिनगारी दिखाई नहीं पड़ती। फिर क्या कारण है कि उनका नाम हजारों वर्षो से जीवित है और भगवान का पर्याय बना हुआ है?

आनंद मैत्रेय! इसीलिए! राम का व्यक्तित्व पंडितों के लिए, पुजारियों
के लिए, व्यवसायिओं के लिए बहुत अनुकूल आया। विद्रोह तो था नहीं। विद्रोह का खतरा नहीं था।
राम का जीवन आज्ञाकारिकता का जीवन है। और यही न्यस्त स्वार्थ चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति आज्ञाकारी हो। आज्ञाकारी हो तो बगावत मर जाती है। आज्ञाकारी हो तो अंधा होकर चलता रहता है-जहां चलाओ, जैसा चलाओ, जो करवाना हो करवाओ। न उसके पास अपनी कोई विवेके की क्षमता होती है, न सोच-विचार की कोई पात्रता होती है, न बल होता है "नही" कह देने का।
आज्ञाकारी व्यक्ति अत्यन्त निर्बल होता है। उसके भीतर की आत्मा ही जैसे मार डाली गयी हो। और यही सारे स्वार्थ चाहते हैं। राज्य भी यही चाहता है, चर्च भी यही चाहता है, मंदिर भी यही चाहता हैं! जिनके हाथ में धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, वे भी यही चाहते हैं कि लोंगो को आज्ञाकारिकता का जहर इस तरह पिलाया जाए कि उनके जीवन में कभी विद्रोह की कोई संभावना ही न रहे। वे "नही" कहना भी चाहें तो कह न सकें। जब भी उनसे निकले "हां" निकले।
राम का व्यक्तित्व बहुत अनुकूल पड़ा। ऐसा अनुकूल व्यक्तित्व क्राइस्ट
कर नहीं है, कृष्ण का नहीं, बुद्ध का नहीं है, और लाओत्सु का नहीं है। कृष्ण, क्राइस्ट, बुद्ध, लाआत्सु, इनको तो मर जाने के बाद पंडित-पुरोहितों को बहुत लीपा-पोती करनी पड़ी है-अपने सांचे के अनुकूल बनाने के लिए। फिर भी वे बना नहीं पाए। बगावत की चिनगारी राख में दबा भी दो तो भी प्रज्ज्वलित होती है। लाख राख जम जाए, जरा-सा हवा को झोंका और चिनगारी फिर दमकने लगती है।
जीसस पर कितनी पर्ते चढ़ायी गयीं! लेकिन कितनी ही पर्ते चढ़ाओ, जिस आदमी
को सूली लगी वह आदमी आज्ञाकारी तो नहीं हो सकता। नहीं तो सूली कैसे लगती? जिस आदमी को सूली लगी, उस आदमी के जीवन में कुछ तो था, जो स्थापित स्वार्थो के विपरीत खड़ा हो गया था। और जरूर ऐसी प्रज्ज्वलित उस व्यक्ति के पास विद्रोह की आत्मा होगी कि सारे स्वार्थो को मिल कर उसे समाप्त कर देना पड़ा। मार तो डाला उसे, फिर दो हजार साल में निरन्तर इस तरह की व्याख्यांए थोपी गयीं कि जिनसे लगे कि जीसस भी आज्ञाकारी हैं। लेकिन कितनी व्याख्या करों, कहीं न कहीं से बात उभर कर दिखाई पड़ती है। छोटी-छोटी घटनांओ में। ईसाई पादरी उन घटनाओं का उल्लेख नहीं करते, उनको टाल जाते हैं। मगर वे घटनाएं बाइबिल में हैं, उनको इनकारा भी नहीं जा सकता। उनको सब तरह से सुधारने की, तरमीन करने की, उनके ऊपर नये-नये अर्थ जमाने की चेष्टा की गयी है। लेकिन फिर भी जीसस की आग ऐसी है कि बुझायी नहीं जा सकती, उभर कर निकल आती है।
तुम बाइबिल पढ़ो, तो तुम चकित हो जाओगे। जीसस की मां जीसस को मिलने आयी हैं। जीसस भीड़ से घिरे खड़े हैं। और कोई जीसस से कहता है कि तुम्हारी मां मिलने आयी है। तो जीसस कहते हैं: "मेरे तो वे ही संबंधी हैं, जिन्होंने मेरी आत्मा से संबंध जोड़ा है। और न मेरी कोई मां है और न मेरा कोई पिता है।" इसे कितना ही लीपो-पीतो, इसे कैसे छिपाओगे?
राम का जीवन बिल्कुल उल्टा है। बूढ़े पिता ने, सठिया गये पिता ने एक व्यर्थ की बात कही है। वह भी अपनी सबसे कम उम्र की पत्नी के आग्रह में कही है, कि चौदह वर्ष बनवास दे दो राम को। इसमें कोई तुक नहीं है बात मे। यह सीधी अन्यायपूर्ण है। पिता राजी हो गये। दशरथ ने अपने को दो कौड़ी का सिद्ध कर दिया। अपनी पत्नी के विपरीत भी कुछ कहने को सामर्थ्य नहीं है। गलत बात

के खिलाफ भी खड़े होने का सामर्थ्य नहीं है। ऐसे गुलाम हो गए हैं। लेकिन राम ने इसे स्वीकार कर लिया। पंडितों को खूब जंची बात। माता-पिताओं को खूब जंची बात। पुरोहितों को खूब जंची बात। जिनके हाथ में भी सत्ता है उनको खूब जंची बात, कि आज्ञाकारिकता ऐसी होनी चाहिए।
इसलिए राम कि सदियों तक चर्चा चलती रही। इसलिए राम को घोंट-घोंट कर लोंगों के गले में पिलाया गया है। कृष्ण को तो लोग छांटते हैं। पूरे कृष्ण को कोई स्वीकार करने को राजी नहीं है। लेकिन राम के बिना छांटे गटक जाते हैं। राम में कुछ छोड़ने जैसी बात नहीं है। कृष्ण में तो हजार कारण मिलते हैं, जिनको कि स्वीकार करने के लिए बड़ी छाती चाहिए।
सूरदास कृष्ण के बचपन के गीत गाते हैं, जैसे कृष्ण कभी जवान हुए ही नहीं! छोटा बच्चा मटकी फोड़ दे, चल जाएगा। छोटा बच्चा स्त्रियों के कपड़े लेकर झाड़ पर चढ़ जाए, तो भी चल जाएगा। क्षम्य हो जाएगा। बच्चा ही है आखिर। लेकिन जवान कृष्ण अगर यह करते हों तो, तो सूरदास को भी अड़चन होती है। उनकी भक्ति भी डांवाडोल होने लगती है, कि ऐसे आदमी को कैसे स्वीकारें। तो सूरदास ने बचपन के तो गीत गाए कृष्ण के, लेकिन जवानी को बिल्कुल काट कर अलग कर दिया।
अधिकतर लोग कृष्ण की बात करते हैं सिर्फ गीता के आधार पर। लेकिन महाभारत ही कृष्ण का एकमात्र जीवन-स्त्रोत नहीं है। श्रीमद्भागवत- और तब बड़ी अड़चन शुरू होती है। क्योंकि कृष्ण के जीवन में ऐसा बहुत कुछ है, बहुत ज्यादा है जिसको पचाना मुश्किल पड़ जाएगा। पांच हजार साल बीत गये, अब भी आदमी इतना प्रौढ़ नही हो पाया की पचा ले। तो फिर व्याख्यांए करनी पड़ती हमें। सोलह हजार पत्नियां थी कृष्ण की, उनमें सब पत्नियां नहीं थीं उनकी। दूसरों की पत्नियां भी आए थे। इसको कैसे पचाओगे? इसको किस आधार पर पचाओगे? तुम्हारी नीति सब जर्जरित हो जाएगी।
इसलिए कृष्ण को तो कोई कहे मर्यादा पुरुषोत्तम! इससे ज्यादा अमर्याद व्यक्तित्व नहीं है। इससे ज्यादा स्वछंद व्यक्तित्व नहीं है। तो फिर कृष्ण को समझाने के लिए कुछ उपाय करने पड़ेंगे। तो लोग समझाते हैं कि सोलह हजार नारियां नहीं थीं, ये सोलह हजार नाड़ियां हैं! क्या-क्या तरकीबें लोग निकालते हैं! क्या-क्या होशियारियां लोग निकालते हैं! सत्य को भी झुठलाने के लिए कैसे-कैसे आयोजन किए जाते हैं!
कृष्ण में एक खूबी है। कुछ है जो अलौकिक है। लेकिन जब भी कुछ अलौकिक होगा तो वह नीति के बहुत पार होता है। नीति तो बड़ी साधारण बात है, लोक-व्यवहार है, व्यवस्था को अंग है। इसलिए जो व्यवस्था के पोषक हैं, वे राम के पक्षपाती रहेंगे। कृष्ण की पूजा भी कर लेंगे, तो भी उन्हें न मालूम क्या- क्या व्याखांए खोजनी पड़ेंगी।
महात्मा गांधी कहते थे कि गीता मेरी मां है। लेकिन उनको भी अड़चन थी। कृष्ण के साथ किसको अड़चन नहीं होगी! अड़चन यह थी कि अंहिसा का क्या होगा? सच पूछो तो अर्जुन गांधीवादी मालूम पड़ता था, क्योंकि वह कहता है: "यद्ध छोड़ कर मैं जाना चाहता हूं। यु.द्ध में क्या सार है? क्या फायदा मारने से? हत्याओं से क्या मिल जाएगा? और अपनों को मार कर मैं जीत भी गया तो उस जीत का क्या मूल्य है? इतने खून, इतने अस्थि-पंजरों के ढेर पर मेरा सिंहासन भी बन गया, तो पश्चत्ताप की ग्लानि में जलूंगा? नहीं, यह मुझे नहीं करना है। मैं यह सब छोड़ कर चला जाना चाहता हूं। मुझे नहीं चाहिए यह राज्य।"
और कृष्ण समझाते हैं कि तू जूझ, तू युद्ध कर। क्षत्रिय का यही कर्तव्य हैं। यही क्षत्रिय का धर्म है कि वह जूझे, कि वह लड़े। गांधी को बड़ी मुश्किल है। तो उन्होंने शुरू में ही व्याख्या कर ली कि यह कोई असली युद्ध नहीं है; यह तो अच्छाई और बुराई के बीच युद्ध की परिकल्पना है। यह तो शुभ और अशुभ के बीच युद्ध का प्रतीक मात्र है। कौरव अशुभ के प्रतीक हैं, पांडव शुभ के प्रतीक हैं। यह लड़ाई भीतरी है, अंतरात्मा में चल रही हैं। यह लड़ाई बाहर नहीं हो रही है।
बस इतनी-सी व्याख्या कर ली, फिर सारी गीता को स्वीकार करनें में कोई अड़चन न रही।

बुद्ध के साथ यही हुआ। बुद्ध को पूरा अंगीकार करना बहुत कठिन है। कृष्ण को भी अंगीकार किया जा सकता है, कुछ हेर-फेर किए जा सकते हैं। लेकिन बुद्ध ने तो सीधा-सीधा विरोध किया वेद का। यह बर्दाश्त के बाहर था कि जो व्यक्ति वेद का विरोध करे, जो कहे कि वेद कचरा हैं, इसको कैसे भगवान स्वीकार करें? लेकिन यह आदमी तो किमती था ही, इसमें कोई शक-शुबा नहीं था। जो इसके पास आए, इससे प्रभावित हुए। तो फिर कुछ रास्ता खोजना पड़ेगा। यह एक द्वंद्व खड़ा होगया कि कैसे हम बुद्ध को पचांए। तो एक कहानी गढ़ी पुराणों ने कि भगवान ने स्वर्ग और नर्क बनाए हैं। और हजारों साल बीत गये, नर्क कोई गया ही नहीं, क्योंकि लोग पाप ही नहीं करते थे। तो शैतान ने जाकर भगवान को कहा कि नर्क बनाया किस लिए है? मैं नाहक बैठा हूं। मेरे सारे कारिन्दे खाली बैठे हैं। दफ्तर खोल कर बैठा हूं, कोई ग्राहक तो आता ही नहीं। तो यह दुकान किसलिए? या तो ग्राहक भेजें, हम बैठे-बैठे थक गये। हम अभ्यास सताने का कर-करके थक गये। किसको सतांए? और या फिर यह बंद ही कर दें काम। हमको छुटकारा दें। किसी और काम में लगा दें।
तो भगवान को शैतान पर दया आयी। उन्होंने कहा: "तू घबड़ा मत। तूने याद दिलायी सो ठिक किया। जल्दी ही मैं बुद्ध के नाम से अवतार लूंगा और लोंगो को भ्रष्ट करूंगा। और फिर इतने लोग नर्क आएंगे कि तुझे कोई चिन्ता न रह जाएगी।" ऐसे भगवान ने बुद्ध का अवतार लिया और फिर लोंगो को भ्रष्ट किया। तब से नर्क में ऐसी भीड़-भाड़ है कि जाओगे तो एकदम जगह मिलने वाली नहीं है। कई दिन तो कतार में ही खड़ा रहना पड़ेगा।
देखते हो होशियारी पंडित की! उसने दोहरे काम कर लिए। उसने बुद्ध को भगवान भी मान लिया कि हैं तो भगवान के ही अवतार, लेकिन आए हैं जिस कारण से वह खतरनाक काम हैं। इसलिए सावधान भी रहना। इनकी बात में मत पड़ना, नहीं तो नर्क जाओगे।
राम में कोई अड़चन नहीं है। राम बिल्कुल जैसे चाहिए पंडित के लिए, पुरोहित के लिए, न्यस्त स्वार्थो के लिए, ठीक वैसे ही हैं। इसलिए राम को अंगीकार कर लिया है। इसलिए रामायण घर-घर में पहुंच गयी है। इसलिए मस्तिष्क-मस्तिष्क में हमने उसे गुंजा दिया। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के ह्दय में हमने उसे बिठा दिया। इसलिए रामलीला चलने लगी; चल रही है सदियों से। हम बच्चों को दूध के साथ राम की कथा घोंट घोंट कर पिला देते हैं। यह उपाय है कि तुम कभी बगावत न करना, आज्ञाकारी रहना, अनुशासनबद्ध रहना, कभी स्वच्छंद न होना। हमेशा जो तुमसे बड़े हैं, वे सही हों कि गलत हों यह सवाल नहीं उठता; वे बड़े हैं, इसलिए आदर योग्य हैं। वे जो कहें वही मानना। यह तुम्हारा काम ही नही है सोचना कि क्या सही है और क्या गलत है।
मां-बाप को भी यह बात रूचती है, क्योंकि कौन मां-बाप नहीं चाहता कि बेटे आज्ञाकारी हों! बेटा बिल्कुल गोबर-गणेश हो तो भी चलेगा, मगर आज्ञाकारी होना चाहिए। और बेटा कितना ही प्रतिभाशाली हो, अगर आज्ञाकारी न हो तो मां-बाप को अड़चन होने लगती है।
और जितनी प्रतिभा होगी उतनी ही आज्ञाकारीता मुश्किल होगी। यह ख्याल रखना। ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं होती। प्रतिभा होगी तो स्वभावतःव्यक्ति सोचेगा। राजी होगा उन बातों में जिन बातों में राजी होना चाहिए। राजी होगा अपने बोध से, अपनी अंतःप्रज्ञा से, राजी होगा अपने कारण; इसलिए नहीं कि पिता कहते हैं कि मां कहती है। और इनकार करेगा तो अपने कारण। इनकार और स्वीकार उसके भीतर से आएंगे।
मां-बाप को भी जीम यह बात कि राम की बात पीटो। राम की बात समझाओ। राम
को जितना ऊंचा उठा सको उठाओ। इससे बच्चों को भी नियोजित रखने में सुविधा होगी। धनपतियों को भी समझ में आयी। राज्यधिकारियों को भी समझ में आयी। राजाओं को भी समझ में आयी। राजनीतिज्ञों को भी समझ में आयी। पंडित-पुरोहित, सबको बात जंची। जिनके हाथ में सत्ता हैं उन सबको बात जंची! कि राम की अगर हम प्रतिष्ठा कर रखें तो बगावत कट जाएगी।
भारत अकेला देश है, जहां कोईक्रांति नहीं हुई। और अगर भारत में कभी क्रांति के नाम से कुछ होता है तो ऐसा कचरा होता है कि उसको क्रांति कहने में भी शर्म आती है। अभी-अभी तुमने देखा, कुछ दिन पहले जयप्रकाश नारायण ने

क्रांति कर दी थी। और देश भर के जितने मुर्दे थे और जितने गधे थे, उन सबके हाथ में सत्ता पहुच गयी थी। यह क्रांति थी! यह प्रतिक्रांति है। इसको दूसरी क्रांति कहा जाता था। वह तीन ही साल में टांय-टांय फिस हो गयी। यह महाक्रांति इतने जल्दी खत्म हो गयी! आज उसका कुछ पता ही नहीं कि वह क्रांति कहां गयी। खूब क्रांतियां हम करते हैं! चली-चलायी कारतूसे हैं। इनका कोई मूल्य नहीं।
भारत में क्रांति न होने का बड़े से बड़ा कारण एक है कि हमने जो मूल्य भारत को दिए हैं, वे क्रांति-विरोधी मूल्य हैं।
मेरी दृष्टि में धर्म सबसे बड़ी क्रांति है, महत्तम क्रांति है। क्योंकि उसी क्रांति के द्वारा तो मूर्च्छा से जागते हो, निद्रा से उठते हो। तुम्हारे भीतर जो सोयी हुई आत्मा है, वह पहली दफा करवट लेती है और आंख खोलती है। तुम पहली दफा परमात्मा का स्मरण करते हो और पहली बार तुम्हें पता चलता है कि यह तो समाज की व्यवस्था है, यह तो कामचलाऊ हैं। एक और बड़ी व्यवस्था है अस्तित्व की, उस अस्तित्व की व्यवस्था के साथ अपना संबंध जोड़ना है। समाज की व्यवस्थाएं तो बदलती रहती हैं। कल जो सही था, आज गलत हो गया है। आज जो सही है, कल गलत हो जाएगा।
राम ने एक शूद्र के कानों में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया था-इसलिए कि शूद्र को वेद-वचन नहीं सुनने चाहिए। राम को तुम धार्मिक व्यक्ति कहोगे? तो फिर जो लोग शूद्रों को जला रहे हैं, ये सब धार्मिक हैं। ये कुछ बुरा नहीं कर रहे हैं। ये तो बेचारे राम के ही पीछे चल रहे हैं। ये तो ठीक ही कर रहे हैं। ये शूद्रों को रास्ते पर लगा रहे हैं। ये शूद्र ज्यादा बगावती हुए जा रहे हैं! शूद्र सिर उठा रहे हैं। एक शूद्र ने सिर्फ सुन लिया वेद-वचन, पाप हो गया, महापाप हो गया! और राम जैसे व्यक्ति को उसके कानों में सीसा पिघलवा कर भर देना पड़ा। फिर भी हम राम को धार्मिक कहे चले जाएंगे। मगर उस दिन यह बात चलती थी। उस दिन यह बात ठीक थी। उस दिन कोई अड़चन न थी। शूद्र की गिनती आदमी में थी ही नहीं। शूद्र तो पशुओं जैसा था। उनका हक क्या था? स्त्री का कोई हक नहीं था।
इसलिए वाल्मीकि रामायण में जब राम जीत जाते हैं, लंका-विजय हो जाती है
और सीता को ले कर लौटते हैं, तो जो पहला मिलन होता है सीता से, उसमें राम कहते हैं कि "ऐ स्त्री, तू ध्यान रखना कि मैंने तेरे कारण युद्ध नहीं किया है। यह युद्ध तो कुलमर्यादा के लिए किया है। यह तो वंश-मर्यादा के लिए किया है। तू इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि तेरे लिए युद्ध किया है।" कुल-मर्यादा! यह अहंकार! यह कुल-मर्यादा क्या है? यह अहंकार का ही दूसरा नाम है।
सीता का कोई आदर नहीं है, कोई सम्मान नहीं है। सीता के लिए युद्ध ही नहीं किया गिया। और तभी तो बड़ी आसानी से सीता को फिर ऐसे निकाल कर फेंक दिया, जैसे कोई दूध में पड़ी मक्खी को निकाल कर फेंक देता है। सीता का कोई मूल्य नहीं है, कोईप्रतिष्ठा नहीं है, कोई सम्मान नहीं है।
इन राम को मैं धार्मिक स्वीकार नहीं करता हूं-नहीं कर सकता हूं! यह उस दिन की सामाजिक व्यवस्था से तो इनका तालमेल बैठता था। जो प्रचलित मूल्य थे, ये उनके अनुकूल पड़ते थे, बिल्कुल अनुकूल पड़ते थे। लेकिन जीवन के सत्य से इस बात का कोई तालमेल नहीं है। स्त्री के प्रति सम्मान न हो, ऐसी अपमान की धारणा, इतना अभद्र वचन! कुछ कहने की जरूरत भी न थी। कोई सीता पूछ भी नहीं रही थी कि तुमने किस लिए युद्ध किया। मगर कह देना जरूरी था, ताकि सीता को जाहिर हो जाए, यह भ्रांति कहीं मन में न रह जाए कि "राम जैसे व्यक्ति स्त्रियों के लिए नहीं लड़ते। स्त्रियों में रखा ही क्या है! अरे हड्डी- मांस-मज्जा!--... जैसे पुरुषों में कुछ सोना भरा है!
और यही राम जंगल में स्वर्ण-मृग को देख कर उसके पीछे भाग चले थे। तुमने भी स्वर्ण-मृग देखा होता तो तुम भी दस दफा सोचते कि स्वर्ण के कहीं मृग होते हैं! बुद्धू से बुद्धू आदमी भी एक दफा ठिठकता कि यह मैं क्या कर रहा हूं, कही सोने के मृग होते हैं! लेकिन चल पड़े। सोने के मृग के पीछे चलपड़े! भूल गये कि सारा जगत मृग-मरीचिका है! मृग तक ने धोखा दे दिया। जगत को मृग-मरीचिका मानना हो दूर।

लक्ष्मण ने एक स्त्री की नाक काट ली, कोई ऐतराज नहीं। अभद्र व्यवहार था। एकदम अभद्र व्यवहार था। लेकिन कोई विरोध नहीं। ये जिन ऋषि-मुनियों ने राम को खबर दी कि हमें बहुत सताया जा रहा है, ये राक्षस हमें सता रहे हैं, ये हमें परेशान करते हैं, ये हमारे यज्ञ-हवन में बाधा डालते हैं-ये ऋषि- मुनि कोई और नहीं थे, ये सिर्फ एजेन्ट थे। जैसे ईसाई मिशनरी होते हैं, वे सी.आई.ए. के एजेन्ट होते हैं। बस ईसाई मिशनरी यानी ऋषि-मुनि। ईसाइयों के पहले ऋषि-मुनि चले आते हैं। पहले वे जाल फैला देते हैं। पहले बाइबिल आती है, फिर पीछे से बन्दूक आती है। ये सब राजनैतिक जालसाजियां थीं।
राम के व्यक्तित्व में मुझे कोई न तो बुद्ध की प्रखरता दिखाई पड़ती है,
न कृष्ण का अद्भूत समग्र रूप दिखाई पड़ता है, न जीसस की क्रांति दिखाई पड़ती है, न लाओत्सु के वचन-एक-एक वचन कि एक-एक हीरा-ऐसे कोई वचन दिखाई पड़ते हैं। मगर आनंद मैत्रेय, तुम ठीक कहते हो कि क्यों हजारों वर्षों से राम का नाम जीवित है? जीवित रहेगा। जब तक न्यस्त स्वार्थ जीवित रहेंगे, जब तक बेईमान शोषण जारी रखना चाहते हैं, तब तक वे राम को जीवित रखेंगे। उनकी आड़ में शोषण बड़ी आसानी से चल रहा है, बड़ी सुविधा से चल रहा है। राम-कथा चल रही है और पीछे कुछ और ही कथा चल रही है।
मैं जब यह कहता हूं तो कठिनाई होनी स्वाभाविक है। क्योंकि तुम्हारी इतनी प्राचीन मान्यता को चोट लगे तो तुम तिलमिला जाओ, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं। लेकिन मेरी भी मजबूरी है, मैं वही कह सकता हूं, जो मुझे दिखाई पड़ता है, जैसा मुझे दिखाई पड़ता है। उसमें मैं रंचमात्र फर्क नहीं कर सकता। तुम्हें अच्छा लगे तो, तुम्हें बुरा लगे तो-वह तुम्हारी मौज। लेकिन राम में मुझे कुछ धर्म जैसी बात दिखाई नहीं पड़ती। अच्छे आदमी थे, भले आदमी थे। आज्ञाकारी थे। अपने समय की मान्यताएं और मूल्यों के अनुकूल थे। जिसको सज्जन कहें, सच्चरित्र कहें। मगर संत नहीं।
ये तीन शब्द ठीक से समझ लेना। एक तो दुर्जन होता है, जो समाज के मूल्यों के विपरीत चलता है। एक सज्जन होता है, जो समाज के मूल्यों के अनुकूल चलता है। और एक संत होता है, जो न तो प्रतिकूल चलता है न अनुकूल चलता है; जो अपनी अन्तःप्रेरणा से जीता है। फिर कभी प्रतिकूल पड़ जाती है उसकी अन्तःप्रेरणा, कभी अनुकूल पड़ जाती है। वह गौण बात है। प्रतिकूल पड़े तो ठीक, अनुकूल पड़े तो ठीक।
लेकिन राम तो बिल्कुल लकीर के फकीर हैं। वे तो लीक-लीक चलते हैं। वे
तो एक-एक कदम सम्हाल कर चलते हैं। वे तो फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं। एक धुब्बड़ ने कह दिया--... अब धोबियों की भी बात का कोई मतलब होता है--... कि बस सीता को निकाल फेंका! जैसे बहाना ही खोज रहे हों! जैसे रास्ते में ही बैठे हों! ऐसा लगता है जैसे धुब्बड़ से खुद ही कहलवा दिया हो। एक आदमी अगर कह दे तो इतनी घबड़ाहट क्या? अग्नि-परीक्षा भी ले ली थी सीता की। अग्नि-परीक्षा भी बेकार हो गयी फिर!
और कभी तुमने सोचा कि सीता की अग्नि-परीक्षा ली, खुद भी तो अग्नि- परीक्षा देनी चाहिए थी। यह कैसा न्याय हुआ? सीता समझो कि इतने दिन रावण के वहां रही, पता नहीं क्या हुआ उसके चरित्र का। लेकिन राम भी तो इतने दिन सीता के बिना रहे थे, पता नहीं क्या हुआ इनके चरित्र का! ऐसे इतिहासज्ञ हैं, जिनकी मान्यता है कि राम का शबरी से प्रेम था। इसमें कुछ सचाई मालूम पड़ती है, क्योंकि सिर्फ प्रेमी ही एक-दूसरे के जूठे बेर खा सकते हैं, दूसरा तो कभी नहीं खा सकता। और मुझे शक है कि राम सीता के जूठे बेर खाते। एक धुब्बड़ के कहने पर जिसको भेज दिया जंगल, गर्भवती स्त्री, उसके जूठे बेर ये खाते, यह शक की बात है।
लेकिन रामलीला में तुमने देखा होगा कि शबरी को बूढ़ी बताया जाता है। लेकिन जिन्होंने शोध की है इस पर काफी, उनका कहना है कि शबरी युवा थी और सुन्दर थी। और जंगल का सौन्दर्य था। अल्हड़ सौंदर्य था। तो राम को अगर सीता की परीक्षा लेनी थी तो इतना तो न्यायुक्त होना ही चाहिए कि खुद भी गुजर गये होते आग से, डर क्या था? दोंनो साथ-साथ गुजर गये होते हाथ में हाथ लेकर। यह ज्यादा उचित मालूम होता। लेकिन राम तो नहीं गुजरे अग्नि-परीक्षा से। पुरुषपुरुष है! कहते हैं न मर्द बच्चा मर्द बच्चा! पुरुष को कोई

परीक्षा देनी पड़ती है! कोई सवाल नहीं! वह तो कुछ गड़बड़ भी करे तो चलेगा। वह तो गड़बड़ नहीं करेगा, यह हो कैसे हो सकता है?
मगर स्त्री को पवित्र होना चाहिए। क्यों? ये दोहरे मापदण्ड क्यों? धार्मिक व्यक्ति के दोहर मापदण्ड नहीं होते। उसका मापदण्ड एक ही होगा। जो दूसरे के लिए होगा, वही अपने लिए होगा। जो अपने लिए होगा, वही दूसरे के लिए होगा। उसके लिए स्त्री-पुरुष का कोई फासला नहीं होगा।
लेकिन स्त्री की कोई कीमत ही नहीं थी। स्त्री को तो कहते ही रहे- स्त्री सम्पदा। उसका कोई मूल्य नहीं हैं। जैसे कुर्सी है, फर्नीचर है, पलंग हैं, बिस्तर हैं-ऐसी ही स्त्री-पैर की जूती! तो उसकी जांच कर लेनी जरूरी है कि इस जूती को किसी और ने तो नहीं पहना! अपने पैर की थोड़े ही जांच करवानी पड़ेगी कि हम तो कोई दूसरी जूती नहीं पहने रहे!
अग्नि-परीक्षा लेने के बाद भी, फिर जरासा आदमी ने एक संदेह उठा दिया
और सीता को छोड़ दिया। जैसे बहाना चाहिए था। अगर ऐसा ही था कि एक आदमी की बात भी इतनी चोट करती थी, जैसा लोग कहते हैं कि एक आदमी की भी निंदा राम सह नहीं सके, ऐसा उनका उज्ज्वल व्यक्तित्व था, तो खुद भी सीता के साथ चले जाते। यूं भी चौदह साल रह गये थे बाप के कहने से और थोड़े बहुत वर्ष रह लेते जंगल में। लेकिन खुद भी चले जाते। तो मेरे मन में कीमत होती। तो मैं कहता, यह बात समझ में आती है। लेकिन खुद तो राजा बने बैठे रहे, सीता को निकाल बाहर कर दिया। राज्य की ज्यादा कीमत है! पद की ज्यादा कीमत है! एक जीवन्त स्त्री का कोई मूल्य नहीं है!
और उससे भी झूठ बोला। उसे भी बताया नहीं कहां भेजा जा रहा है। उसे भी धोखा दिया। और फिर मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं! अपनी ही पत्नी को धोखा दिया। कम से कम कहना तो था। कम से कम साफ तो कर देनी थी बात। और मुझे लगता है कि सीता इतनी बलवती स्त्री थी, निश्चित ही मेरे मन में राम से कहीं सीता का मूल्य ज्यादा है-कि अगर सीता को कहा होता तो सीता ने कहा होता कि ठीक है, मैं स्वंय जाती हूं। यह धोखा देने की कोई जरूरत न थी, कोई आवश्यकता न थी। रवीन्द्रनाथ ने बुद्ध के संबंध में एक कविता लिखी है। जब बुद्ध लौटे बारह वर्षो के बाद राजमहल बुद्ध होकर, तो यशोधरा ने उनसे एक ही प्रश्न पूछा-उनकी पत्नी ने- कि मुझे सिर्फ एक बात आप बता दें, जो मेरे मन को काटती रहीः आप अगर मुझसे कह कर गये होते तो क्या आप सोचते हैं, मैं आपको रोकती? इतना भर मुझे कह दें! क्या मेरे क्षत्रिय होने पर आपको इतना भी भरोसा न था? क्या मैं क्षत्राणी नहीं हूं? क्या क्षत्रानियों ने अपने पतियों को तिलक करके युद्ध के मैदान पर नहीं भेज दिया है? फिर आप तो सत्य की खोज में जा रहे थे। मैं आपके चरण पखारती, आपके चरणों पर फूल चढ़ती, आपको विदा देती। इतना सौभाग्य मुझे दिया दे होता। क्या आपको शक था कि मैं रोती, चिल्लाती, चीखती, रोकती आपको? इतना भर मुझे कह दें। अगर मुझे कोई चीज कचोटती रही है बारह वर्षो में तो सिर्फ एक कि मुझे कहा क्यों नहीं! क्या मुझ पर इतना भी भरोसा नहीं था?
और रवीन्द्रनाथ ने ठीक किया है कि बुद्ध सिर झुकाए खड़े रहे गये हैं। कविता में बुद्ध से उत्तर नहीं बना देते। क्या उत्तर देंगे? बात तो गलत थी ही। बुद्ध गये थे द्वार तक, देखा था आंख भर कर पत्नी को, बेटे को और फिर चुपचाप लौट आए थे; आवाज भी न हो, कहीं पत्नी रोके न!
पुरुषों को स्त्रियों पर कभी भरोसा ही नहीं रहा। स्त्रियों को उन्होंने कभी आत्मवान नहीं माना। स्त्रियों की गिनती उन्होंने हमेशा नम्बर दो की मनुष्य-जाति में गणना की हैं। दोयम। आदमी प्रथम हैं, पुरुषप्रथम है। स्त्री तो ठीक है, नाममात्र को।
राम ठीक जमे स्वार्थी लोगों को। इसलिए उनके मंदिर बने, पूजा चली, रामलीलाएं चलीं। और कोई कारण नहीं है। और राम के इस समादर ने ही भारत से का्रंति को विलुप्त कर दिया। फिर जो भी हमारे ऊपर सत्ताधिकारी रहा, हम उसी के लिए जी-हजूरी करते रहे। दो हजार साल तक हम गुलाम रहे बड़ी मौज से, क्योंकि जो सत्ता में हो हम तो उसके ही जी-हुजूर! छोटा-सा देश इंग्लैंड़ हम पर कब्जा किए बैठा रहा, हम से कुछ करते न बना। करने का सवाल ही न था। हम तो आज्ञाकारी! तो हमने चुपचाप आज्ञा मान ली। और राजा तो भगवान का प्रतिनिधी

होता है। वह तो पृथ्वी पर भगवान का प्रतीक है। इसलिए जो भी राजा है, हम उसके ही सामने झुकने को, नाक रगड़ने को तैयार हैं।
गुलाम होना हमारी प्रवृत्ती हो गयी। हमारी गुलामी की प्रवृत्ती में, हमारी दासता की प्रवृत्ती में, हमारी राम के प्रति जो धारणा है, उसने बहुत हाथ बंटाया है।
इसलिए मैं राम को कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं मानता। सज्जन मानता हूं, संत नहीं मानता। सज्जन होना हो तो राम के पीछे चलना। संत होना हो तो फिर जरा और ज्योतिर्मय व्यक्ति को पकड़ना होगा। फिर किसी बुद्ध को, किसी जीसस को, किसी लाओत्सु को, किसी ऐसे व्यक्ति को जिसके भीतर आग जलती हो, जिसके भीतर क्रांति, जिसके भीतर अकेले जाने का साहस हो। सारे मूल्यों के विपरीत भी अगर उसकी आत्मा कहे तो जाए। चाहे कोई भी कुर्बानी देनी पड़े, चाहे दुनिया कुछ भी कहे, फांसी पर लटका दे, तो भी कोई फिक्र नहीं। वह फांसी चुनना पसन्द करेगा, मगर झुकेगा नहीं। टूट जाना पसन्दकरेगा, मगर झुकेगा नहीं। समझौता उसकी वृत्ति नहीं होगी। संघर्ष उसका जीवन होगा। साहस उसका गुण होगा।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं जब घर से चला था तो बहुत अच्छे-अच्छे विचार थे--वेदांत और निर्वाण की बातें थीं; मगर यहां आकर मन में सारे दिन लड़कियों के विचार ही चलते रहते हैं। बहुत कोशिश करता हूं, हटते ही नहीं। यहां तक की ध्यान में भी विचार चलते रहते हैं। मैं शादीशुदा हूं और अपनी पत्नी के बिना कभी किसी स्त्री के पास नहीं गया। भगवान, क्या करूं, कोई रास्ता बताएं!

ईश्वरानंद! तुम शुद्ध भारतीय हो! यही तो भारतीय संस्कृति का लक्षण है। यह तो आधारशिला है भारतीय संस्कृति की। बातें ब्रम्ह की, निर्वाण की। बातें वेदान्त की। और भीतर? भीतर सब तरह के सांप-बिच्छू। भीतर सब तरह का उपद्रव। उसी उपद्रव को दबाने के लिए तो वेदान्त और निर्वाण और ब्रम्ह, इनकी चर्चा। इस चर्चा में तुम अपने को उलझाए रखते हो, ताकि भीतर की सचाइयां दिखाई न पड़ें।
लेकिन यहां यह चर्चा काम नहीं आएगी। यह चर्चा तोड़ देना ही यहां के अनिवार्य प्रयोंगे में से एक है। यहां तो मैं चाहता हूं कि तुम जीवन के असली प्रश्नों से परिचित होओ, तुम्हारी असली समस्यांए प्रगट होनी चाहिए। तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोग, जरा उनको गौर से तो देखो! बातें धर्म की, मगर उनके जीवन में ठीक उससे उल्टा पाओगे। जाएंगे मंदिर में भगवान की पूजा को, और अगर कोईस्त्री मिल गयी तो धक्का मारे बिना नहीं रहेंगे। हालांकि धक्का भी धार्मिक ढ़ंग से मारेंगे। ऐसा मारेंगे कि किसी को यह भी शक न हो कि धक्का मारा है। राम राम राम राम करते हुए धक्का मारेंगे। माला फेरते रहेंगे और धक्का मारेंगे। पूजा का थाल घुमाते रहेंगे, लेकिन नजर भगवान पर नहीं होगी, नजर चारों तरफ घूमती रहेगी।
जिस मंदिर में जितनी ज्यादा स्त्रियां जाएंगी, उस मंदिर में उतने ज्यादा पुरुष जाएंगे। जिस मंदिर में स्त्रियां न जाएं, उस मंदिर में पुरुष जाना बंद हो जाते हैं। या तो पुरुष जाते हैं अपनी पत्नी के पीछे कि कोई और धक्का न मार दे, या जाते हैं दूसरी पत्नियों के पीछे कि अपन धक्का मार लें। बाकी और किसी काम से मंदिर जाते हैं, दिखाई नहीं पड़ता। औरचंदन-मंदन लगाए हुए हैं। जनेऊ वगैरह पहने हुए हैं। राम-नाम की चदरिया ओढ़ी हुई है। ऐसा भक्ति-भाव दिखलाते हैं कि कोई सोच भी नहीं सकता कि ये और कुछ उपद्रव करेंगे!
ठीक ही हुआ ईश्वरानंद, जो यहां आकर तुम्हें अपनी असलियत दिखाई पड़ी यहां असलियत दिखाई पड़ेगी ही, क्योंकि यह कोई मुर्दा आश्रम नहीं है। और किसी आश्रम में गये होते, जहां मरे-मराए लोग बैठे हुए हैं, तो उन्हें देख कर तुम्हें और भी ज्यादा ब्रम्हचर्या आती। उन्हें देख कर और घबड़ाहट लगती कि अब मौत करीब ही है समझो, कि यही दशा अपनी हो जाने वाली है अब। उदासीनता पैदा होती है।

यह तो एक जीवंत स्थल है। यह कोई मंदिर नहीं है, मधुशाला है। युवा हैं। सुन्दर युवतिंया हैं, सुन्दर युवक हैं। अगर यहां ध्यान कर सके तो ही समझना कि ध्यान किया। उधर ऋषिकेश वगैरह में जाकर शिवानंद के आश्रम में बैठ कर ध्यान करने में कोई अड़चन नहीं। करोगे क्या और? ... कि पहाड़ देखो, कि गंगा मैया देखो, कि ध्यान करो! यहां तुम्हें अड़चन हो रही होगी। मैं समझा। तुम्हारा वेदान्त एकदम बह गया। निर्वाण वगैरह की चर्चा खो गयी। मन ने कहा होगा: "अरे भई ठहरो, वेदान्त और निर्वाण सब पीछे देख लेंगे। चार दिन की जिन्दगी है।" और वेदान्त की बात तो तभी करना चाहिए, जब दांत गिर जाएं। इसलिए तो उसको "वेदान्त" कहते हैं। और निर्वाण का तो मतलब यह होता है: मिटना। जब मरने ही: लगो, तब सोच लेना निर्वाण की बात। अभी तो जीना है। अभी तो चार दिन गुलछर्रे कर लो!
यहां तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। यहां तुम ध्यान करने बैठोगे, आंख बंद करोगे, आंख खुल-खुल जाएगी। तुम लाख उपाय करो आंख बंद करने के--... । तुम अपने घर में बैठोगे, तुम कहते हो कि मैं शादीशुदा हूं और अपनी पत्नी के बिना कभी किसी स्त्री के पास नहीं गया।"... घर में बैठोगे, पत्नी को देख कर वैसे ही आखं बंद होती है। आदमी को एकदम विपस्सना सूझती है। पत्नी को देखा कि एकदम ऊंची बातें उठती हैं, ऊंचे विचार आते हैं-त्याग, तपश्चर्या! जरूर आती होगी।
उसी भ्रांति में तुम यहां आ गये। पत्नी को साथ ले आना था कि वह बगल में
ही बैठी रहती तो तुम्हें आंखे न खोलने देती। डर के मारे न खोल सकते थे आंखे। ऐसी डराए रखती हैं पत्नीयां भी!
चंदूलाल के बेटे ने उनको पत्र लिखा यूनिवर्सिटी से कि मैं एक लड़की के प्रेम में पड़ गया हूं। बड़ी सुंदर है। फोटो भेज रहा हूं। विवाह का तय कर लिया है। आपके आशीर्वाद की अपेक्षा है।
चंदूलाल की पत्नी बहुत खुश हो गयी। उसने कहा कि लिखो इसी वक्त बेटे को पत्र! सुंदर चित्र है और पैसे वाले कि लड़की है। जाहिर नाम है। कुलीन परिवार है। ऐसा मौका कब मिलेगा? चूकना ही नहीं चाहिए। तो चंदूलाल ने पत्र लिखा कि बेटा भगवान की तुम कृपा है। शीघ्रता करो! यह अवसर हाथ से न जाने दो। विवाह तो जीवन को सबसे मधुर संबंध है! यही तो जीवन का आनंद है! ऐसी-ऐसी अच्छी-अच्छी बातें लिखी जैसी लिखनी चाहिए। और जब चिट्ठी पूरी
हो गयी हो जल्दी से पुनश्च करके लिखा कि "अरे मूरख, तेरी मां अभी-अभी बाहर गयी है। मुझे देख, मेरी गति देख! और भूल कर इस झझंट में न पड़ना। और ज्यादा मैं लिख नहीं सकता, वह वापिस आ रही है। सो मैं चिट्ठी बंद कर रहा हूं। थोड़ा लिखा ज्यादा समझना। उल्लू के पट्टे, तुझे इसलिए भेजा है विश्वविद्यालय में? बच सके तो बच जा!"
पत्नी के सामने लिखना पड़ा... --आशीर्वाद ही आशीर्वाद बरसाए। लेकिन पुनश्च में असली बात लिख दी। यही चंदूलाल का बेटा, छोटा जब था तो एक दिन पूछ रहा था चंदूलाल से कि पापा, दूल्हों को घोड़ों पर क्यों बिठाते हैं, गधों पर क्यों नहीं बिठाते? चंदूलाल ने कहा कि बेटा, ताकि वधू को जानने में अड़चन न हो कि कौन दूल्हा है। दो गधे देख कर उसको मुश्किल पड़ेगी कि किसको वरमाला पहनांऊ। सो घोड़े पर बिठाते हैं बेटा, ताकि साफ दिखाई पड़ता रहे कि गधा कौन है और घोड़ा कौन है।
ईश्वरानंद, अगली बार आओ तो पत्नी को साथ ले आना। वह पास ही बैठी रहेगी। खुद तो विपस्सना करेगी नहीं, मगर तुमको करवाएगी।
पत्नियों में एक गुण होता है, पतियों को धार्मिक बना देती हैं, एकदम सच्चरित्र बना देती हैं। बनना ही पड़ता है मजबूरी में। अगर पत्नियां न हों तो संसार एकदम भ्रष्ट हो जाए। सभी पुरुष चाहते हैं अविवाहित रहें।
जॉर्ज बर्नार्ड शॉ कहा करता था कि दुनिया में आनंद ही आनंद हो जाए, अगर सभी पुरुष अविवाहीत रहें औरसभी स्त्रियां विवाहित। मगर यह हो कैसे? ये दोनों बातें एक साथ बन सकती नहीं।
और यहां तुम्हारा जन्म भर का बंधा हुआ बांध टूट जाएगा। तुम ध्यान करने बैठे हो और कोई सुन्दर युवती नाचती हुई निकल जाएगी, कोई हाथ में हाथ लिए निकल जाएगा। कई दफा तुम्हें शक हो जाएगा कि तुम कहीं स्वर्ग तो नहीं

पहुंच गए, अप्सराएं वगैरह तो नहीं आ गयीं! आंख मल कर तुम वापिस देखोगे कि मामला क्या है, जिन्दा हूं? मेनकाएं, उर्वशियां!
मगर यह अच्छा हुआ। इससे तुम्हें अपनी सचाई का पता चला। जो तुम्हारे भीतर दबा पड़ा है, वही सत्य है। जो ऊपर-ऊपर है, वह झूठ है। वह तो सत्य को छिपाने का आयोजन है। वह तो मलहम-पट्टी है। वह तो घाव को फूल से ढांक लिया है। इसे स्वीकार करो अपने सत्य को। इसे तुम इनकार मत करना। इनकार जिन्दगी भर लिया है, इसीलिए यह अभी तक तुम्हारे पीछे पड़ा है। स्वीकार करो। इसमें कुछ बुरा नहीं है।
यही बड़ी हैरानी की बात है। एक सुन्दर गुलाब के फूल को देखकर तुम्हें कोई ग्लानि नहीं होती और कोई अपराध-भाव पैदा नहीं होता। सुबह सूरज ऊगता है, सुन्दर प्रभात, तुम्हें कोई अड़चन नहीं होती। पक्षी गीत गाते हैं, तुम्हें कोई एतराज नहीं होता। एक सुन्दर स्त्री को देखकर तुम्हें क्यों एतराज होता है? और तुम्हारे भीतर अगर सौन्दर्य की प्रशंसा उठती है तो इसमें बुराई कहां है, पाप कहां है? गुलाब का फूल जिसने बनाया, उसी ने यह सुन्दर स्त्री भी बनायी, उसी ने ये सुन्दर पुरुष बनाये। जिसने सुबह सूरज उगायी, जो सांझ को सूर्यास्त देगा, जो रात आकाश को तारों से भर देता है, उसी की तूलिका के ये सारे खेल हैं।
मैं तुमसे यह नहीं कहूंगा कि सुन्दर स्त्री को देखकर आखं बंद कर लो। मैं तुमसे कहूंगा: सुन्दर स्त्री में भी परमात्मा की ही तुलिका को देखना शुरू करो। सुन्दर स्त्री में भी उसकी ही कलाकृति है। सुन्दर स्त्री के कंठ में भी वही गा रहा है, जो पक्षियों के कंठ से गा रहा है। वह जो कोयल की कूक है, वही सुन्दर स्त्री का सौंदर्य है। क्यों यह भेद करते हो? लेकिन तुम्हें सदियों से यह सिखाया गया है कि यह पाप है।
"यह पाप है"-यह धारणा गलत है। कुछ भी पाप नहीं है। स्वभाविक है। अस्वभाविक होगा कि एक सुन्दर स्त्री निकल जाए और तुम्हारे मन में कोई खयाल ही न उठे। तुम पत्थर हो कि आदमी हो? भाव तो उठना चाहिए। काव्य जगना चाहिए। तुम्हारी हृद्य-तंत्री की वीणा बज जानी चाहिए। कोई तार छिड़ जाने चाहिए। मगर जो फर्क होगा धार्मिक-अधार्मिक में, वह यही होगा कि हर सौदर्य धार्मिक व्यक्ति को ईश्वर का स्मरण दिलाएगा और अधार्मिक को ईश्वर का विस्मरण करा देगा।
अब तुम अधार्मिक व्यक्ति हो। नाम तुम्हारा ईश्वरानंद है, मगर अधार्मिक व्यक्ति हो। सुन्दर स्त्रियों को देख कर तुम कहते हो: "अच्छे- अच्छे विचार थे, वेदान्त और निर्वाण की बातें थीं, सब खो गयीं।" सुन्दर स्त्री को देख कर तुम्हें परमात्मा के प्रति अनुग्रह का भाव पैदा होना चाहिए। उसने यह इतना सुन्दर जगत रचा, उसकी बड़ी कृपा है, उसकी बड़ी अनुकम्पा है! तुम्हें आंखें दीं देखने को, कि रंग देखो, सौन्दर्य देखो! तुम्हें कान दिए सुनने को, कि ध्वनि सुनो, संगीत सुनो! तुम्हें हाथ दिए, कि तुम स्पर्श कर सको। तुम क्यों इतने घबड़ाए हुए हो? परमात्मा नहीं डरा तुम्हें यह सब देने से, तुम परमात्मा से भी ज्यादा अपने को ऊपर उठाने की कोशिश में लगे हो! परमात्मा जिससे नहीं डरा, तुम्हारे महात्मा उससे तुम्हें डरवा रहे हैं! तुम्हारे महात्मा सब परमात्मा के खिलाप हैं।
मैं परमात्मा के खिलाफ नहीं हूं, तुम्हारे महात्माओं के खिलाफ हूं। क्या अड़चन है? सुन्दर स्त्री आए तो उसे ध्यानपूर्वक देखो न? उस वक्त आंख बंद करने की क्या जरूरत? जबरदस्ती आंख बंद करोगे, मींच भी लोगे आंख तो भी क्या होगा? भीतर तो वही सुदंर स्त्री गूंजती रहेगी-और भी ज्यादा सुदंर हो जाएगी, और भी ज्यादा तुम रूग्ण हो जाओगे। और वही झूठी आंख बंद है तुम्हारी। उसका कोई मूल्य नहीं हैं।
लेकिन हम इस तरह की कहानियां सुनते हैं कि सूरदास ने अपनी आंख फोड़ लीं सुंदर स्त्री को देख कर। यह भी कोई बात हुई! अगर सूरदास ने यह किया हो तो मैं सूरदास को कभी क्षमा नहीं कर सकूंगा। सुंदर स्त्री को देख कर आंखें फोड़ लीं! लेकिन आंखें फोड़ लेने से क्या हो जाएगा? क्या तुम सोचते हो अंधे आदमी ब्रम्हचर्य को उपलब्ध हो जाते हैं? तो तो धन्य हैं जो अंधे पैदा हुए! फिर अंधों पर दया न करो, फिर तो दया खुद पर करो। परमात्मा की बड़ी कृपा है कि

उसने अंधे पैदा किए, क्योंकि वे ब्रम्हचर्य को पहले ही उपलब्ध हैं। अंधा आदमी ब्रम्हचारी नहीं हो जाता और जिस आदमी ने आंखें फोड़ ली हैं, यह सिर्फ इस बात की खबर दे रहा है कि इसके भीतर बड़ी प्रज्वलित वासना होगी। और यह घबड़ाया हुआ है, डरा हुआ है, भयभीत है। और वासना भीतर है, आंखें फोड़ने से क्या होगा? आंख बिल्कुल बंद कर लो, पट्टी बांध लो, तो भी क्या होगा? भीतर सपने उठते रहेंगे। और भीतर वासना और भी विकृत हो कर प्रगाढ़ हो जाएगी, क्योंकि उसके निकास का भी कोई उपाय न रह जाएगा।
मैं तुम्हारी वासना के दमन के पक्ष में नहीं हूं। मैं तुम्हारी वासना
के रूपांतरण के पक्ष में हूं। मैं चाहता हूं तुम्हारा सहज जीवन, सामान्य जीवन, स्वभाविक जीवन स्वीकृत हो। कहीं कुछ निशेध न हो। और इसी सहज जीवन में धीरे-धीरे प्रार्थना प्रविष्ट हो, परमात्मा का अनुग्रह प्रविष्ट हो, ध्यान प्रविष्ट हो।
क्या अड़चन है? आंख बंद करके ही ध्यान किया जाता हैः
कया?--एक सुन्दर स्त्री को देखकर भी ध्यान हो सकता है। उसे देखते- देखते भी ध्यान हो सकता है। उसे देखते-देखते तुम ध्यानमग्न हो सकते हो। सुन्दर स्त्री प्रतिमा का काम कर सकती है। ऐसा ही सुन्दर पुरुषप्रतिमा का काम कर सकता है।
मैं जीवन के रूपांतरण का पक्षपाती हूं। लेकिन तुम अब तक दमन करते रहे होओगे। इसलिए तुम्हें यहां अड़चन आ रही है। जो भी दमन करते हुए यहां आ जाते हैं उनको अड़चन आती है। और फिर उनकी अड़चन का बदला वे मुझसे लेते हैं। फिर वे समझते हैं कि मैं यहां लोंगो को बिगाड़ रहा हूं। क्योंकि उनको लगता है उनको मैंने बिगाड़ दिया। अब जैसे तुम्हारा वेदान्त खिसक गया, निर्वाण खिसक गया, तुम गुस्से में जा सकते हो कि यह आदमी किस तरह का! यह आश्रम कैसा? मेरा वेदान्त, मेरा निर्वाण सब खिसक गया! तुम गुस्सा मुझ पर निकालोगे। तुम गालियां मुझे दोगे। तुम जाकर लोंगो को कहोगे कि वह जगह ठीक नहीं है।
सचाई यह है कि तुमने जिन्दगी भर गलत किया, उसका तुम्हें साक्षात्कार
हो गया। धन्यवाद मानो, आभार मानो। अभी भी समय है। अभी भी रूपांतरण हो सकता है।
लेकिन कोई तुम्हें चौकाने वाला नहीं है। जिनके पास तुम जाते हो, तुम्हारे साधु-संत, वे तुमसे गये-बीते हैं। उन्होंने तुम से ज्यादा दमन किया है।
मुल्ला नसरूद्दीन अपनी पत्नी के साथ एक बगीचे में बैठा हुआ था। सांझ
हो गयी, सूरज ढल गया, तारे निकलने लगे। पास की ही एक झाड़ी के पीछे एक युवक और एक युवती बड़ा प्रेमालाप कर रहे हैं। खूब छन रही हैं बातें, गहरी बातें छन रही हैं! दोनों चुपचाप बैठे सुन रहे हैं। आखिर युवक ने कहा कि मैं तुम्हारे बिना न रह सकूंगा, मैं मर जाऊंगा। तुम्हीं मेर जीवन हो, तुम्हीं मरे प्राण हो! तुम्हीं मेरा काव्य हो, तुम्हीं मेरी आत्मा हो! तुम मुझे मिली तो सब मिल गया और तुम मुझे नही मिल सकीं तो सब खो जाएगा। मैं विवाह का निवेदन करता हूं, मुझे अंगीकार करो। मैं नाकुछ हूं, अपात्र हूं; मगर मेरे प्रेम को देखो, मेरी आत्मा को पहचानो!
मुल्ला की पत्नी ने मुल्ला को हुद्दा मारा और कहा कि जरा खांसो-खखारो, सचेत कर दो। यह लड़का फंसा जा रहा है।
मुल्ला ने कहा: "भाड़ में जाए लड़का! मुझे किसने चेताया था? मैं क्यों किसी को चेतांऊ? जब मैं यही नालायकी की बातें तुझसे कर रहा था तो किसी हरामजादे ने न खासां न खखारा। हम भी क्यों खांसे-खखांरे? अरे अपनी भोगेगा, खुद भोगेगा। भोगने दो। जो जैसी करेगा वैसी भरेगा। जो जैसा बीज बोएगा वैसी फसल काटेगा। अब बो रहा है बेटा फसल, हम भी चुपचाप सुन रहे हैं कि अच्छा, काटोगे फसल।"
तुम जिनके पास जाते हो, उनको किसी ने नहीं चौंकाया, वे तुमको क्यों चौकाएं? वे सड़ रहे हैं, वे गल रहे हैं। वे तुम्हें देख कर प्रसन्न हो जाते है कि तुम भी सड़ो बेटा, तुम भी गलो बेटा। हे ईश्वरानंद, तुम भी जाओ नरक में, जहां हम पड़े हैं! तुम यहां-वहां क्यों जा रहे हो? वे भी तुमको पाठ सिखाएंगे कि जब भी कभी ऐसे विचार उठें, फौरन दबा दो, वहीं के वहीं दबा दो। शुरू में

ही दबा देना चाहिए। जरा-सा भी विचार उठे, फौरन राम राम का जाप करने लगो, माना फेरने लगो। जोर-जोर से मंत्र पढ़ने लगो गायत्री, नमोकार। ऐसी धुन मचा दो भीतर कि जो बात उठ रही थी वह दबी की दबी रह जाए। और एकदम भीतर अच्छी- अच्छी बातें गुंजा दो। एकदम जूझ पड़ो। देर मत करना, क्योंकि जरा भी देर की तो कहीं बुरा विचार हावी न हो जाए। एकदम टूट पड़ो उस पर-वाह गुरूजी की फतह, वाह गुरूजी का खालसा! एकदम टूट पड़ो। उसको वहीं धर दबोचो। सत सिरी आकाल! छोड़ना ही मत उसको, क्योंकि जरा भी मौका दिया तो वह पकड़ न ले! और पकड़ ले तो फिर छोड़ेगा नहीं। इसलिए शुरू में ही निपट लेना ठीक है।
तुम जिनके पास जाओगे वे तुम्हें यही समझाएंगे। मैं तुमसे कहूंगा कि नहीं, जो भी विचार भीतर उठा रहे हैं--... तुम्हारा वेदान्त झूठा था, तुम्हारा निर्वाण झूठा था--... जो तुम्हारे भीतर विचार उठ रहे हैं, यही सच्चे हैं। इन्हें उठने दो। इनका निरीक्षण करो। ईश्वरानंद, बैठ कर साक्षी-भाव से इनको देखो। निंदा बंद करो। निंदा करोगे तो साक्षी नहीं हो सकोगे। निंदा में कैसे साक्षी बनोगे? जिसकी पहले से ही बुराई कर ली, जिसका पहले से ही हमने निर्णय कर लिया कि गलत है, उसके हम कैसे साक्षी बनेंगे? साक्षी होने के लिए जरूरी है। निष्पक्ष भाव से देखो कि ये विचार उठे रहे हैं, ठीक है। परमात्मा ने दिए हैं तो जरूर कोईप्रयोजन होगा।
और प्रयोजन है, और महत प्रयोजन है! प्रयोजन यही है कि तुम इन विचारों
को देखो, जागो, द्रष्टा बनो। दमन नहीं करना है, द्रष्टा बनना है। और जैसे- जैसे तुम्हारे भीतर साक्षी-भाव सघन होगा, तुम चमत्कृत हो जाओगे। इधर साक्षी घना होता है, उधर ये विचार विसर्जित होने लगते हैं-बिना दबाए। और जब बिना दबाए कोई चीज बदलती है तो मजा और, सौन्दर्य और, प्रसाद और, सुरभि और, सुगंध और! सिर्फ देखते-देखते तुम धीरे-धीरे पाओगे मन शांत हो गया, सब विचार गये-धन के, काम के, लोभ के, क्रोध के, सब गये। तुम जाग गये। ये नद्ध में ही चलते हैं। और ये जब चले जाते हैं सब, तब तुम समझोगे इनका प्रयोजन। इनका प्रयोजन यही था कि ये तुम्हें जगा दें। इनके बिना तुम कभी जागते हीं नहीं।
यह ऐसा ही समझो कि तुम्हें पांच बजे सुबह उठना है, गाड़ी पकड़नी है, अलार्म भर देते हो। हांलाकि तुमने ही अलार्म भरा, लेकिन पांच बजे अलार्म बजता है तो बुरा लगता है, अच्छा नहीं लगता। मैं ऐसे लोंगो को जानता हूं, जिन्होंने घड़ियां तोड़ दी हैं और जल्दी से अलार्म बंद करके करवट लेकर फिर सो जाते हैं। फिर आठ बजे पछताएंगे उठ कर कि गाड़ी चूक गयी। मगर उस वक्त गुस्सा आ जाता है कि यह दुष्ट अलार्म! अब जैसे अलार्म का कोई कसूर हो! तुम्हीं भरकर सोए। लेकिन तुम्हे गुस्सा आ जाता है।
ये सारे विचार जो तुम्हारे भीतर चल रहे हैं ईश्वरानंद, अलार्म की तरह हैं। इनके कारण ही तुम जागोगे, नहीं तो तुम्हारे जागने का कोई उपाय नहीं है। इनकी पीड़ा ही तुम्हे जगाएगी। इनका दंश ही तुम्हे जगाएगा। इनके कारण ही तुम साक्षी बनोगे, नहीं तो क्यों साक्षी बनते, क्यों द्रष्टा बनते? समस्या ही न होती तो समाधान की कोई जरूरत न थी, समाधि की कोई जरूरत न थी। ये समस्याएं परमात्मा ने दी हैं, ये चुनौतियां हैं। इनको साहस से स्वीकार करो। भागो मत। भगोड़ापन ठीक नहीं। दबाओ मत, छिपाओ मत। आमने-सामने आने दो। और अगर तुम यहां आ गए हो हिम्मत करके, तो यह स्थल एकमात्र स्थल है जहां कुछ भी दबाने को कोई कारण नहीं है। मैं तुम्हे अंगीकार करता हूं तुम जैसे हो। तुम्हारा सत्कार करता हूं, तुम्हारा स्वागत करता हूं, तुम्हारा सम्मान करता हूं-तुम जैसे हो। बेशर्त। मैं कोई शर्त नहीं लगाता कि तुम ऐसे होओगे तो तुम्हारा सम्मान। तुम जैसे हो वैसे में तुम्हारा सम्मान... । तुम भी अपना सम्मान सीखो। परमात्मा ने तुम्हें ऐसा बनाया है तो जरूर कुछ राज होगा। आज पता न होगा तो कल पता चलेगा।
अपने भीतर की इन सारी प्रक्रियाओं को शांत हो कर देखते रहो। कभी-कभी भूल जाओगे साक्षी-भाव, कभी-कभी डूब जाओगे किसी विचार के साथ, लीन हो जाओगे। कभी-कभी तादात्म्य हो जाएगा। जब स्मरण आ जाए, फिर खड़े होकर देखने लगना। जब खो जाए, खो जाने देना। पछताना मत। अपराध-भाव से मत भरना।

अपराध-भाव दुनिया में बड़ी अधार्मिक बात है, क्योंकि जिस व्यक्ति के भीतर अपराध-भाव हो जाता है, उस व्यक्ति के भीतर आत्मग्लानि के कारण आत्मअपमान शुरू हो जाता है। वह अपने को दीन-हीन समझने लगता है। वह क्या खाक समझेगा-अहं ब्रम्हास्मि! वह कैसे समझेगा वेदान्त? वह कैसे समझेगा निर्वाण? वह कैस समझेगा कि मेरे भीतर बुद्ध विराजमान हैं, कि मेरे भीतर बुद्धत्व की क्षमता है। नहीं, यह असंभव है उसके लिए।
पहला काम है:पुरोहितों ने तुम्हें जो अपराध-भाव दे दिया है, उसे छोड़ दो। कुछ बुरा नहीं है। सब सुंदर है। जैसा है, सर्वांग सुंदर है। इस स्वीकृत को ही मैं आस्तिकता कहता हूं।
मैनें सुना है, एक गांव में एक गधा था, वह बड़ा आस्तिक था। गधे अक्सर आस्तिक होते हैं। उसकी खूबी यह थी कि उसका मालिक उसको लेकर घूमता था। और तुम उससे कुछ भी पूछो-ईश्वर है? वह सिर हिलाकर कहता कि हां। आत्मा है? वह सिर हिलाकर कहता कि हां। परलोक है-हां। पुनर्जन्म होता है-हां। लोग उसको पैसा देते मालिक को कि भई वाह! आदमीयों तक को पता नहीं इतना ज्ञान, ऐसा वेदान्त-और यह गधे को इतना वेदान्त आता है! और उसने उसको कुल इतना सिखा रखा था कि सिर हिलाना। उसको कुछ भी पूछो... वही पूछता था और गधे को पता था कि वह कुछ भी पूछे। वह पूछता ऐसी बात था जिसमें हां कहने से आस्तिकता पता चले। एक भीड़ लगी थी। लोग वेदान्त की यह चर्चा सुन रहे थे। गधा गजब कर रहा था, पैसे पर पैसे पड़ रहे थे। लोग कह रहे थे: "गधा नहीं है, कोई योग-भ्रष्ट महात्मा है। कोई महायोगी रहा पिछले जन्म में।"
नसरूद्दीन भी खड़ा था। नसरूद्दीन ने कहा कि एक काम मैं भी करके देखना चाहता हूं। मैं इसके कान में कुछ कहना चाहता हूं, फिर यह हां भरे तब मैं देखूं!
उसके मालिक ने कहा: "अच्छा!" क्योंकि मालिक को तो पता ही था, कुछ भी
कहो वह हां भरेगा। उसको क्या पता कि नसरूद्दीन क्या कहेगा। नसरूद्दीन ने उसके कान में कुछ कहा, गधा एकदम इनकार करने लगा कि नहीं, बिल्कुल नहीं! सारी भीड़ चौकीं। मालिक भी चौकां। मालिक ने पूछा: "भाई बताओ तुमने क्या पूछा?"
उसने कहा: "मैंने पूछा कि विवाह करोगे? ... नहीं करेंगे!"
इतनी अकल गधे में भी है! हालांकि आस्तिक था, फिर भी इतनी अकल थी। एक आस्तिकता होती है गधेपन की कि तुम से बस हां कहने की आदत पड़वा ली है। और एक आस्तिकता आती है खोज से, आविष्कार से। एक आस्तिकता सीखी हुई होती है, कि बस सिर हिलाना सिखा दिया। वह तो कोई गधा भी कर सकता है। और एक आस्तिकता होती है आत्म-अनुभव से!
मैं अनुभव पर जोर देता हूं, आस्था पर नहीं। मैं नहीं कहता कि मैं जो कहता हूं उस पर भरोसा करो। मैं कहता हूं: मैं जो कहता हूं उस पर प्रयोग करो। प्रयोग अगर तुम्हें अनुभव करा दे, तो ही मानना। अपने अनुभव को मानना, मेरी बात को नहीं। मेरी बात का क्या मूल्य है? पता नहीं मैं धोखा दे रहा होऊ। पता नहीं मैं झूठ बोल रहा होऊं। पता नहीं मेरे आपने कोईप्रयोजन हों। मुझ पर भरोसा करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं कहूं भी क्यों कि मुझ पर भरोसा करो? क्योंकि मैं तुमसे जो कह रहा हूं वह अनुभव-सिद्ध है, इसलिए मैं तुमसे कहता हूं अनुभव तुम भी कर सकते हो। और जब मैं कर सका तो तुम कर सकते हो। मैं तुम जैसा ही व्यक्ति हूं। तुम मुझ जैसे ही व्यक्ति हो। ईश्वरानंद, जो तकलीफें तुम्हें हैं वही मुझे थीं। जो आनंद मेरा है वही तुम्हारा हो सकता है। जरा भी भेद नहीं है। हम सब समान क्षमताएं लेकर पैदा होते हैं। परमात्मा बहुत प्राचीन समय से साम्यवादी है, सदा से साम्यवादी है। वह सबको समान गुण-धर्म देता है। कुछ हैं जो उनका अनुभव कर लेते हैं; कुछ हैं जो उनको छूते ही नहीं, उनको पड़ा रहने देते हैं, वे सड़ जाते हैं पड़े-पड़े, उन पर जंग लग जाती है।
तुम आस्था मत करो। वेदान्त आएगा-अनुभव से। निर्वाण भी आएगा-अनुभव से। मगर पहले तो इस दल-दल से गुजरना होगा। कमल खिलेंगे, मगर पहले इस कीचड़ से गुजरना होगा। तुम कीचड़ से बचना चाहो और कमल पाना चाहो, यह नहीं हो सकता।

कीचड़ से गुजर कर मूल्य चुकाना पड़ता है तो कमल खिलते हैं। कीचड़ में ही कमल खिलते हैं।
तुम पूछते हो: "कोई रास्ता बताएं।"
साक्षी एकमात्र रास्ता है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैंने 11/5/1980 को संन्यास लिया। मैं इसको आपकी
ही कृपा समझता हूं क्योंकि कई साल लग गए। उस दिन ही चरण-स्पर्श का भी शुभ दिन आ गया। मैंने भी आपके चरण छुए और आपने भी मुझे स्पर्श किया। मैं तो भर गया, मैं तो मस्त हो गया।
फिर ऊर्जा-दर्शन का कार्यक्रम शुरू हुआ। मैंने भी उसमें भाग लिया। लेकिन इसमें एक क्षण ऐसा आया कि मुझे लगा कि कहीं मैं सम्मोहित तो नहीं हो रहा हूं। फिर मैं अपने-आप रूक गया। फिर थोड़ी देर बाद दूसरा क्षण आया जब मुझे लगा, अरे यह तो ऊर्जा-दर्शन है! फिर तो मैं ऐसा डूबा कि डूब ही गया और बाहर मस्त होकर निकला।
ओशो, मैंने तो अपनी नैया तेरे हाथ में लगा दी, अब जो चाहो सो करो। फिर ऐसा क्यों हुआ? जो हुआ उसके लिए मुझे बहुत पीड़ा है। माफ करना। मुझे लगता है कि इसके पहले दो-तीन दिन तक कोई ध्यान भी नहीं जमा। कृपा करो!

प्रशांत योगी! जो हुआ, वह कुछ गलत नहीं हुआ। यही तो विचारशील व्यक्ति
का लक्षण है। मैं तुम्हें अंधा होने को थोड़े ही कह रहा हूं। मैं तुम्हें विवेकवान होने को कह रहा हूं। मैं तुमसे विश्वास करने को नहीं कहता। मैं तो कहता हूं: जी भर कर संदेह करो! अगर मेरी बात में कुछ सचाई है तो तुम्हारे सारे संदेहों को तोड़ कर भी मेरी बात तुम्हारे ह्द्य तक पहुंचेगी, पहुंच कर रहेगी।
इसलिए यह भूल कर मत सोचना कि तुमने कोई गलती की। मत कहो यह कि आप मुझे माफ करना। तुमसे कुछ भूल ही नहीं हुई, माफ क्यों करूं? आशीष देता हूं। तुम से जो हुआ ठीक हुआ। विवेक का लक्षण यह है कि हर किसी बात को मान नहीं लेगा। और ध्यान रखना, प्रशान्त, जो बात हम बिना किसी विचार के मान लेते हैं, उसका कोई मूल्य नहीं है। वह निवीर्य होती है, नपुंसक होती है। जिस बात को हम संदेह कर-करके मानते हैं, मानना पड़ता है संदेह करने बावजूद भी, उस बात में बल होता है। उसमें प्राण होते हैं। उसमें ऊर्जा होती है।
ठीक हुआ। एक क्षण को तुम्हें लगा कि कहीं यह सम्मोहन तो नहीं है! विचारशील व्यक्ति हो, लगना चाहिए। और दूसरे ही क्षण तुम्हें खयाल आ गया कि इसमें सम्मोहन का तो कोई सवाल ही नहीं है। कोई किसी को सम्मोहित नहीं कर रहा है। लोग अपनी मस्ती में डोल रहे हैं। अगर तुम्हें पहली बात समझ में न आती, अगर तुम्हारे मन में यह पहला संदेह न उठा होता, तो शायद जो दूसरी घटना घटी मस्ती की वह नहीं घटती, वह चूक जाती।
यह मैं निरंतर अनुभव करता हूं। यहां भारतीय मित्र हैं, गैर-भारतीय मित्र हैं। भारतीय मित्रों की आस्था औपचारिक है। वह तो जन्म के साथ सीख ली है उन्होंने। मेरे पास आते हैं तो चाहे उनकी श्रद्धा हो या न हो, वे झुकेंगे, पैर छुएंगे। पैर छूना ऐसे ही है जैसे कि नमस्कार करना, या जैसे फोन पर लोग कहते हैं-हलो। कोई उसका मतलब नहीं है। कुछ प्रयोजन नहीं है। आदत बन गयी है
मैं छोटा था, मेरे पिता मुझे जहां ले जाते, कोई भी बड़ा बुजुर्ग होता,
वे मुझसे कहते: "पैर छुओ।"
मैं उनसे कहता: "आप कहते हैं तो मैं छू लेता हूं। वैसे तबियत मेरी होती है कि इनको एक लगा दूं। इस आदमी को मैं भलीभांति जानता हूं। आप कह रहे हो तो ठीक है। यह निपट बेईमान है।"
वे कहते: "चुप रहो! यह बात सबके सामने कहने की नहीं है। घर चल कर कह देना।"
तो मैंने कहा कि मुझसे आप मत कहना इस तरह कि पैर छुओ इसके-उसके, हर किसी के पैर छुओ! क्यों छुऊं पैर? मुझे आदमी लगे पैर छूने योग्य तो जरूर छुऊं मगर मैं इसको जानता हूं भली भांति, इसके पैर मैं नही छुऊंगा। आप कहते

हो तो छू लुंगा, मगर ध्यान रखना कि सिर्फ आपके कहने के कारण छू रहा हूं। मैं नहीं छू रहा हूं। मेरा इसमें कुछ लेना-देना नहीं।
वे मुझे मंदिर ले जाते कि झुको, नमस्कार करो! मैं कहता: "सिर्फ किताब रखी है"--... क्योंकि जिस परिवार में मैं पैदा हुआ वहां मंदिर में मूर्ति नहीं होती, सिर्फ ग्रंथ होता है। मैं कहता: "इस किताब को काहे के लिए नमस्कार करें! कागज ही हैं, थोड़ी स्याही है, थोड़ा कागज है, जिल्द बंधी है, ठीक है। सो अपने घर काफी किताबें हैं, झुकना ही हो तो वहींझुक लेंगे। इतने दूर मंदिर आने की क्या जरूरत?"
मगर वे मुझसे कहते कि बड़े होकर समझोगे। मैंने कहा: "थोड़ा-बहुत अभी समझूं, थोड़ा ही सही, तो फिर थोड़ा-थोड़ा करके बड़ा होकर समझूंगा। लेकिन अभी अगर ही नहीं समझूंतो कब शुरू होगी समझ?"
वे एक बार मुझे एक जैन मुनि के पास ले गये, तो वे तो झुके ही; मैं खड़ा रहा। जैन मुनि ने भी मुझे बहुत क्रोध से देखा और मेरे पिताजी ने कहा झूको, नमस्कार करो।
मैंने कहा कि मैं झुक लेता, लेकिन इस आदमी ने जिस ढंग से देखा है, अब आप
भी कहो, सारी दुनिया कहे, मेरे झुकने की तो बात अलग, अगर यह आदमी मेरे पैर छूए तो मैं नहीं छूने दूगां। इससे मेरी मूलाकात हो गयी! जब आप इसके पैर छू रहे थे, जिस ढंग से इसने मुझे देखा है, इसकी आंखों का ढंग वही जो लुच्चों का होता है!
"लुच्चा" शब्द का मतलब समझते हो? लुच्चा शब्द उसी से बनता है, उसी धातु से, जिससे आलोचक बनता है-लोचन से। जो घूर-घूर कर देखे, उसको लुच्चा कहते हैं।
मैनें कहा: "आप नाराज नहीं होना। और ये मुनि महाराज से कह दो कि नाराज
न हों।" लुच्चे का मतलब होता है, जो घूर-घूर कर देखे। इसलिए तो लुच्चा कहते हैं। जब कोई आदमी किसी स्त्री को घूर-घूर कर देखता है तो कहते हैं- यह लुच्चा! लुच्चे का मतलब-आलोचक। लोचन गढ़ा कर देख रहा है-लुच्चा।
मैनें कहा: "यह बिल्कुल आदमी लुच्चा है! और चश्मा भी लगाए हुए है- दोहरे लोचन और इस ढंग से इसने देखा है।"
फिर वे मुझे कभी किसी जैन मुनि के पास नहीं ले गये। उन्होंने कहा: "तुम ले जाने योग्य हो ही नहीं कहीं, क्योंकि मेरी तक फजीहत हो जाती है।" वे जल्दी से मुझे लेकर वहां से भागे कि चलो घर। बस यह आखिरी है, अब तुमको कहीं नहीं ले जाना।
मेरे पास लोंगो को लोग ले आते हैं। स्त्रियां आ जाती हैं। उनके बच्चों को पैर छूना नहीं हैं, वे उनकी गर्दन पकड़ कर दबाती हैं। मैं कहता हूं: "कर क्या रही हो?"--... "कि छुओ-छुओ, पैर छुओ!" वह बच्चा अकड़ रहा है और मां उसकी दबा रही है। अब इस तरह दबाते-दबाते एक दिन बेचारा छूने लगेगा, अभ्यास हो जाएगा। इसका कोई मूल्य नहीं है।
भारतीय लोग आते हैं, वे पैर छू लेते हैं; वह औपचारिक है। पश्चिम से लोग आते हैं, वहां पैर छूने कर आदत नहीं है, न पैर छूने का कोई रिवाज है। उन्हें पैर छूना बड़ा कठिन पड़ता है, बहुत कठिन पड़ता है, बहुत मुश्किल पड़ता है। लेकिन जब पश्चिम का कोई व्यक्ति पैर छुता है तो उसका भाव देखने योग्य होता है। क्योंकि वह छूता ही तब है जब उसके प्राणों में छूने की बात उठती है; जब उसके प्राण राजी हो जाते है; किसी औपचारिकता से नहीं। एक अन्तर्तम अभीप्सा से। एक आनंद से। एक अहोभाव से।
प्रशान्त, सोच-विचारशील युवक हो तुम। यह स्वभाविक था कि तुम्हारे मन में एक क्षण को लगा कि कहीं मैं सम्मोहित तो नहीं हो रहा हूं। न तो इसमें तुम्हें अपराध-भाव अनुभव करने की जरूरत है।
मेरे पास अपराध-भाव कभी अनुभव करना ही नहीं, किसी कारण मत करना। संदेह उठे, कोई चिन्ता नहीं। मैं संदेह कर-करके सत्य को पाया हूं। इसलिए मैं तुम्हारे संदेह को कभी बुरा नहीं कह सकता। मैंने विश्वास करके सत्य को नहीं पाया है। मैनें आस्था करके सत्य को नहीं पाया है। मैंने सब भांति संदेह करके, आत्यन्तिक रूप से संदेह करके सत्य को पाया है। इसलिए तुम्हारे सब संदेह मुझे स्वीकार हैं, अंगीकार हैं।

माफी मत मांगना। अच्छा हुआ। और फिर उसके बाद तुम्हें खुद ही बोध आया, इसलिए एक मस्ती छा गयी। तुम अगर भारतीय ढंग से डोलते रहते... भारतीय नकलपट्टी सीख गये हैं। अगर चार आदमी डोल रहे हैं तो वे भी डोलने लगते हैं। मैं देखता हूं रोज एक भारतीय एक काम करेगा तो दूसरा भी वही करता है। एक भारतीय अगर आएगा और दस रूपए का नोट निकाल कर पैर पर चढ़ा देगा तो दूसरा जो उसके पीछे आ रहा है दर्शन करने, वह भी जल्दी से रूपए निकालने लगेगा। क्योंकि शायद यह नियम है, किया जाना चाहिए। जो किया जाना चाहिए वह करना ही होगा।
तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्मा यह इंतजार कर रखते हैं, दो-चार एजेन्ट छोड़ रखतें हैं। वह निकाल कर सौ रूपए का नोट चढ़ा दिया। दो-चार एजेन्ट भीड़-भाड़ में नोट चढ़ाते रहते हैं और बाकी लोग उनकी नकल करते हैं। क्योंकि जब इतने नोट चढ़ाए जा रहे हैं तो चढ़ाना ही चाहिए; नहीं तो आस्था में शक होगा, आस्तिकता में शक होगा।
मेरे पास आस्तिक होने में और नास्तिक होने में विरोध नहीं है। इस बात
को गांठ बांध लो। नास्तिक होना आस्तिक होने की सीढ़ी है। आस्तिक में मंदिर की सीढ़ियों का नाम नास्तिकता हैं। जो नास्तिकता की सीढ़ियों से आस्तिकता के मंदिर तक पहुंचता है, उसकी आस्तिकता की प्रखरता और, उसकी आस्तिकता की ज्योतिर्मयता और। उसकी आस्तिकता में एक चैतन्य होता है, एक चिन्मयता होती है।
अच्छा हुआ प्रशान्त योगी, न तो क्षमा मांगो, न कहीं मन में यह भाव लेना
कि यह क्या हुआ। मैनें सब समर्पण कर दिया था, फिर यह संदेह क्यों उठा?
तुम कितना ही समर्पण करो, संदेह जाते-जाते ही जाएगा। तुम समर्पण ही क्यों करते हो? इसलिए करते हो न कि संदेह चला जाए। संदेह है, इसलिए तो समर्पण की जरूरत है। तुम्हारे समर्पण करने से ही नहीं चला जाएगा। समर्पण तो सिर्फ तुम्हारी तरफ से सूचना है कि मैं अब संदेह छोड़ने की तैयारी कर रहा हूं। मगर छूटते-छूटते छूटेगा, बात बनते-बनते बनेगी। मगर ठीक राह पर चल पड़े हो। इस मस्ती को बढ़ाओ।
अपराध-भाव को मत लेना, खंडित हो जाएगी।
आनंद मेरा सूत्र है, अपराध नहीं। ऐसे ही चलते रहे तो एक दिन मिट जाओगे, समर्पण पूरा हो जाएगा। शुरू में तो सिर्फ समर्पण का भाव होता है, फिर धीरे- धीरे पूर्णता आती है। धीरे-धीरे अहंकार जाएगा, मन जाएगा।
प्रशान्त योगी, गोरख के प्रसिद्ध शब्द हैं, याद रखना-
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरण है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी मर गोरख दीठा।
मरो-गोरख कहते हैं! किस मरण की बात रहे हैं? अहंकार मरे। संदेह मरे। मगर पहले जीएगा, तो ही मरेगा न। जीया ही न हो कभी, तो मरेगा क्या खाक!
पहले संदेह सीखना पड़ता है। पहले संदेह को धार रखनी पड़ती है। जैसे तलवार पर कोई धार रखे। पहले अहंकार को बलिष्ठ करना होता है। पुष्ट करना होता है। और कभी एक दिन समझ में आती है यह बात कि अब घड़ी आ गयी कि इसे छोड़ दें; अब घड़ी आ गयी कि यह बोझ हो गया, अब घड़ी आ गयी कि यह तो मेरे प्राणों को ही धार काटने लगी, यह तलवार मुझे ही काटने लगी। उस घड़ी में सब गिर जाता है। तुम्हें छोड़ना भी नहीं पड़ता, छूट जाता है।
मन की मृत्यू ध्यान है। मन की मृत्यू संन्यास है।
आज तो तुमने जो संन्यास लिया है प्रशांत योगी, वह तो केवल संकल्प है यात्रा का। अभी तो नाव छोड़ी इस किनारे से। अभी तो मझधार तय करनी होगी। दूर है किनारा, जो अभी दिखाई भी नहीं पड़ता। अभी तुम उस किनारे पर नहीं पहुंच गये। अभी तो इस किनारे से ही लगे हो। अभी रस्सियां खोल रहे हो, एक-एक करके खोलनी पड़ेंगी। फिर पतवार उठानी पड़ेगी। फिर तुफानों और झंझावातों का सामना करना पड़ेगा। मगर जिसने हिम्मत की, उसने जरूर पाया है।
इस जगत में अन्याय नहीं है। परमात्मा, जो जितना श्रम करता है, उसको उसकी पात्रता के अनुसार निश्चित ही देता है। जीसस ने कहा है: "मांगो और मिलेगा! द्वार खटखटाओ और द्वार खुलेंगे!"

आखिरी प्रश्न: ओशो, मैं नौ साल से प्रेमिका ढ़ूंढ रहा हूं कि कोई ऐसी प्रेमिका मिले, जो संसार और ध्यान एक बना दे। नहीं मिली। आशीर्वाद दें कि मैं सही प्रेमिका मिलने तक रूकूं और जबरदस्ती न करूं!

प्रेम चैतन्य! बड़े कठिन कार्य में लगे हो। परमात्मा जल्दी मिल जाएगा, प्रेमिका मिलनी बहुत कठिन है। और जब तक नहीं मिली है तभी तक सौभाग्य समझो। जब मिल जाएगी तो फिर कहोगे कि भगवान, आशीर्वाद दो कि अब कैसे छूटूं!
एक पागलखाने में एक मनोवैज्ञानिक पागलों को देखने गया था। पागलखाने
के प्रधान ने एक कटघरे के सामने खड़े हो कर उसे बताया कि इस पागल को देख रहे हैं! वह पागल अंदर एक तस्वीर लिए हुए था, छाती से लगा रहा था। आंसू झर-झर गिर रहे थे। वर्षा की झड़ी लगी थी। रो रहा था, पुकार रहा था, कि हे प्रिय तुम कहां हो? कब मिलोगी? बहुत देर हो गयी? कब तक पुकारूं, कब तक खोजूं? पागलखाने के प्रधान ने बताया कि यह आदमी न खाता न पीता, सूख कर हड्डी
हो गया है; बस यह फोटो लिए है। मनोवैज्ञानिक ने पूछा: "यह फोटो किसकी है?" उसने कहा: "यह इसकी प्रेमिका की फोटो है और वह इसे मिली नहीं। उसी दुख में यह पागल हो गया।" फिर दूसरे कटघरे के सामने रूके। वहां एक आदमी अपने बाल लोंच रहा था और दीवाल से सिर मार रहा था। उसने पूछा: "इसे क्या हो गया?"
प्रधान ने कहा कि यह वही जो प्रेमिका उसको जो नहीं मिली, इसको मिल गयी। वही स्त्री! इसका विवाह हो गया उससे। तब से यह पागल हो गया है। इसकी हालत और बदतर है।
तुम कह रहे हो: "मैं नौ साल से प्रेमिका ढ़ूंढ रहा हूं। कोई ऐसी प्रेमिका मिले जो संसार और ध्यान एक बना दे!"
ऐसा कभी हुआ है पहले? या ऐसा कभी होगा? असंभव को संभव करने चले हो? ऐसा होता ही नहीं?
एक व्यक्ति खोज रहा था कि परिपूर्ण कोईस्त्री मिले, पूर्ण स्त्री कोई मिले। जीवन भर खोजा। जब मर रहा था तो किसी ने पूछा कि मिली वह स्त्री कि नहीं जिसकी तुमने जिंदगी भर खोज की? उसने कहा: "मिली क्यों नहीं, दो-तीन बार ऐसे मौके आए।"
तो उस व्यक्ति ने पूछा: "फिर तुम अविवाहित के अविवाहित क्यों रहे?"
उसने कहा कि मैं क्या करूं, वह पूर्ण पुरुष खोज रही थी!
तुम तो खोज रहे हो ऐसी प्रेमिका, लेकिन वह भी प्रेमी खोज रही होगी पूर्ण। वह तुमसे राजी होगी? असंभव! तुम पूर्ण ही होओ तो प्रेमिका क्यों खोजो! और वही पूर्ण हो तो तुमको किसलिए खोजे? पूर्ण का अर्थ ही यह होता है कि अब कोई खोज न रही, अब कुछ पाने को न रहा।
सौभाग्यशाली हो कि नहीं मिली। नहीं तो अक्सर मिल जाती है।
मुल्ला नसरूद्दीन अपने शिकार के अनुभव बता रहा था खूब बढ़ा-चढ़ा कर। बातों ही बातों में उसने यह भी कहा कि मैं अलग-अलग जानवरों को बुलाने के लिए विभिन्नप्रकार की आवाजें निकालना जानता हूं। इससे शिकार करना आसान हो जाता है। जैसे हिरण को बुलाना हो तो एक विशेषप्रकार की आवाज करने से, आसपास जो भी हिरण हो वह भागा चला आता है।
एक मित्र ने पूछा: "अच्छा यदि किसी शेरनी को बुलाना हो तो कैसी आवाज करोगे?"
मुल्ला ने झट चिंघाटते हुए एक खास किस्म की आवाज निकाली, फौरन बैठकखाने का दरवाजा खुला और मुल्ला की बीवी गुलजान ने बाहर आकर कहा: "कहिए, क्या बात है? आज आप बहुत शोरगुल कर रहे हैं, बर्दाश्त के बाहर हुई जा रही है बात! अब यदि जरा-सा भी हल्ला-गुल्ला किया तो कहे देती हूं, कच्चा निगल जाऊंगी!"
तुम कह रहे हो प्रेम चैतन्य कि नौ साल से खोज रहा हूं। काफी तपश्चर्या
कर ली। नौ साल में तो नौ ही लोक पार कर जाते। नौ साल में तो नौं ही चक्र खुल जाते। नौ साल में तो सहस्त्रदल-कमल खुल जाता। और तुम प्रेमिका की तलाश कर रहे हो! और ऐसी प्रेमिका, जो संसार और ध्यान एक बना दे! मटियामेट कर देगी।

बड़ी कृपा है भगवान की तुम पर कि तुम तो खोज हे रहो, मगर नहीं मिल रही। पिछले जन्मों का पुण्य-कर्म होगा।
अब तुम कह रहे हो कि आशीर्वाद दें कि मैं ऐसी प्रेमिका पा संकू और जब
तक ऐसी प्रेमिका न मिले तब तक जबरदस्ती न करूं!
तुम क्या जबरदस्ती खाक करोगे! कोईप्रेमिका जबरदस्ती न कर बैठे, वही
डर है। अक्सर लोग सोचते हैं कि वे जबरदस्ती कर रहे हैं; वे गलती में होते हैं। वे भ्रांति में होते हैं।
मुल्ला नसरूदृदीन और उसकी पत्नी सुबह ही सुबह नाश्ते पर बात कर रहे थे, झगड़ा हो गया बातचीत में। पति-पत्नी में और होता है क्या है सिवाय झगड़े के! मुल्ला ने पत्नी ने कहा: "एक बात ख्याल रखो, हमेशा तुम ही मेरे पीछे पड़े थे, मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी।"
नसरूद्दीन ने कहा: "वह बात सच है, क्योंकि चूहादानी किसी चूहे के पीछे नहीं दौड़ती। चूहा खुद ही मूरख फंस जाता है।"
तुम क्या जबरदस्ती करोगे? तुम्हें जबरदस्ती करने की जरूरत नहीं आएगी। वह तो किसी स्त्री की नजर तुम पर पड़ गयी--... तुम कैसे बच रहे हो नौ साल से, यह भी हैरान की बात है। कुछ गुण होगें तुममें। कुछ सद्गुण होंगे कि तुमसे बच कर निकल जाती हैं। नहींतो तुम कभी के किसी के चक्कर में आ जाते, कोई न कोई तुम्हारी गर्दन पकड़ लेती। अब इतने दिन बच गये हो, धन्यवाद दो परमात्मा को!
और अब ध्यान की फिक्र करो, अब क्या प्रेमिका की फिक्र कर रहे हो! इतने दिन में तो क्या से क्या नहीं हो जाता! क्या छोटी-मोटी बातें खोजनीं! और ध्यान के बाद अगर प्रेमिका मिल भी जाए तो खतरा नहीं है। ध्यान के पहले प्रेमिका मिल जाए तो बहुत खतरा हैं, क्योंकि ध्यान से पहले प्रेमिका मिल जाए तो फिर ध्यान न लगने देगी, खयाल रखना। तुम ध्यान करने बैठोगे तो वह हिलाएगी। अखबार नहीं पढ़ने देती, ध्यान क्या करने देगी! ऐसी चीजों में पड़ने ही नहीं देती।
लोग घर से भागे रहते हैं, यहां-वहां भटकते-फिरते हैं। देर-देर तक दफ्तर में बैठे रहते हैं। नहीं काम होता तो भी फाइलें उलटते रहते हैं। न मालूम क्या-क्या बहाने खोजते रहते हैं। किसी तरह घर से बच जाएं!
तुम्हें ध्यान न करने देगी प्रेमिका। प्रेमिका तो किसी भी चीज से स्पर्धा ले लेती है। तुम अगर वीणा बजाओगे, वीणा तोड़ देगी। क्योंकि उससे प्रतियोगिता हो जाती है उसकी कि मेरे रहते और तुम्हारी यह कुवत कि तुम वीणा बजा रहे हो! मेरे रहते और तुम विपस्सना में बैठे हुए हो आंख बंद किए! मेरे रहते और तुम अखबार पढ़ रहे हो! में अभी जिन्दा हूं, मर नहीं गयी! ध्यान मेरी तरफ दो, और कहीं ध्यान न ले जाना।
तुम प्रेम चैतन्य, पहले ध्यान कर लो, फिर अगर कोईप्रेमिका मिल जाएगी
तो ठीक होगा। पर ध्यान पहले सम्हाल लो, फिर प्रेमिका कुछ बिगाड़ न सकेगी। और ध्यान के बादे प्रेमिका मिलेगी भी तो ध्यानी को मिलेगी। और जो प्रेमिका किसी ध्यानी को पसंद करेगी, उससे शायद तालमेल भी बैठ जाए।
मेरे हिसाब में तो प्रत्येक व्यक्ति को पहला काम ध्यान, फिर शेष अन्य बातें। जिसका ध्यान सध गया उसके जीवन में शेष सब अपने-आप सध जाता है।

आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
नौवां प्रवचन

सत्य का निमंत्रण

पहला प्रश्न: ओशो, आपने कहीं कहा कि मैं मूर्तिभंजक हूं, भ्रमभंजक हूं। मुझे लगता है कि उससे बढ़ कर आप महान धारणाभंजक हैं। क्या इस पर कुछ कहने की अनुकंपा करेंगे।

सहजानंद! मूर्तियां हों या भ्रम हों या धारणाएं हों, सब मन के अलग-अलग पहलू हैं। इन्हींईटों से मन का कारागृह निर्मित होता है। और एक-एक ईंट खिसकानी होगी, तो ही तुम अ-मनी दशा में प्रवेश कर सकते हो। तुम जो भी मानते हो, जो भी पूजते हो, उस सबको तुमसे छीन लेना होगा। कठोर लगता है यह। चोट पड़ती है इससे। घाव हो जाते हैं। जो कायर हैं वे तो भाग ही जाते हैं। जो साहसी हैं, वे ही मेरे पास टिक सकते हैं।
और यह सवाल नहीं है कि तुम्हारी धारणा सही है या गलत। कोई धारणा सही नहीं होती। धारणा अर्थात गलत। धारणा का अर्थ होता है: जो नहीं जाना है, उसे मान लिया। जिसका नहीं अनुभव किया है, जिसका नहीं साक्षात्कार हुआ है, जिसकी प्रतीति नहीं हुई है, उसे अंगीकार कर लिया है--किसी भय के कारण, किसी लोभ
के कारण, संस्कारों के कारण, समाज के कारण, सुविधा के कारण, सांत्वना
के कारण। बचपन से सिखाया गया, इसलिए। बार-बार दोहराया गया, इसलिए। सदियों का प्रचार है, इसलिए। फिर इन्हीं धारणाओं को तुम सोचते हो तुम्हारी है और तुम इनके साथ इतने रग-रग जाते हो कि इनका टूटना ऐसा लगता है जैसे तुम टूटे। घबड़ाहट होती है, बेचैनी होती है। जैसे कोई पैर के नीचे से जमीन खींच ले। मगर सदगुरू का काम ही यही है कि तुम्हारे सारे आधार छीन ले। क्यों? क्योंकि तुम निराधार हो जाओ, तो ही तुम्हें परमात्मा का आधार मिलेगा। जब तक तुम्हारे अपने आधार हैं, तब तक परमात्मा का आधार तुम्हें नहीं मिल सकता। तुम निरालंब हो जाओ, तो वह परम अवलंबन मिले। तुम सब सारी धारणाओं से शून्य हो जाओगे, तब तुम उससे पूर्ण हो जाओगे। तुम्हारी शून्यता उसे पाने की पात्रता है। तुम्हारा घड़ा खाली होना चाहिए, तो ही उसका अमृत तुममें भर सके। तुम इतने भरे हो-और कूड़ा-करकट से भरे हो! और यह मत सोचना कि तुम सुंदर शब्दों को सजाए बैठे हो, इसलिए उनको कैसे कूड़ा-करकट कहा जाए? तुमने गीता कंटस्थ कर ली है, कुरान तुम्हें याद है, बाइबिल तुम्हें मालूम है। स्वभावतः तुम सोचते हो और तर्कयुक्त लगती है बात कि गीता के ये सुभाषित वचन, कुरान की ये प्यारी आयतें, बाइबिल के ये अद्भुत बोल, ये कैसे कचरा हो सकते हैं? कृष्ण के मुंह में कचरा नहीं थे। कृष्ण की जबान पर अमृत थे। तुम्हारे हाथ में ही कचरा हो गये, आते ही कचरा हो गये।
सत्य हंस्तांतरित नहीं होता। और यही धारणा कि भा्रंति है। जिसने जाना
है वह जब बोलता है तो शब्द ही नहीं बोलता, शब्द के पीछे उसका अर्थ खड़ा होता है। शब्द में आत्मा होती है। शब्द में प्राण होते हैं। और जब तुम उसी शब्द को दोहराते हो तो वह निष्प्राण होता है, लाश होती है। लाशें सड़ जाती हैं। प्राण हों तो देह सड़ती नहीं। आत्मा भीतर हो तो देह ताजी रहती है, रोज-रोज अपने को ताजा कर लेती है। ऐसे ही शब्द भी सड़ जाते हैं जब उनमें अर्थ की आत्मा नहीं होती। और अर्थ की आत्मा तुम कहां से लाओगे? तुम्हारा अनुभव नहीं है। कृष्ण के ओंठो पर जो शब्द बड़े प्यारे हैं, तुम्हारे ओंठों पर बड़े व्यर्थ हो जाते हैं। शब्द वही, शतप्रतिशत वही; लेकिन तुम वही नहीं हो जो कृष्ण हैं। और यह भ्रांति टूट जाए तो तुम खुद ही सारी धारणाओं को छोड़ दोगे, छूड़ाने की जरूरत न रह जाएगी।
लेकिन तुम अगर एक धारणा छोड़ते भी हो तो तत्क्षण दूसरी पकड़ लेते हो। आस्तिक अगर यह धारणा छोड़ देता है कि ईश्वर है, तो तत्क्षण दूसरी धारणा पकड़ लेता है कि ईश्वर नहीं है। यह भी उतनी ही धारणा है। न तुम्हें पहली का अनुभव था, न तुम्हें दूसरी का अनुभव है। नास्तिक सोचता है कि "मैं ठीक, क्योंकि मैंने तो आस्तिक की धारणा छोड़ दी। ईश्वर का मुझे अनुभव नहीं हुआ,

कैसे मानूं?" लेकिन क्या तुम्हें ईश्वर के न होने का अनुभव हुआ है? उसे मान लिया। गीता छोड़ दी, कुरान छोड़ दीया, तो कार्लमार्क्स की दास कैपिटल मान ली। भेद नहीं कुछ। एक किताब गयी, दूसरी किताब हाथ आ गयी। किताबें बदल लेते हो। हिंदू ईसाई हो जाता है, ईसाई हिंदू हो जाता है, कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम मंदिर जाओ कि मस्जिद, तुम तुम ही हो। तुम मस्जिद को भी गंदा करोगे, तुम मंदिर को गंदा करते रहे। तुम जहां जाओगे वहीं अपनी गंदगी ले जाओगे।

मैं चाहता हूं: तुम धारणा-शून्य हो जाओ। न आस्तिक न नास्तिक। न हिंदू
न मुसलमान। तुम यह कहने की हिम्मत जुटा सको कि मुझे पता नहीं हैं, तो मैं क्या कहूं? मै अविश्वासी नहीं हूं, विश्वासी भी नहीं हूं। मुझे पता ही नहीं तो कैसा विश्वास कैसा अविश्वास?
तुम अपने अज्ञान को स्वीकार कर लो तो तुम्हारे जीवन में क्रांति की पहली किरण उतरे। क्योंकि अज्ञान को स्वीकार करने का अर्थ है: अहंकार की मृत्यू। यह अहंकार है जो अज्ञान को स्वीकार नहीं करने देता। इधर से बचते हो, उधर फंसा देता है; उधर से बचते हो, इधर फंसा देता है।
एक दिन मुल्ला नसरूद्दीन बस की लाइन में खड़ा था। उसने अपने पास ही खड़े हुए व्यक्ति को कहा: "क्या जमाना आ गया है! अब इस सामने खड़े हुए लड़के को देखो, कैसे कपड़े रखे हैं, बिल्कुल लड़कियों जैसा दिखाई पड़ता है।"
"महाशय, वह मेरी लड़की है।" उस आदमी ने कहा।
"ओह माफ करिएगा।" नसरूद्दीन बोला। "मुझे पता नहीं था। मुझे क्या मालुम कि आप ही उसके पिता हैं्"
"क्या बकते हो!" वह आदमी बोला। "अजी मैं उसका पिता नहीं, मां हूं!"
धारणा भी बदलोगेतो तुम्हीं रहोगे न, कुछ फर्क तो पड़ेगा नहीं। एक भूल करते थे, दूसरी करोगे। गणित कौन बिठाएगा?
मैंने सुना है, एक गणित के प्रोफेसर बड़े भूलक्कड़ थे। कक्षा में बोर्ड
पर सवाल करते-करते वे भूल जाते थे कि कहां से शुरू किया, क्या सवाल था। उत्तर आने के पहले इबारत भूल जाती थी। सो सवाल कुछ होता, उत्तर कुछ आता। लड़के हंसते ताली पीटते। बड़ी भद्द होती। एक दिन बिल्कुल तय करके आए कि आज तो कुछ भी हो जाए, ठीक उत्तर लाना है। सो इसके पहले कि सवाल करें, उन्होंने किताब उलट कर पीछे उत्तर देख लिया। उत्तर को ध्यान में रखा, फिर सवाल कर दिया। उत्तर भी ठीक आ गया। लड़कों ने फिर भी ताली पीटी। लड़के फिर भी हंसें आज वे बहुत नाराज हो गये। उन्होंने कहा: "चुप रहो बदतमीजो! आज उत्तर बिल्कुल ठीक है।"
लड़कों ने कहा: "उत्तर तो ठीक है मगर यह दूसरे सवाल का उत्तर है। आपने पीछे किताब उलट कर देखी, वह भी हम देख रहे हैं। मगर आप पांचवां सवाल कर रहे हैं, यह छठवें का उत्तर है।"
इधर से आदमी बचेगा तो उधर उलझ जाएगा। भुलक्कड़ आदमी है। भूलेगा ही। तुम्हारा मन अशांत है, बेचैन है, चिंताओ से ग्रस्त है। इस मन की क्षमता नहीं है सत्य को जानने की। यह मन शांत हो, चिंताओं से मुक्त हो। यह मन निर्विचार के मौन में उतरे। यह मन मिटे तो फिर तुम जा जानोगे वह धारणा नहीं होगी, वह अनुभव होगा। और उस अनुभव के लिए तुम्हारी सारी धारणाओं को तोड़ना पड़ेगा।
और मुझे कई बार पीड़ा होती है, क्योंकि तुम्हारी मैं उस धारणा को तोड़ रहा होता हूं जिसको मैं जानता हूं कि जो गलत नहीं है। लेकिन मेरा जानना मेरा जानना है। लेकिन तुमसे तो छीननी ही होगी। और तुमसे छीनने को एक ही उपाय है कि तुमसे कहूं कि गलत है, नहीं तो तुम छोड़ोगे नहीं। इस भरोसे से कहे चला जाता हूं कि गलत है, कि जब तुम जानोगे तब तुम समझ लोगे मेरी बात कि क्यों मैंने गलत कहा था, क्यों मैंने तुमसे छीनना चाहा था? अगर मैं कहूं सही है तो तुम तो और जोर से छाती से चिपटा कर बैठ जाओगे। तुमको गलत कहता हूं, तब भी नहीं छोड़ते; अगर सही कह दूं, तब तो तुम छोड़ने वाले नहीं हो। तब तो असंभव हो जाएगा।

कल आनंद मैत्रेय ने प्रश्न पूछा था राम के संबंध में। आज उन्होंने प्रश्न पूछा है कि आपने जो उत्तर दिया, ऐसा कठोर मूल्यांकन तो पांच हजार वर्षों में किसी ने राम का नहीं किया। और मेरा हिंदू मन तो घबड़ा गया है कि कहीं राम मुझ पर, धनुर्धारी राम मुझ पर नाराज तो नहीं हो जाएंगे?
उनसे मैं निपट लूंगा, तुम फिक्र छोड़ो! धनुर्धारी राम से निपटना है, वह मैं देख लूंगा। मुझे तो कई से निपटना पड़ेगा। इस जमीन से छूटते ही न मालूम कितनों से निपटना पड़ेगा! उसमें धनुर्धारी राम भी सही। मगर तुम चिंता न लो। तुमसे तो मैं सब छीन लूंगा। तुमसे तो छीनता चला जाऊंगा। जितने तुम राजी होते जाओगे उतना ज्यादा छीनता चला जाऊंगा।
संसार छोड़ने को मैं नहीं कहता, मन छोड़ने को कहता हूं। मन कैसे छोड़ोगे तुम? अगर मन की धारणाएं पकड़े रहे तो मन नहीं जाएगा।
सहजानंद, तुमने ठीक कहा कि मैं धारणाभंजक हूं। मूर्ति भी धारणा है। इसलिए मूर्तिभंजक हूं। मूर्ति क्या है? पत्थर में धारणा को आरोपित कर लिया। अभी तुम रास्ते के किनारे एक पत्थर रख कर बैठ जाओ, पोत दो सिन्दूर, चढ़ा दो दो फूल, एक नारियल फोड़ दो। आंख बंद करके माला जपने लगो। तुम चकित होओगे कि जो भी निकलता है वही झुक कर नमस्कार करता है। थोड़ी देर में कोई आएगा, जो फूल चढ़ा जाएगा। थोड़ी देर में आकर कोई चंठोतरी कर जाएगा। थोड़ी देर में कोई आएगा, मनौती कर जाएगा कि अगर मेरा बच्चा हो गया तो हे हनुमानजी, ऐसा-ऐसा करूंगा!
एक सूफी फकीर एक गांव में ठहरा। एक आदमी ने उसकी बड़ी सेवा की। जब फकीर जाने लगा तो अपना गधा, जिस पर बैठ कर वह यात्रा करता था, उस भक्त को दे गया। भक्त ने तो अहोभाव माना। क्योंकि फकीर के पास कुछ और था नहीं, बस यही गधा था जिस पर वह यात्रा करता था। और यह गधा कोई साधारण गधा तो नहीं हो सकता; पहुंचे हुए फकीर का गधा था, पहुंचा हुआ ही गधा होना चाहिए। तो वह गधे का बड़ा सम्मान करता था। फिर गधा मरा; सोचा, अब क्या करना। फकीर का गधा है, पहुंचा हुआ गधा है, सिद्ध गधा है! तो उसने उसकी समाधि बनायी। इधर समाधि बन कर तैयार हुई कि कोई पूजा के फूल चढ़ाने लगा, कोई आ कर ऊदबत्ती लगाने लगा। कोई पैसे चढ़ाने लगा! यह आदमी तो गरीब आदमी था। इसने तो कहा, यह अच्छा धंधा शुरू हुआ! सांझ होते-होते उसे लगा कि यह तो काम बन गया। पांच-सात साल में तो समाधि के आसपास एक बड़ा मंदिर खड़ा हो गया।
कोई दस साल बाद फकीर पुनः गांव में आया। उसने पूछा कि मेरा एक भक्त यहां हुआ करता था, वह कहां है? लोगों ने कहा: "अब वह खुद भी एक पहुंचा हुआ फकीर हो गया है। वह आप जो देखते हैं दूर से संगमरमर का मंदिर, वह उसी फकीर का है। और बड़ा चम्तकारी फकीर है। और न मालूम किस सिद्ध पुरुष की समाधि उसने बनवायी है, राज खोलता नहीं। कोई कुछ पूछता है तो बिल्कुल चुप रह जाता है, चुप्पी साध जाता है। हंसता है, मुस्कुराता है, बोलता नहीं। कुछ रहस्य की बात है। मगर चढ़ौतरी बढ़ती जा रही है, दूर-दूर से लोग आने लगे; अब तो हर साल मेला भी भरने लगा है। उर्स मनाया जाता है, कव्वालियां पढ़ी जाती हैं। बड़े कव्वाल आते हैं। शोरगुल मचा रहता है। गांव में रौनक आ गयी, जिन्दगी आ गयी। यह मुर्दा गांव की धूल झड़ गयी। सारे गांव को लाभ हो रहा है।"
फकीर भी पहुंचा। उसने भी देखा कि गजब हो गया। उसने अपने शिष्य को अलग बुलाया, कहा कि भाई मुझे तो कम से कम कम बता, किस सिद्ध पुरुष की समाधि है? उसने कहा: "अब आप से क्या छिपाना! वह जो आप सिद्ध गधा दे गये थे, बड़े गजब का गधा था! क्या चीज आपने भेंट दी! वह तो यह कहो कि मैं समझदार था, अगर गधा ही समझता उसको तो चूक जाता। मगर मैंने उसे सिद्ध पुरुष माना। उसका आज यह फल भोग रहा हूं।"
बूढ़ा फकीर हंसने लगा। उसने कहा: "वह था सिद्ध पुरुष ही। अरे वही क्या, उसका बाप भी ऐसा ही सिद्ध पुरुष था। आखिर मैं किसकी समाधि पर बैठा हुआ हूं! इसका बाप! यह खानदानी था।
इससे फर्क नहीं पड़ता कि तुम पत्थर को रंग कर रख कर बैठ जाओ। आखिर हैं
भी क्या तुम्हारी मूर्तियां-पत्थर ही हैं! इससे भी कुछ फर्क नहीं पड़ता कि तुम किस तरह के भ्रम पाल लेते हो। अब अभी रोज करीब-करीब अफ्रीका से पत्र आने शुरू हो गये हैं। एक नयी मुसीबत शुरू हुई। अफ्रीका से मैं चाहता ही

नहीं कि पत्र आएं। मगर अब सारी दुनिया से लोग आएंगे तो अफ्रीका को भी बचाया नहीं जा सकता। अफ्रीका से भी बचा नहीं जा सकता। कोई को जवाब नहीं दिए जाते। अफ्रीका के लिए मैंने मना कर रखा है, जवाब देना ही मत। क्योंकि अफ्रीका से जो पत्र आते हैं, बस उनमें यह होता है कि मेरी पत्नी को भूत लग गया है, प्रेत लग गया है; मेरे बच्चे को कोई चुडै.ल ने फांस लिया है। ताबीज चाहिए, मंत्र चाहिए। आपका किसी तरह से पता लगा है तो आपको पत्र लिखता हूं। बस आप ही एकमात्र आशा हैं अब।
अफ्रीका में अभी भी कोई तीन हजार साल पहले लोग रह रहे हैं। अभी वहां मंत्र-तंत्र, जादू-टोना वही काम है। धर्म का मतलब ही वही है। वहां धर्मगुरू का अर्थ होता हैः मदारी। सत्य साई बाबा जैसे आदमी वहां जाएं तो बहुत भीड़-भड़क्का हो, बहुत लोग इकट्ठे हों, भारी प्रसिद्धि हो। ऐसे भी देखने-दिखाने में वे अफ्रीकन ज्यादा मालूम पड़ते हैं। उनके बाल देखे? बुद्धि भी अफ्रीकन है। खून में जरूर नीग्रो हिस्सा होना चाहिए।
पर इन सारे लोंगो को और इसमें ऐसे लोग नहीं कि गैर पढ़े-लिखे लोग हों- प्रोफेसर, डॉक्टर, इनके भी पत्र आते हैं तो बस बात यही है कि ताबीज भिजवा दें, कि कंठी भिजवा दें, कि माला भिजवा दें, कि कुछ मंत्र भेज दें, कुछ ऐसा करें कि मेरे घर को भूत प्रेत छोड़ दें। किसी के घर में भूत-प्रेत चढ़े हुए हैं। किसी के घर पर दुश्मन ने जादू कर रखा है, वह जादू कटवाना है। अफ्रीका में धर्म का भी यही अर्थ है। मगर यह भ्रम औरों के टूट गये, लेकिन दूसरे भ्रम पाले हुए हैं। कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम कैसे भ्रम पाले हुए हो। तुम जब तक जागे नहीं हो, तक भ्रम पालोगे ही। तुम जब तक जागे नहींतब तक सपने देखोगे ही। फिर तुम सपने क्या देखते हो, इसका मुझे विचार नहीं है, इसकी बहुत चिंता मैं नही लेता। मैं तुम्हारे सपने ही तोड़ना चाहता हूं। अ देखो कि ब देखो कि स देखो, सपना सपना है।
सहजानंद, तुम्हारी सारी धारणाओं को छोड़ सको, तो ही मेरे संन्यासी हो,
तो ही मेरे करीब आए। जितनी तुम्हारी धारणाएं कम होती जाएंगी उतने ही तुम मेरे निकट होते जाओगे। जिस दिन तुम्हारे और मेरे बीच कोई धारणा खड़ी न रह जाएगी, उस दिन मिलन है।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
इस मधुशाला से हम जितना पीते हैं उतना ही कम क्यों लगता है? मुझे ऐसा लगता है कि मैं चूकती जाती हूं। इतना आप पिलाते हैं, मैं नहीं पीती हूं। मेरे वश में नही है। क्या यह एक शिकायत की आदत तो नहीं है, कि सच में ऐसा है कि मैं साहस नहीं कर पाती?
धर्म श्रद्धा,
साहस तुझमें पूरा है। साहस की कोई कमी नहीं है। श्रद्धा तेरी अनूठी है। तेरा भाव समग्र है। तू यूं ही किसी औपचारिकता से संन्यासिनी नहीं हो गयी है; हार्दिकता से हुई है। यह समर्पण किसी लोभ में, किसी भय में नहीं हुआ है। यह प्रीति का फूल है।
लेकिन यह जो परमात्मा का रस है, यह रस ही ऐसा है: कितना ही पीओ, फिर भी पीने को शेष रह जाएगा। कितना ही जानो, फिर भी जानने को शेष रह जाएगा। इस मधुरस को पीने से प्यास बुझती नहीं, बढ़ती है। यह तेरा कसूर नहीं। यह तेरी परवशता भी नहीं। यह तो शराब का ही गुण है कि पीने से और प्यास बढ़ेगी, और सघन होगी, और बढ़ती जाएगी। इसका कोई अंत नहीं है। इसलिए तो परमात्मा को अनंत कहते हैं।
तू कहती है: "इस मधुशाला से हम जितना पीते हैं उतना ही कम क्यों लगता है?" जितना-जितना पीएगी उतना-उतना कम लगेगा। क्योंकि जितना जानोगे उतना ही पाओगे कि कितना अनंत जानने को शेष पड़ा है। अज्ञानियों को लगता है: सब जान लिया; ज्ञानियों को लगता है: क्या खाक जाना! अभी तो क ख ग भी नहीं पढ़े। अज्ञानियों को लगता है: उस पार पहुंच गये; ज्ञानियों को लगता है: अभी तो यही पार छूटा है, अभी दूसरा पार तो दिखाई भी नहीं पड़ता। सच पूछो तो दूसरा पार है ही नहीं। इस पार से छूटे कि फिर मझधार ही मझधार है। फिर तुम अनंत में प्रवेश करोगे, जिसका कहीं कोई पारावर नहीं है।

पीओ, जी भर कर पीओ! मगर इस आशा में मत पीना कि तृप्ति हो जाएगी। जिससे तृप्ति हो जाए वह साधारण बात है। जिससे तृप्ति हो ही न और अतृप्ति सघन होती चली जाए, एक दिन तुम प्यास ही प्यास रह जाओ, तो ही जानना कि परमात्मा के द्वार पद दस्तक पड़ी है; तो ही जानना की प्रार्थना उठी है, पूजा का थाल सजा है।
शुभ हो रहा है, श्रद्धा। शिकायत का कोई सवाल नहीं है इसमें। मगर तुझे लगता होगा कि कहीं ऐसा नहीं है कि मेरी शिकायत की आदत हो गयी है, इसलिए यह शिकायत कर रही हूं। नहीं, शिकायत का कोई सवाल नहीं है। जो भी पीएंगे, उन सभी को ऐसा अनुभव होगा। और पहले ऐसा ही लगेगा। यह भी शुभ लक्षण है कि अपनी ही कोई भूल होगी, कि अपने ही साहस की कमी होगी, कि अपनी ही शिकायत की आदत होगी। न साहस की कमी है, न शिकायत की आदत है। यह परमात्मा का लक्षण है कि हम उसे पीएंगे, उतना ही पीने को और-और! एक रहस्य का द्वार खुलेगा, और-और द्वार खुल जाएंगे। अंतहीन रहस्यों की शृंखला है। एक दीया जला कि फिर जलते ही चले जाते हैं दीयों पर दीये! फिर यह पूरी दीवाली है। फिर अंत नहीं आता इस पंक्ति का। फिर ये दीए कहीं समाप्त नहीं होते। असीम है परमात्मा, अनंत है परमात्मा। अगाध है, अपार है, अगम है!

तीसरा प्रश्न: भगवान,

निरंकारी बाबा गुरूबचन सिंह की हत्या किसी धर्मान्ध ने कर दी। बाबा
ने किसी धर्म की निंदा नहीं कीं। उनका दोष केवल इतना था कि वे गुरू-ग्रंथ साहिब को अंतिम गुरूवाणी नहीं मानते थे। वे अन्य धर्म की पुस्तकों को भी मान देते थे। हमें डर है कि इस तरह सत्य के किसी पुजारी को सत्य बात नहीं कहने दी जाएगी। कृपा कर समझांए कि सत्य का गला घोंटने वालों से कैसे मुक्ति मिले?
शांतिस्वरूप भारती,
हत्या तो किसी की भी बुरी है। हत्या ही बुरी बात है। विध्वंस अधर्म है। इसलिए जिसने भी किया हो, वह पागल है।
लेकिन एक और कारण से भी यह हत्या बिल्कुल व्यर्थ हुई, कयोंकि निंरकारी बाबा गुरूबचन सिंह में ऐसा कुछ भी नहीं था कि हत्या करने की जरूरत पड़े। ये तीन गोलियां बेकार गयीं। कोईकृष्णमूर्ति की हत्या करे, समझ में आता है। बाबा गुरूबचन सिंह की हत्या करने में कुछ भी सार नहीं है। बिल्कुल असार है। बात में कुछ जान ही नहीं थी। अब नाहक उपद्रव खड़ा कर दिया इस आदमी ने उनकी हत्या करके। हत्या करके अब उनको शहीद बना दिया। हत्या करके अब उनको मसीहा बना दिया। ऐसा कुछ भी नहीं था। अच्छे आदमी थे, बुरे आदमी नहीं थे। मगर कोई जीसस को सूली लगाए तो समझ में आता है, कोई सुकरात को जहर पिलाए तो समझ में आता है। निरंकारी बाबा में ऐसा कुछ भी नहीं है कि इनको कोई सूली लगाओ कि जहर पिलाओ। नाहक जहर खराब करना! नाहक सूली को बदनाम करना!
यह आदमी पागल भी था, मूढ़ भी था। और इसी तरह के मूर्खो के कारण दुनिया में न मालूम कितने लोग व्यर्थ ही पुज जाते हैं। अब बाबा गुरूबचन सिंह से छुटकारा मुश्किल है। ऐसे तो अपने-आप मर जाते। सभी को मरना होगा। भूल-भाल जाते लोग उन्हें। लेकिन अब भूलना बहुत मुश्किल हो जाएगा। अब इस पागल आदमी ने सील-मोहर लगा दी।
तुम कह रहे हो कि "बाबा ने किसी धर्म की निंदा नहीं की।" ये राजनैतिक चालबांजिया हैं। ये कोई धार्मिक व्यक्ति के लक्षण नहीं हैं। धार्मिक व्यक्ति तो सत्य कहेगा; निंदा हो किसी की तो निंदा हो, प्रशंसा हो किसी की तो प्रशंसा हो। धार्मिक व्यक्ति तो सत्य कहेगा। ये राजनैतिक व्यक्तियों के हिसाब-किताब हैं। जैसे महात्मा गांधी रोज भजन करते रहते थे-"अल्ला ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान।" वह सिर्फ राजनैतिक भजन था, उसमें कहीं कोई धर्म नहीं है। जिन्दगी भर यही कहते रहे-अल्ला ईश्वर तेरे नाम! लेकिन गीता को कहा कि मेरी माता है। कुरान को नहीं कहा कि मेरे पिता है। माता हो तो पिता भी होना चाहिए। और जब गोली लगी महात्मा गांधी को तो मुंह

से अल्लाह नहीं निकला, राम निकला-हे राम! वह जो भीतर छिपा था, जो संस्कार था हिंदू होने का, वह बाहर आया। उस वक्त भूल गया अल्ला ईश्वर तेरे नाम! कम से कम मरते वक्त तो इतना कह देते-अल्ला ईश्वर तेरे नाम! मगर उस वक्त कहां राजनीति याद रहे! उस वक्त संस्कार बोला। उस बार मन की जो बंधी हुई धारणा थी, वह बोली।
ये सब राजनीतिक चालबाजियां हैं। अगर यह सच हो कि धार्मिक व्यक्ति आलोचना नहीं करता तो बुद्ध ने फिर वेद की आलोचना की, तो धार्मिक व्यक्ति नहीं रहे होगें। और महावीर ने हिंदू धर्म की आलोचना की, तो धार्मिक व्यक्ति नहीं रहे होगें। तो शंकराचार्य ने बुद्ध की आलोचना की, तो धार्मिक व्यक्ति नहीं रहे होगें। तो मुहम्मद ने मूर्ति-पूजा की आलोचना की, और सारे धर्म मूर्तिपूजक थे, तो मुहम्मद फिर धार्मिक व्यक्ति नहीं रहे होगें। तो फिर जीसस को सूली क्यों लगी? जीसस ने आलोचना की, गहरी आलोचना की। जीसस ने यहूदियों की मान्यताओं की गहरी आलोचना की-जितनी गहरी आलोचना हो सकती थी।
धार्मिक व्यक्ति तो सत्य बोलेगा। और सत्य तो चमकती हुई तलवार है, उसमें धार होती है।
ये बोथले लोग हैं। ये सब धर्मो की प्रशंसा करते रहेंगे। ये सबको मान देते रहेंगे-तुम भी ठीक, तुम भी ठीक। इनकी फिक्र है कि जितने ज्यादा शिष्य मिल जाएं... और अब एक बात तो साफ ही है कि सारे लोग बंटे हुए हैं, नये आदमी कहां खोजोगे? उसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोईईसाई है, कोई जैन है, बौद्ध है, ऐसा आदमी तो खोजना मुश्किल है जो अभी कोई धर्म का नहीं है। तो नयी गुरूडम बनानी हो तो तुम आदमी कहां से लाओगे? तो गुरूग्रंथ की भी प्रशंसा करो, ताकि कुछ सिक्ख फंसे; कुरान की भी प्रशंसा करो, ताकि कुछ मुसलमान फंसे; गीता की भी प्रशंसा करो, ताकि कुछ हिंदू फंसे। आखिर लोग तो बंटे हुए हैं, इनको लाना है इनकी दुकानों से।
मेरा जैसा काम तो बहुत मुश्किल से कोई करेगा। मेरे पास तो सिर्फ वे ही लोग आ सकेंगे जो कि सच में ही सत्य के अन्वेषण के लिए सब कुछ गंवाने को तैयार हैं। क्योंकि मैं किसी की कोईप्रशंसा करने नहीं बैठा हूं, न किसी को सम्मान देने बैठा हूं। मुझे तो जो सत्य है वही कहना है। कोई सुने तो ठीक, कोई न सुने तो ठीक। तुम हो तो ठीक, तुम नहीं होओगे, मुझे बोलना है तो अकेले में बोलूंगा। इससे क्या फर्क पड़ता है? दीवालों से बोल लूंगा, मगर वही बोलूंगा जो बोलना है। लेकिन कोई समझौता नहीं करूंगा।
ये सब समझौतावादी लोग हैं। ये सब दांत-निपोर लोग हैं। ये जहां जाएंगे वहीं दांत निपोर कर खड़े हो जाएंगे, कि हां-हां बिल्कुल ठीक, यही तो बात है, यही तो सच है। ये थोड़ी-सी कुरान की भी प्रशंसा करेंगे, गीता की भी प्रशंसा करेंगे, रामायण की भी प्रशंसा करेंगे। ये सबकी प्रशंसा कर देंगे। ये सबकी खुशामद कर रहे हैं। ये तुम्हारे अहंकार पर मक्खन लगा रहे हैं। ये कह रहे हैं कि आओ, तुम भी आ जाओ। तुम्हारा धर्म भी बिल्कुल ठीक है।
आलोचना निंदा नहीं है। निंदा आलोचना नहीं है। लेकिन लोग आलोचना को निंदा समझ लेते हैं। अब मैं यह कैसे बर्दाश्त कर सकता हूं कि राम किसी शूद्र के कानों में सीसा पिघलवा कर भरवां दें! इसकी मैं सख्त आलोचना करूंगा, चाहे कुछ भी मूल्य चुकाना पड़े। यह बात गलत है। चाहे राम को मानने वाले कितने ही दुखी हो जाएं और नाराज हो जाएं, इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन यह बात गलत है तो गलत है, फिर राम ने की हो या किसी ने की हो। इसे मैं स्वीकार नहीं कर सकता हूं, क्योंकि मुझे कुछ राजनीति नहीं करनी है।
ये तुम्हारे तथाकथित निरंकारी बाबा सिर्फ राजनैतिक खिलाड़ी हैं, और कुछ भी नहीं। तो मैं भी इनके मारे जाने के विरोध में हूं, लेकिन मेरा कारण और है। मेरा कारण यह है कि तीन कारतूस बेकार खराब किए। कुछ भले काम में लगाते। कुछ मारना था तो मारने योग्य आदमी को मारते। क्या मक्खियां मार रहे हो! कुछ मारने योग्य भी नहीं है।
लेकिन सिक्ख नाराज थे। स्वभावतः। यह बात समझने जैसी है। गांधी को मुसलमानों ने नहीं मारा, हिंदूओं ने मारा। पूछो क्यों? आखिर मारना चाहिए था मुसलमानों को, यह तर्कयुक्त होता। लेकिन मुसलमानों ने नहीं मारा।

नोआखाली में भी गांधी निहत्थे घूमते रहे, जहां मुसलमान हिंदूओ की हत्या करने में लगे थे, फिर भी उन्होंने गांधी को नहीं मारा। पत्थर भी नहीं मारा, गोली मारनी तो दूर। कारण? क्योंकि गांधी कुरान की प्रशंसा कर रहे थे। कोई हिंदू कुरान की प्रशंसा कर रहा हो तो मुसलमान कैसे नाराज हों? मुसलमान के तो दिल को बड़ी खुशी हो रही थी। मुसलमान ही करते हैं प्रशंसा कुरान कि, किसी हिंदू ने तो कभी की नहीं थी। यह पहला हिंदू है। यह पहला हिंदू महात्मा है जो कुरान की प्रशंसा कर रहा है। इसलिए मुसलमानों ने गांधी को नहीं मारा। लेकिन मारा हिंदूओं ने। हिंदू ही मारेंगे, क्योंकि यह दगाबाज है, धोखेबाज है। यह कुरान की प्रशंसा कर रहा है! गीता के रहते! रामायण के रहते, वेद के रहते, उपनिशद के रहते- इसको कुरान की प्रशंसा करने की पड़ी है!
तुम बात को समझना, सीधी बात है। मुसलमान को तो ठीक लग रहा है, अच्छा लग रहा है, क्योंकि एक हिंदू प्रशंसा कर रहा है, इससे अच्छा और क्या होगा! इससे जाहिर होता है कि कुरान श्रेष्ठ है। मुसलमान तो प्रशंसा करते ही करते हैं, हिंदू महात्मा तक प्रशंसा कर रहे हैं! लेकिन हिंदूओं को चोट लग रही है कि अपना आदमी अपनी किताबों को छोड़ कर और मुसलमानों की किताबों की प्रशंसा कर रहा है! और बाइबिल की प्रशंसा कर रहा है! और जैन शास्त्रों की प्रशंसा कर रहा है! महावीर और बुद्ध के गुणगान गा रहा है!
हिंदू ग्रंथों में महावीर का उल्लेख भी नहीं है, इतनी उपेक्षा की है
कि उल्लेख भी नहीं किया। निंदा की तो बात छोड़ दो तुम, आलोचना की फिक्र छोड़ दो। इतना भी सम्मान नहीं दिया। मित्रता का सम्मान न देते, कम से कम शत्रुता का सम्मान तो दे देते! कम से कम इतना तो कह देते कि तुम गलत हो! यह भी नहीं कहा, बिल्कुल उपेक्षा ही कर दी। महावीर का उल्लेख ही नहीं किया हिंदू शास्त्रों में। ऐसे छोड़ दिया कि बात ही करने की नहीं है; जैसे दो कौड़ी की बात है, क्या इसका हिसाब रखना!
और बुद्ध की तो कठोर निंदा की। कोई एक हजार साल तक हिदूं शास्त्र बुद्ध की निंदा से भरे रहे।
और यह महावीर की प्रशंसा कर रहे हैं महात्मा गांधी। तो जैनियों को तो बहुत जंचा। जैनी तो बड़े प्रसन्न हुए। यह जान कर तुम हैरान होओगे कि जितने जैनियों ने खादी पहनी इस देश में, उतने किसी और ने नहीं पहनी। और जितने जैनियों ने चरखा चलाया, उतने किसी और ने नहीं चलायां क्योंकि उनको पहली दफा एक हिंदू महात्मा ने उनकी अहिंसा परमोधर्मः को स्वीकार किया। घोषणा कर दी कि धर्म तो सच्चा यही है। जितने जैन जेल गये-उनके अनुपात की दृष्टि से--... जैनों की संख्या बहुत कम है-कुल तीस-पैतींस लाख। जिस अनुपात में जैन जेल गये, उस अनुपात में कोई दूसरे लोग जेल नहीं गये। जैन तो बिल्कुल नाच उठे। दो हजार ढाई साल में किसी हिंदू महात्मा ने प्रशंसा नहीं की थी। प्रशंसा की बात क्या, निंदा तक नहीं की थी। इस आदमी ने कम से कम सम्मान तो दिया-और ऐसा सम्मान दिया! स्वभावतः जैन खुश थे, मगर हिंदू नाराज थे। असली नाराजगी हिंदूओं में थी। मुसलमान खुश थे, असली नाराजगी हिंदूओं में थी। ईसाई खुश थे। ईसाईयों को तो आशा थी कि महात्मा गांधी को किसी तरह ईसाई बना लेंगे। ईसाईयों ने बहुत प्रयास किए और एक घड़ी ऐसी भी आ गयी थी कि महात्मा गांधी भी सोचने लगे थे ईसाई हो जाना चाहिए। अफ्रीका में ईसाई मिशनरियों ने काफी उन पर डोरे डाले, क्योंकि जो आदमी ईसा की इतनी प्रशंसा कर रहा है उसे ईसाई क्यों न बना लिया जाए!
महात्मा गांधी ने तीन व्यक्तियों को अपना गुरू सिद्ध किया था। एक थे जैन-श्रीमद रामचंद्र। सो जैन खुश थे कि हमारे एक जैन तपस्वी को गांधी ने अपना गुरू स्वीकार किया है। और शेष दो थे ईसाई-टॉलस्टाय और रसकिन। ईसाई भी खुश थे। इनमें हिंदू तो एक भी नहीं था। ये तीन गुरू थे; उनमें एक जैन था, दो ईसाई थे।
इसलिए मुसलमानों ने हत्या नहीं की, हिंदूओं ने हत्या की।
तुम जान कर यह हैरान हाओगे, मैं जैन घर में पैदा हुआ: मुझसे जितने नाराज जैन हैं, उतना कोई भी नहीं। स्वभावतः, क्योंकि जैनों को आशा थी कि मैं उनके धर्म का प्रचार करूंगा सारी दुनियां में। उनकी आशा पर मैंने पानी फेर दिया। जितनी आलोचना मैंने उनकी की है, किसी और की नहीं की। उसका

कारण भी साफ है, क्योंकि जितना मैं उनसे परिचित हूं उतना किसी और से परिचित नहीं हूं। उनकी पोर-पोर से, रग-रग से परिचित हूं। उनकी हर हरकत से परिचित हूं। तो स्वभावतः जितनी आलोचना मैंने उनकी की है उतनी आलोचना मैंने किसी की नहीं की। आखिर आलोचना के लिए जानना तो जरूरी है, पूरा जानना जरूरी है। प्रशंसा के लिए इतना जानना जरूरी नहीं है। प्रशंसा ऊपर-ऊपर की जा सकती है, लेकिन आलोचना के लिए तो भीतर जाना पड़ेगा, ठीक जड़ पकड़नी पड़ेगी। तो जैन जितने मुझसे नाराज हैं, उतना मुझसे कोई नाराज नहीं है।
यह बाबा गुरूबचन सिंह से अगर अकाली नाराज थे, सिक्ख नाराज थे, तो उसका कारण था। उसका कारण यह था कि "गुरूबाणी के होते हुए, दस गुरूओं की वाणी मौजूद है, गुरूग्रंथ साहब मौजूद हैं, उसके होते हुए तुम दूसरे धर्मो के ग्रंथों को सम्मान देते हो, शर्म नहीं आती? यह अपमानजनक बात है!" और जिन-जिन सिक्खों को--... अधिकतर तो उनके मानने वाले सिक्ख ही हैं, क्योंकि खुद भी सिक्ख थे, इसलिए सिक्खों से संबंध था। सिक्खों को धीरे-धीरे तोड़ लिया था उन्होंने। तो सिक्खों को दुख था कि यह हमारे बीच एक गद्दार है, जो हमारे लोंगो को तोड़ रहा है। वे जो सबको मान दे रहे थे, वही सिक्खों को दुख का कारण था। वही अकालियों को दुख का कारण था। वही पीड़ा थी उनकी। उस पीड़ा का बदला लिया जाने वाला था। इसका धर्म इत्यादि से कुछ लेना-देना नहीं है। निरंकारी बाबा के वचनों में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसको कोई मूल्यवान कहा जा सके। पिटी पिटाई बातें हैं। वही सड़ी-सड़ायी बातें हैं, जो सदा से इस देश में लकीर के फकीर कहते रहे हैं। उनमें एक भी बात न तो मौलिक है, न अनुभवगत है, न स्वंय के साक्षात पर खड़ी है। मगर आदमी कुशल थे, होशियार थे, राजनैतिक थे। ठीक से अपना काम चला रहे थे। नाहक उनको मारने की कोई आवश्कता नहीं थी।
इस तरह हम गलत लोंगो को मार कर उनको ठीक लोंगो की पंक्ति में खड़ा कर देते हैं। अब यह शांतिस्वरूप तक को ऐसा लग रहा है कि बड़ा गला घोंट दिया गया है सत्य का! सत्य है ही नहीं, सिर्फ गला जरूर घोंटा गया है। मगर गला घोंटने से ऐसा लगता है कि सत्य को गला घोंटा गया है। सत्य वगैरह कुछ भी नहीं है। सिर्फ गला घोंटने से हमेशा सत्य का ही गला नहीं घोंटा जाता।
तुम पूछ रहे हो: "उनका दोष केवल इतना था कि वह गुरूग्रंथ साहब को अंतिम गुरूवाणी नहीं मानते थे।" यही तो दोष था। यही तो अकालियों को अखरता था, क्योंकि प्रत्येक धर्म एक दावा रखता है। जैसे जैनों ने कहा कि चौबीस तीर्थकर होते हैं, सिर्फ चौबीस तीर्थकर होते हैं एक कल्प में। एक कल्प का अर्थ होता है-एक सृष्टि से प्रलय। अनंत काल बीतता है। इसको एक कल्प कहते हैं। एक कल्प में सिर्फ चौबीस तीर्थंकर होते हैं। चौबीस तीर्थंकर हो चुके।
जैनियों का एक समूह मुझसे मिलने आया था। मैं कलकत्ते में था। समूह के लोंगो ने कहा कि आप जैसा व्यक्ति हो तो हमारा धर्म सर्वभौम हो सकता है, जगत के कोने-कोने तक पहुच सकता है।
मैंने कहा: "बहुत मुश्किल है, क्योंकि तुम पच्चीसवां तीर्थकर स्वीकार न कर सकोगे।"
उन्होंने कहा कि मतलब आपका?
मैंने कहा कि मैं पच्चीसवां तीर्थकर हूं!
उन्होंने कहा: "क्या कह रहे हैं आप! तीर्थकर तो चौबीस ही होते हैं, पच्चीस हो ही नहीं सकते।"
मैंने कहा: " मैं कहता हूं पच्चीस हो सकते हैं। जब मैं खुद ही कह रहा हूं, मैं पच्चीसवां हूं! तुम पहले इस पर सोच लो।"
फिर वे दिखाई नहीं पड़े उस दिन के बाद मुझे। फिर उनका पता ही नहीं चला।
वे जो मेरे द्वारा सारी दुनिया में जैन धर्म का प्रचार करवाना चाहते थे, जरा-सी बात ने--... और मैं मजाक ही कर रहा था। मुझे कोई पच्चीसवां होने का शौक नहीं। जब मैं प्रथम हो सकता हूं, तो पच्चीसवां क्यों होना! कोई मैं पागल हूं कि क्यू में खड़े हैं पच्चीसवें! वे अगर राजी भी हो जाते तो मैं राजी नहीं होने वाला था। वह तो मैं मजाक ही कर रहा था। कोई छोटे-मोटे काम

करने में मेरा रस ही नहीं है, पच्चीसवां क्या होना! मगर वे घबड़ा गये, क्योंकि चौबीस... जैनियों ने अपना दरवाजा बंद कर दिया।
यह सारे धर्मो की तरकीब रही हैं। यह धर्मो की राजनीति है। दरवाजा बंद करना पड़ता है, क्योंकि दरवाजा अगर बंद न करें तो पीछे आने वाले लोग कहीं रद्दोबदल कर दें। समझो महावीर चौबीसवें तीर्थकर हुए, पच्चीसवां कोई तीर्थकर हो और वह महावीर की बातों में रद्दोबदल करेगा ही करेगा। क्योंकि समझो दो हजार साल बाद हो, परिस्थिति बदल जाएगी, लोग बदल जांएगे, धारणाएं बदल जाएंगी, जगत बदल जाएगा। वह कैसे महावीर की पिटी-पिटाई बातों को दोहराता रहेगा? उसमें कुछ भी प्राण होंगे, कुछ भी जीवन होगा, तो कुछ नयी कहेगा, कुछ नयी सूझ की बात देगा, कुछ नया दर्शन देगा, नयी दृष्टि देगा, नये चलने, नये जीने की शैली देगा।
अब महावीर ने कहा रात्रि को भोजन मत करना। मैं मानता हूं कि उस समय की बात ठीक थी। लेकिन बिजली नहीं थी। और महावीर का कहना ठीक था। आज भी गांव में, जहां बिजली नहीं है, वहां लोग अंधेरे में भोजन करते हैं। दीया भी नहीं, क्योंकि भारत तो... देवता भला यहां तरसते हों आने को, मगर घासलेट का तेल कहां? घासलेट का तेल तरसता ही नहीं यहां आने को। देवता तरसते हैं! पता नहीं वे क्यों तरसते हैं! उनको ऐसी क्या बेचैनी पड़ी है! बिना घासलेट के तेल के पता चल जाएगा!--... तो तेल भी कहां है गाव में? एकदम जरूरत की चीजें भी गांव में कहां है? तो लोग अंधेरे में भोजन करते हैं। अंधेरे में पतंगा भी गिर जाए, छिपकली भी गिर जाए, कुछ भी गिर जाए, कीड़े-मकोड़े, कुछ भी हो जाए। तो महावीर ने ठीक कहा कि रात्रि-भोजन नहीं करना, सुर्यास्त हो जाएं तो भोजन नहीं करना। यह बात बिल्कुल ठीक है, वैज्ञानिक है, स्वास्थपूर्ण है, सम्यकहै। मगर आज के लिए तो अर्थपूर्ण नहीं।
मैं एक बहुत बड़े जैन धनपति, सोहनलाल दूगड़ के घर में मेहमान था। पूरा
घर एयरकंडीशंड, साउंडप्रफू। उसमें न मक्खी, न मच्छर। मगर सूरज डूबा, कि फिर भोजन नहीं हो सकता। मैंने सोहनलाल को कहा कि तुम पागल तो नहीं हो! महावीर को पता था यह कि सोहनलाल दूगड़ नाम के आदमी होंगे ढाई हजार साल बाद साउंडप्रूफ एयरकंडीशंड घर में रहेंगे? तो वे पहले ही कह गये होते कि भैया, मजे से जब भोजन करना हो कर लेना, क्योंकि मक्खी नहीं मच्छर नहीं। तुम काहे के लिए घबड़ा रहे हो?
मगर वे बोले: "नियम... । आप बात तो ठीक कहते हैं, मगर अंतःकरण को कचोट लगती है। जब तक चल सके, दिन में ही चला लेते हैं।"
मैंने कहा: "दिन को सूरज में ही इतनी रोशनी नहीं होती जितनी तुम्हारे
घर में बिजली की रोशनी है।"
फिर मुझे खाने पर बिठाया तो पंखा झलने लगे लेकर। मैंने कहा: "तुम होश में हो? तुम पंखा किस लिए झल रहे हो? मुझे खाना खाने दोगे क्या नहीं?" उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, घर में कोई साधु-महात्मा आए तो राजस्थान
का पुराना रिवाज है पंखा झलना। मैंने कहा कि राजस्थान का होगा पुराना रिवाज, मगर यहां झल किस लिए रहे हो पंखा? बिजली है, एयरकंडीशंड है, सब ठंडा है, साउंडप्रूफ है। कोई आवाज नहीं आ रही, जिसको तुम पंखे से भगा रहे होओ। कोई मक्खी-मच्छर नहीं, जिनको हटाओ। हवा की कोई जरूरत नहीं। और नाहक मेरे सामने बैठ कर मुझे शांति से भोजन भी नहीं करने दे रहे! पंखा हिला रहे हो मेरे सामने बैठ कर!
वे बोले: "आप बात तो ठीक कहते हैं। आप बात तो हमेशा पते की ही कहते हैं। मगर संस्कार!"
अब कोई पच्चीसवां तीर्थकर होगा तो ठीक है, स्वभाविक है किवह बहुत से फर्क करेगा, बहुत-से भेद कर देगा। महावीर को पता नहीं था कि जैन मुनि का सीमेंट रोड पर, कोलतार रोड पर चलना
पड़ेगा। कच्ची मिट्टी पर चलना एक बात है, कोलतार पर चलना बिल्कुल दूसरी बात है। महावीर को पता होता कि कोलतार पर जैन मुनि को चलना होगा, तो नग्न पैर चलने की बात का आग्रह नहीं करते। आज पच्चीसवां तीर्थकर हो तो वह बराबर कहेगा कि कम से कम कैनवस के जूते तो पहन ही लो, इसमें चमड़ा तो है नहीं, तो कोई पाप तो हो नहीं रहा है। कैनवस के जूते पहनने में क्या हर्जा

है? नंगे रहना होतो रहो, मगर कम से कम कैनवस को जूता तो पहनो! और जंचोगे भी बहुत। एक चटाई का हैट लगाए हुए हैं जापानी ढंग का और कैनवस के जूते और नंग-धड़ंग! एक दर्शनीय दृश्य भी होगा।
मुल्ला नसरूद्दीन के घर एक दिन किसी दम्पति ने दरवाजा खटखटाया। सांझ
का वक्त, मुलला ने ऐसा जरा-सा दरवाजा खोला। पति-पत्नी ने बाहर से देखा, तो दोनों बड़े हैरान हुए। मुल्ला नंग-धड़ंग खड़ा है! सिर्फ टाई बांधे हुए है! मगर अब क्या करना? एकदम हट जाना भी ठीक नहीं मालूम होता, अभद्रता मालूम होगी और मूल्ला भी एकदम दरवाजा बंद कर दे तो भी अभद्रता मालूम होगी। तो मुल्ला ने कहा: "आइए-आइए! उनको भी भीतर आना पड़ा। भारतीय नारी, वह पीछे पति के छिपकर आयी कि करना क्या, यह कहां फंस गये! और पति ने इस तरह का भाव दिखाया कि जैसे उसको कुछ पता ही नहीं कि मुल्ला नंगा है। कहिए कैसे हैं, सब यह-वह इधर-उधर की बात चलने लगी। मगर पत्नी को तो एक ही पड़ा था कि ये और सब बातें चल रही हैं, असली बात कब होगी? आखिर पत्नी ने कहा: "यह सब बकवास बंद करो जी! पहले यह तो पूछो कि ये नंगे क्यों हैं? मैं पूछे लेती हूं अगर तुमसे नहीं बनता तो, कि आप नंगे क्यों हैं?"
तो नसरूद्दीन ने कहा: "इतने वक्त मुझे कोई मिलने आता ही नहीं। और गरमी
के दिन, तो अपने घर में नंगा न रहूं तो किसी और के घर में नंगा रहूं? अरे अपने बाप का घर है! किसी और के बाप का है? जैसे रहना है वैसे रहेंगे। और इस वक्त कोई आता ही नहीं मिलने।"
तो पति ने कहा: " अच्छा यह भी ठीक है। फिर टाई क्यों बांधे हुए हो?"
तो मुल्ला ने कहा: " अरे, कभी कोई भूल-चूक से आ जाए, जैसे तुम आ गये, तो कुछ तो कम से कम पहने रहो!"
अगर मैं जैन मुनि को आज व्यवस्था दूं तो कहूंगा कैनवस के जूते, चटाई
का हैट, बाकी तुम नंगे घूमो, कोई हर्जा नहीं है, बेफिक्री से घूमो।
तो बंद कर देना पड़ा, चौबीसवें तीर्थकर पर बात रोक देनी पड़ी। उसके आगे बढ़ाने में खतरा है।
ठीक वैसा सिक्खों को करना पड़ा, दसवें गुरू पर रोक देनी पड़ी बात, क्योंकि ग्यारहवां गुरू हो और कुछ गड़बड़ कर दे। इसलिए मुसलमानों को मुहम्मद पर रोक देनी पड़ी बात। बस आखिरी पैगम्बर हो गये, अब कोई पैगम्बर नहीं होगा। ईसाईयों को रोक देनी पड़ी जीसस पर बात, कि जीसस इकलौटे बेटे हैं। बस परमात्मा ने एक दफा भेज दिया, जो संदेश देना था दे दिया। अब कोई जरूरत नहीं है। अब उसी के अनुसार सभी को चलना चाहिए।
यह इस तरह का आयोजन सभी धर्मो को करना पड़ा-सिर्फ इसलिए, ताकि जो भी उनकी धारणा है उसमें कोई रदृदोबदल करने वाला पीछे न पैदा हो। तो अगर निरंकारी बाबा कहते थे कि गुरूग्रंथ साहब ही अंतिम गुरूबाणी नहीं है तो सिक्खों को चोट लगेगी, क्योंकि सिक्खों की मान्यता है वही अंतिम गुरूबाणी है, बस बात खत्म हो गयी। जो कहना था परमात्मा को, दस गुरूओं से बोल चुके। सब आ गया गुरूबाणी में। गुरूग्रंथ साहब में सब आ गया, अब आगे कुछ कहने को नहीं है। और सिक्ख होकर कोई यह बात कहे और सिक्खों को भड़काए और भरमाए, तो उनको बड़ा एतराज हो जाएगा। तो कोई मुसलमान ने उनकी हत्या की हो, इसकी संभावना नहीं है। कोई हिंदू ने की हो, इसकी संभावना नहींं है। किसी ईसाई ने की हो, इसकी संभावना नहीं है। संभावना इसी की है कि उन्होंने की होगी, जिस धर्म में वे पैदा हुए थे।
जीसस को यहूदियों ने सूली दी थी, किसी और ने नहीं। और सुकरात का यूनानियों ने ही जहर पिलाया था, किसी और ने नहीं। गांधी को हिन्दूओं ने मारा, किसी और ने नहीं। यह बात समझने जैसी है। क्यों चोट लगती है उसी धर्म के लोंगों को? उसी धर्म के लोंगो को चोट लगती है कि अपना होकर और अपने से धोखा! दूसरों की तारीफ करोगे तो उतने दूर तक समझौता करना पड़ेगा न!
गांधी को कहना पड़ा कि कुरान में भी सत्य है- वही सत्य है जो गीता मैं है। तो यह बात तो हिंदू बर्दाश्त नहीं कर सकते। मुसलमान आल्हादित हो जांएगे।

ये सब राजनैतिक चालबाजियां हैं। गांधी को हिंदू-मुसलमानों के दोनों
के वोट चाहिए थे, दोनों का तालमेल चाहिए था, दोनों को पीछे चलाना था, दोनों का मत उनके साथ होना चाहिए।
निरंकारी बाबा को हिन्दू चाहिए थे, मुसलमान चाहिए थे, ईसाई चाहिए थे, जैन चाहिए थे, सिक्ख चाहिए थे: सबको सम्मान देना पड़ेगा। मगर ये राजनैतिक चालबाजियां हैं।
जीसस ने सभी की प्रशंसा नहीं की है। सत्य की प्रशंसा की है। और बुद्ध
ने भी सभी की प्रशंसा नहीं की है। और महावीर ने भी सभी की प्रशंसा नहीं की है। दुनिया का कोई सत्पुरुष, जिसने जाना हो सत्य को, सत्य के लिए सब कुछ निछावर कर देगा। उसमें कोई राजनीति नहीं होती। उसमें दांव-पेंच नहींं होते।
इसलिए मैं कोई निरंकारी बाबा को सत्य के पुजारी नहीं मानता शांतिस्वरूप। सत्य वगैरह से इन्हें क्या लेना देना है? सब झूठ का गोरखधंधा है। मगर तुम्हें इसलिए लग रहा है कि हमें डर है कि इस तरह के पुजारी को सत्य बात नहीं कहने दी जाएगी। बस किसी का गला घोंट दिया तो वे सत्य के पुजारी हो गये! यह तो बड़ा सस्ता काम हो गया। सत्य के पुजारी होना हो, बस कोई गला घोंटनेवाला तैयार कर लों कि तुम सत्य के पुजारी हो गये! और गला घोंटने वाले कई बेवकूफ मिल जांएगे। उनकी कोई कमी है? नालायकों की कोई कमी है? एक ढूंढो, हजार मिलते हैं। ढूंढो ही मत, तो भी मिलते हैं। तुम बचना भी चाहो, तो भी मिलते हैं।
सत्य के गला घोंटने वालों से मुक्ति कैसे मिले, तुम पूछते हो। नहींं इनसे कभी मुक्ति मिल सकती है, न मिलने की कोई जरूरत है, न कोई आवश्यकता है। सत्य का होना ही एक क्रांति है। जब भी सत्य प्रगट होगा, उपद्रव होगा। क्योंकि अधिकतर लोग असत्य में जीते हैं; इसलिए उनके जीवन में दखल पड़ेगी, खलल पड़ेगी। लोग सो रहे हैं और सत्य उनको जगाना चाहता है। कौन जगना चाहता है? कोई जगना नहीं चाहता। प्यारी नद्ध लगी है। ठंडी-ठंडी सुबह की हवा चली है। मधुर सपने चल रहे हैं। और तुम जगाने पंहुच गये! जगानेवालों को कोई पसंद नहीं करता।
तुम इसकी चिंता छोड़ दो शांतिस्वरूप। और सत्य को कोई नुकसान नहीं पहुंचता। जीसस का सूली लगने से कोई नुकसान नहीं हुआ। खतरा इससे नहीं है कि सत्य को सूली लगे; खतरा इससे है कि कहीं भूल-चूक से जब असत्य को सूली लग जाती है तब खतरा पैदा होता है। जैसे अब यह निरंकारी बाबा को गोली मार दी, अब खतरा है। खतरा यह है कि गोली मारने की वजह से न मालूम कितने नामसमझ यह समझेंगे कि यह बात सत्य थी, तभी तो गोली मारी! अब यह झूठी बात को सत्य बात होने को प्रमाण मिल गया। सत्य को सूली लगे, इससे तो कुछ हर्जा नहीं है, लाभ ही लाभ है। क्योंकि सत्य को सूली लग जाती है तो सत्य सदियों तक अनुगुजित रहता है। लेकिन खतरा कब होता है? खतरा तब होता है जब कभी असत्य को सूली लग जाती है।
जैसे गांधी को गोली लग गयी। अब गांधी चढ़ बैठे भारत ही छाती पर। अब उनको उतारना मुश्किल है। अब भारत मरा जा रहा है, मगर गांधी को उतारना मुश्किल है। जिन्होंने गांधी को गोली मारी, वे भी गांधी की फोटो लटकाए हुए हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोग। ऐसे वे शिवाजी और राणाप्रताप की फोटो लटकाए रखते थे, अब गांधीजी की फोटो भी लटकाने लगे। और अब लोंगो को धोखा देने के लिए उन्होंने नयी जनता पार्टी बना ली-भारतीय जनता पार्टी! वहां गांधी का फोटो, जयप्रकाश नारायण को फोटो। वहां तुम हैरान होओगे देख कर कि न शिवाजी का फोटो है, न राणाप्रताप का फोटो है। और इन सबके दिल में शिवाजी और राणाप्रताप का फोटो है। ये सब जनसंघी हैं। मगर जनसंघ के नाम से लोग नाक-भौंह सिकोड़ते हैं। गांधी का नाम बिकता है, तो गांधी के हत्यारे भी गांधी के नाम के पीछे खड़े हो जाएंगे। वे भी गांधी के भक्त हो जाएंगे। वे भी राजघाट पर जाकर शपथ लेंगे। वे भी गांधी के दावेदार हो जाएंगे।
अब गांधी को उतारना मुश्किल है। भारत मर रहा है, सड रहा है। उसमें बड़े
से बड़ा कारण महात्मा गांधी का छाती पर बैठे होना है। सबको कपड़े मिल सकते हैं, मगर चरखे चलाने से नहीं मिल सकते। सबको रोटी मिल सकती है, लेकिन

ग्रामोद्योग से नहीं मिल सकती। सबको मकान मिल सकते हैं, सबको जीवन की सारी सुविधांए मिल सकती हैं। सारी दुनिया में मिल गयी हैं, कोई हमारा ही सवाल नहींं हैं। लेकिन मिली हैं विज्ञान से। और गांधी विज्ञान-विरोधी थे, दुश्मन थे विज्ञान के। वे तो रेलगाडी के भी खिलाफ थे। वे तो टैलीग्राफ के भी खिलाफ थे। वे तो पोस्ट ऑफिस के भी खिलाफ थे। वे तो बिजली के भी खिलाफ थे। अगर गांधी का वश चले तो वे बाबा आदम के जमाने में पहुंचा दें, मगर इतना वश जरूर चलता है कि वे तुम्हें बढ़ने नहीं देते आगे।
आज तीस साल हो गये भारत का आजाद हुए। चीन दस साल बाद प्रगति के पथ पर बढ़ना शुरू हुआ, आज चीन हमसे बहुत आगे पहुंच गया। कुल कारण इतना है कि गांधी जैसा पत्थर छाती पर नहीं है। हम एक पत्थर छाती पर बांध कर तैरने की कोशिश कर रहे हैं। मगर पत्थर को छोड़े कैसे! पत्थर का नाम-महात्मा गांधी! और महात्मा गांधी को गोली लग गयी, सो वे हो गये सत्य के पुजारी। अब उनको छोड़ना मुश्किल है।
सत्य को सूली लगे, इसमें तो कोई खतरा नहीं है; असत्य को जब सूली लग जाती है तब मुश्किल खड़ी हो जाती है। वही मुश्किल खड़ी निरंकारी बाबा के पीछे होगी अब। अब जो लोग निरंकारी बाबा को मानते थे, वे और दीवाने हो जाएंगे मानने में कि जरूर बाबा में कुछ खबी थी, नहीं तो गोली क्यों मारी! अरे कोई भी पागल गोली मार सकता है। गोली मारने में भी कोई बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता की जरूरत हैं? कोई बुद्धिमान गोली मारते हैं? कोई भी बुद्धू मार सकता है। मगर वह बुद्धू काम कर गया। अब उस बुद्धू के कारण यह बाबा के पीछे अब कहानियां गड़ी जाएंगी। अब वे मसीहा हो गये।
एक अखबार में मैं पढ़ रहा था एक लेख: "एक मसीहा का और अंत।" मसीहा हो गये, गोली लग गयी तो। गोली नहीं लगी, तब तक कोई उनको मसीहा कहने वाला नहीं था। अब वे मसीहा हो गये। बस गोली लगने की बात थी।
इस दुनिया में बड़े अजीब लोग हैं। इनकी अजीब धारणाएं हैं चीजों को पकड़ने और पहचानने की।
मुझे भी विरोध है कि गोली मारी गयी। विरोध का कारण मेरा बिल्कुल अलग है। मेरा कारण यह है कि इस तरह में लोंगो को गोली मार कर तुम लोंगो की छाती पर बोझ बढ़ाए चले जाते हो। अरे मारना ही हो गोली तो कोईढंग के आदमी को तो मारो, कुछ मतलब के आदमी को मारो। गोली मारनी हो तो ऐसे आदमी को मारो की अगर उसका नाम टिका रह सदियों तक तो लोंगो को कुछ लाभ हो। जहां सुई से काम चल जाए, वहां तलवार चलाते हो! खटमल मारने चले हैं, लिए बंदूक! कुछ तो अकल का उपयोग करो! कोई बंदूकों से खटमल मारे जाते हैं! और बंदूक से खटमल मारोगे, खटमल महात्मा हो जाएगा। और लोग कहेंगे-"एक मसीहा का और अंत!"

चौथा प्रश्न: भगवान,
क्या हम आपकी बातों को कभी भी नहीं समझेंगे, या कि वह सौभाग्य का दिन
भी कभी आएगा?
धर्म कृष्ण,
सब तुम पर निर्भर है। मैं तो अपनी तरफ से पूरी चेष्टा कर रहा हूं। जितनी तुम्हारी ठोंक-पीट कर सकता हूं, करता हूं। तुम्हारे सिर पर जितने डंडे बरसा सकता हूं, बरसाता हूं। डंडे तुम्हें नहीं समझ में आते तो हथौड़े से भी चोट करता हूं। जैसा मरीज देखता हूं: सुनार से मान गये तो सुनार और लुहार से माने तो लुहार हो जाता हूं। हथौड़ी तो हथौड़ी, हथौड़ा तो हथौड़ा-जो भी जरूरत हो। मैं फिर इसकी फिक्र नहीं करता।
लेकिन कुछ ऐसे लोग हैं, जो इस तरह बंद हैं, इस तरह बंद हैं कि उनमें से रंघ्र खोजनी मुश्किल है। उनमें भीतर प्रवेश करना मुश्किल है।
मुल्ला नसरूद्दीन ने डॉक्टर को फोन किया आधी रात, कि पत्नी को बहुत जोर से पेट में दर्द हो रहा है, लगता है बच्चा पैदा होने का क्षण आ गया, आप इसी वक्त आ जाएं। आधी रात, वर्षा, आंधी! डॉक्टर बेचारा उठा किसी तरह, गाड़ी स्टार्ट न हो, बमुश्किल धक्का दे-दाकर गाड़ी स्टाट हुई, किसी तरह पंहुचा। जाकर अंदर पहुंचा, एक पांच मिनट बाद उसने खिड़की के बाहर मुंह झांका और नसरूद्दीन से कहा: "नसरूद्दीन, हथौड़ा है?"

नसरूद्दीन थोड़ा डरा-हथौड़ा! हथौड़ा लाया निकाल कर। एक-दो मिनिट बाद फिर खटर पटर की आवाज अंदर से आती रही। नसरूद्दीन थोड़ा डरा भी कि हथौड़े का क्या कर रहा है यह! आदमी होश में है, नशा वशा तो नहीं किए हुए है? यह डॉक्टर है कि विटनरी डॉक्टर है, क्या है मामला? फिर दो मिनिट बाद वह डॉक्टर बाहर आया और नसरूद्दीन से कहा कि ऐसा करो भाई--... आरी तो नहीं हैं?
नसरूद्दीन फिर भी कुछ नहीं बोला, आरी लेकर दे दी। वह तो दो मिनिट बाद फिर डॉक्टर बाहर आ गया और कहने लगा: "एक बड़ी चट्टान हो तो उठा लाओ।" नसरूद्दीन ने कहा: "बहुत हो गया डॉक्टर साहब! माजंरा क्या है? मेरी पत्नी को तकलीफ क्या है?"
डॉक्टर ने कहा: "तुम्हारी पत्नी से सवाल ही अभी कहां उठती है! अभी मेरी पेटी ही नहीं खूल रही। पहले मेरी पेटी तो खुले, फिर तुम्हारी पत्नी की जांच-परख करूं।"
तो कई की पेटी ऐसी बंद है कि खुलती ही नहीं। हथौड़ा बुलाओ, आरी बुलाओ चट्टान लाओ... ... अब आखीर में उसने कहा कि चट्टान पटक कर पेटी को तोड़ ही डालो, क्योंकि पत्नी मरी जा रही है, चिल्ला रही है, चीख पुकार मचा रही है। और नसरूद्दीन उसकी चीख-पुकार सुन रहा है, और खटर-पटर की आवाज सुन रहा है। उसको लग रहा है कि डॉक्टर कर क्या रहा है! हथौड़े मार रहा है मेरी पत्नी को, आरी चला रहा है उसके पेट पर या क्या कर रहा है? यह किस तरह का आपरेशन हो रहा है?
यहां मोहल्ले-पड़ोस के लोंगो को यही डर लगा रहता है, क्योंकि यहां से आवाजें उठती हैं आश्रम से एक-एक तरह की। किसी पर आरी चलायी जा रही हैं, किसी पर हथौड़ा मारा जा रहा है। और यहां सिर्फ पेटी नहीं खुल रही! पहले पेटी तो खुले, फिर आगे कुछ दूसरा काम हो। पेटी तुम ऐसी बंद किए बैठे हो सदियों से, जन्मों-जन्मों से, चौरासी करोड़ योनियों से, पेटी को ऐसा बंद किया, ऐसी जंग खा गयी कि उसको खोलना मुश्किल हो रहा है। और ताले भी इतने पुराने हैं कि अब उनकी चाबी मिलना मुश्किल है।
मेरी तरफ से तो पूरी कोशिश करता हूं, धर्म कृष्ण। तुम कहते हो: "क्या
हम आपकी बातों को कभी नहीं समझेंगे, या कि वह सौभाग्य का दिन भी कभी आएगा?" टिके रहे तो आएगा। आना ही पड़ेगा। आखिर कब तक? पेटी ही है, तोड़ ही लेंगे। खून-पसीना एक कर देंगे, मगर तोडें.गे। रोज सुबह से लग जाता हूं तोड़ने में। सब तरह के उपाय यहां किए हैं तोड़ने के। तुमसे भी उपाय करवाता हूं कि तुम भीतर से तोड़ो, मैं बाहर से तोड़ता हूं।
मगर देर तो लगने वाली है, क्योंकि समझ--... मैं कुछ कहूंगा, तुम कुछ समझोगे। वह स्वभाविक है।
मुल्ला नसरूद्दीन बहुत दिनों से गुलजान के पिता से मिलने की सोच रहा था, मगर हिम्मत न जुटा पाता था। लेकिन जब बहुत दिन हो गये तो एक दिन हिम्मत करके पहुंच ही गया और गुलजान के पिता से बोला कि मैं आपकी बेटी से निकाह करना चाहता हूं। पिता ने मुल्ला नसरूद्दीन को ऊपर से नीचे तक देखा और पूछा : "मगर क्या तुम गुलजान की मम्मी से भी मिले या नहीं?"
"जी"- नसरूद्दीन ने कहा-"उनसे भी मिला, मगर मुझे गुलजान ही ज्यादा पसंद आयी।"
अब मैं क्या कहूंगा और तुम क्यो समझोगे, इसमें भेद तो होने वाला ही है।
गुलजान भागती हुई आयी और नसरूद्दीन से बोली कि जल्दी से कुछ करो, मुन्ने ने दस पैसे का सिक्का निगल लिया है। मुल्ला नसरूद्दीन बोला: "तो निगल भी लेने दो! आखिर दस पैसे में अब आता ही क्या है? निकाल कर भी क्या करेंगे?"
ऐसे ही एक दिन उसने डॉक्टर को फोन किया कि मेरा लड़का मेरा फाउन्टेन पेन निगल गया है, तो मैं क्या करूं? तो डॉक्टर ने कहा कि मैं आता हूं। आधा घंटा तो लग ही जाएगा।
तो मुल्ला ने कहा: "लेकिन आधा घंटा मै क्या करूं?"
तो डॉक्टर ने कहा: "अब आधा घंटा तुम क्या करो! अरे तब तक पेंसिल से लिखो, और क्या करोगे? बालप्वाइंट हो तो उससे लिखों।"

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी समझ तो चलेगी। सुनोगे तुम मुझे, समझोगे तो तुम अपनी।
मुल्ला नसरूद्दीन घबड़ाते हुए बोला: "सुनती हो फजलू की अम्मा, भूल से फजलू का कम्बल मेरे हाथ से बालकनी से नीचे गिर गया है!"
पत्नी बोली मुल्ला से: "हाय, अब फजलू को सर्दी लग गयी तो?"
मुल्ला बोला: "घबड़ाओ नहीं, फजलू को सर्दी कभी नहीं लग सकती। फजलू भी कम्बल में लिपटा हुआ है।"
मुल्ला नसरूद्दीन एक रात अपनी पत्नी से कह रह था: "फजलू की मां, जेल में रहने से कई फायदे हैं। एक तो बड़ा फायदा है।"
पत्नी ने कहा: "क्या उल्टी सीधी बातें बकतें हो! जेल में रहने से फायदा! क्या फायदा है जी?"
मुल्ला बोला: "यही कि वहां कोई कम्बख्त आधी रात को जाकर यह नहीं कहता
कि जाकर देख आओ, पिछवाड़े वाला दरवाजा बंद है कि खुल्ला है?"
नसरूद्दीन ने अपने व्याख्यान के बाद लोंगो से कहा कि मित्रो, यदि किसी को कुछ पूछना हो तो कृपया एक कागज पर लिख कर पूछ लें। सिर्फ एक ही कागज आया, जिस पर सिर्फ इतना ही लिखा हुआ था: गधा!
नसरूद्दीन बोला: "मित्रो, किसी सज्जन ने अपना नाम तो लिख कर भेज दिया है, लेकिन प्रश्न नहीं पूछा।"
धर्मकृष्ण, मैं कोशिश करता रहूंगा। तुम भी कोशिश करते रहो। बनते-बनते शायद बात बन जाए। और न भी बनी तो हर्ज क्या? अनंत काल पड़ा है, अगले जन्म में किसी और बुद्ध को सताना। तुम यही काम करते रहे पहले से। न मालूम किन किन बुद्धों को तुमने सताया होगा! आखिर बुद्धों को भी तो काम चाहिए न! नहीं तो वे किसको मुक्त करेंगे?
तो कुछ लोग तो टिके ही रहो। लाख समझाऊं, समझ में भी आ जाए, मत समझना। क्योंकि आगेवाले बुद्धों का भी ख्याल रखना आवश्यक है।

पांचवा प्रश्न: भगवान,
कुछ दिन पूर्व आपने कहा कि रूस में आपके संन्यासी बिना माला एंव कपड़े
के रहते हैं। अभी इंदौर के एक शिबिर में मा आनंद मृदुला ने कहा था कि जो लोग माला एंव कपड़े नहीं पहनते हैं उन्हें उस तल के नुकसान हो सकते हैं जिन्हें वे जान भी नहीं सकते।
क्या किसी बुद्धपुरुष की करूणा फिर से क्रोध की खाइयों में उतर सकती
है? इसी भय से मैंने संन्यास वापस कर दिया है क्योंकि मैं न तो भीतर से संन्यासी था और न ही दो वर्ष से माला कपड़े पहनता था।
भगवान, मेरी उपरोक्त मनःस्थिती पर प्रकाश डालने की अनुकम्पा करें! चंद्रप्रभु,
वीर पुरुष हो, तुम जैसे वीर पुरुषों के कारण ही तो भारत देश महान है! धन्य हो तुम!
इंदौर रूस का कब से हिस्सा हो गया? इंदौर में कौन-सी तुम्हें अड़चन आ रही थी? कौन फांसी लगा रहा था तुम्हारी? कौन-सी गर्दन कटी जा रही थी तुम्हारी? कायरता को छिपाने के लिए तुम्हें यह बात मिल गयी। इसी को मैं कहता हूं कि तुम जो सुनना चाहते हो सुन लेते हो। इतने दिन में तुमने इतनी बात सुनी कि मैंने कहा कि रूस में संन्यासी बिना माला एवं कपड़े के रहते हैं। तुम्हारा दिन बागबाग हो गया। तुमने कहा: "वाह! अरे यही तो हम कर रहे थे इंदौर में। तो जब रूस में रह सकते हैं, इदौर में क्यों नहीं रह सकते?" मगर तुम्हें मालूम है रूस के वे जो संन्यासी हैं, उन्होंने तो चाहा था
कि वे कपड़े और माला में रहें, मैंने उन्हें मना किया है। तुमने पूछा था? दो साल कायर की तरह तुम छिपे रहे। न तुमने खबर दी, न तुमने बताया। जब दो साल से तुम पाते थे कि न भीतर से संन्यासीन बाहर से, तो क्या जरूरत थी छिपे रहने की? खबर कर दी होती कि मैं संन्यासी नहीं हूं।
और इंदौर में कौन-सी कठिनाई आ रही थी तुम्हें? तुम्हें रूस की कठिनाइयों का अंदाज है? तुम्हें रूस की मुसीबतों का अंदाज है, कि रूस में

जो भी व्यक्ति एक जरा-सी भी ऐसी बात करता हुआ पाया जाए जो सरकारी धारणा के विपरीत है, फिर उस व्यक्ति का पता ही नहीं चलता!
खरूश्चेव जब हुकूमत में आया तो एक सभा में बोल रहा था कम्यूनिस्टों की। और स्टेलिन की खूब निंदा कर रहा था, जी भर कर निंदा कर रहा था। जीवन भर का दबा-दबाया रोष प्रगट हो रहा था। एक आदमी ने पीछे से आवाज लगायी कि जब स्टेलिन जिंदा था, तब आप क्यों नहीं बोले? तब तो उसकी खुशामद करते रहे। पूरी जिदंगी! अब बड़ी बहादुरी दिखा रहे हैं!
ख्रुश्चेव एक क्षण रूका और उसने कहा कि मेरे बन्धु, कामरेड, आप कौन हैं? जरा खड़े हो जाएं। मैं जरा आपकी शकल देख लूं और अपना नाम बता दें।
कोई खड़ा नहीं हुआ और कोई नाम नहीं बताया। ख्रुश्चेव ने कहा कि देखते हैं आप, जब तक मैं जिंदा हूं तब तक तुम भी खड़े नहीं हो सकते और नाम नहीं बता सकते। यही हालत मेरी थी, जो हालत तुम्हारी है। मैं बोलता तो कभी का खतम हो जाता। तुम बोलो, घर नहीं पहुंचोगे।
रूस में कब कौन आदमी दफ्तर से ही नदारद हो जाएगा, कहना मुश्किल है। दीवालों के कान हैं। अपनी पत्नी से भी कोई व्यक्ति सच्ची बात नहीं कह सकता, क्योंकि कौन जाने; क्योंकि पत्नी स्त्रियों की कम्यूनिस्ट लीग की सदस्या है। अपने बच्चों से मां बाप सच बात नहीं कह सकते, क्योंकि बच्चे बच्चों की कम्यूनिस्ट लीग के सदस्य हैं। वे वहां जाकर खबर देते हैं। राष्ट्र के हित में वे सब एक-दूसरे की खबर देते रहते हैं। कोई किसी से नहीं बोल सकता।
दो रूसी एक रास्ते पर मिले। एक ने कहा: "अहा, क्या सुंदर कार है! रूस में भी कैसी कैसी सुंदर कांरे बनने लगीं!
दूसरे ने कहा: "यह रूसी कार नहीं है। रूस में इतनी बड़ी कारें नहीं बनती। और तुम भी जानते हो कि यह रूसी कार नहीं है। साफ दिखाई पड़ रहा है। यह अमरीकन गाड़ी है। इतनी बड़ी गाड़ियां रूस में बनती ही नहीं। इस तरह की गाड़ियां रूस में बनती ही नहीं। क्या तुमको इतनी भी अकल नहीं है?"
उस आदमी ने कहा: "वह तो मुझे भी पता है कि यह कार कहां की बनी है। लेकिन मुझे यह पता नहीं कि आप कौन हैं!"
इतना कहना भी खतरे से खाली नहीं है कि यह अमरीकी गाड़ी है। पता नहीं यह आदमी खबर कर दे, झंझट में पड़ जाओ तुम!
तीन आदमी जेल में बंद थे। तीनों पूछने लगे: "भाई, किसलिए तुम आए?"
तो एक ने कहा कि मैं इसलिए जेल में बंद किया गया हूं कि मैं दफ्तर देर
से पहुंचा। तो उन्होंने कहा कि यह अनुशासन भंग हो गया। तुम देर से क्यों आए?
दूसरे ने कहा: हद हो गयी! मैं दफ्तर जल्दी पहुंच गया, इसलिए मुझे बंद
कर दिया। कहने लगे तुम कोई जासूसी करने आए हो? तुम दफ्तर पहले क्यों पहुंचे? तुम कोई फाइलें वगैरह उलट कर देखना चाहते हो? तुम इधर-उधर ताका- झांकी कर रहे थे।
तीसरे ने कहा: "हद हो गयी! मैं दफ्तर बिल्कुल ठीक वक्त पर पहुंचा, इसलिए बंद हूं।"
दोनों पूछने लगे: "फिर तुम्हें क्यों बंद किया?"
उसने कहा कि उन्होंने कहा मालूम होता हैं तुम्हारे पास इम्पोटेंड घड़ी है। तुम ठीक वक्त पर कैसे पहुंचे? रूसी घड़ी कहीं ठीक समय बता सकती है!
रूस की हालतों का तुम्हें चंद्रप्रभु, पता नहीं है। इसलिए मैंने उन्हें कहा। वे तो चाहते थे कि कपड़े पहनें। लेकिन क्या प्रयोजन है? उनको जेल में डलवा देने का कोई अर्थ नहीं है। उनको माला पहनवा देने से अगर उनका जीवन व्यर्थ ही संकट में पड़ जाए, तो काम को नुकसान ही पहुंचेगा। वे ध्यान कर रहे हैं और उनका तो भाव पूरा है। वे आज राजी हैं। जिस दिन मैं खबर कर दूंगा उस दिन वे पहन कर माला निकलने को राजी हैं, फिर जो परिणाम हों। तुम्हें इंदौर में कौन-सी मुसीबत आ रही थी? तुम निपट कायर हो! और तुम बेईमान भी हो। और तुम अकेले नहीं हो ऐसे बेईमान, इसलिए तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे रहा हूं। क्योंकि ऐसे बहुत बेईमान हैं, जो पूना आ जाते हैं तो गैरिक वस्त्र पहन लिए, माला पहन ली; पूना से गये कि बस ट्रेन में ही वे

गैरिक वस्त्र और माला छिपा देते हैं। अपने गांव पहुंचते हैं, उसी शकल में जिस शकल में चले थे; किसी को पता भी नहीं चलने देते कि वे संन्यासी हैं। इसलिए तो मृदुला को मैं भोजता हूं जगह-जगह कि जरा देखना कौन-कौन... क्योंकि यहां तो तुम्हें कोई अड़चन नहीं है। और जब तुम भीतर-बाहर से संन्यासी थे ही नहीं, तो तुम क्या कह रहे हो कि मैंने संन्यास वापिस कर दिया! जो था ही नहीं वह तुम वापिस क्या खाक करोगे! पहले होना भी तो चाहिए वापिस करने के लिए! था ही नहीं संन्यास, तो तुमने वापिस क्या कर दिया? किस लिए कपड़े रखे हुए थे और माला रखे हुए थे। इसीलिए ताकि यहां जब आओ तब धोखा दे सको; यहां संन्यासी होने की अकड़ और संन्यासी होने का लाभ ले सको।
यह कायरता छोड़ो! संन्यास लेना हो तो संन्यासी रहो, नहीं लेना हो तो कोई मजबूरी नहीं है, किसी पर जोर-जबरदस्ती नहीं हैं। और मृदुला ने ठीक कहा कि तुम्हें ऐसे नुकसान हो सकते हैं। लेकिन नुकसान इसलिए नहीं होंगे कि बुद्धपुरुष की करूणा क्रोध में बदल जाती है; नुकसान इसलिए होंगे कि तुम्हारी बेईमानी ही तुम्हें गड्ढ़ों में गिराएगी। तुम्हारा धोखा ही--... । जो अपने गुरू को भी ही धोखा दे रहा है, इस दुनिया में इससे ज्यादा और गया- बीता आदमी क्या होगा! कम से कम मेरे सामने तो अपने को प्रगट करो-जैसे हो वैसे ही अपनी नग्नता में, अपनी सहजता में; अपनी सरलता में, अपनी भूले-चुकें जो भी हैं! अगर मेरे सामने भी तुम प्रगट नहीं कर सकोगे, तो कहां प्रगट करोगे?
मगर तुम बड़े होशियार आदमी मालूम होते हो। बजाए इसके कि तुमने मृदुला
की बात का यह अर्थ लिया होता कि तुम बेईमानी कर रहे हो, जो कि गलत है, जिसका कि नुकसान तुम्हें होगा ही-तुमने मतलब यह लिया कि "क्या बुद्धपुरुष भी करूणा से उतर कर क्रोध की खाइयों में जा सकते हैं?" बुद्धपुरुष न आते न जाते, जहां हैं वही हैं। करूणा और क्रोध दोनों ही तुम्हारी दुनिया के शब्द हैं; बुद्धपुरुष दोनों के पार हैं। न वहां करूणा है न वहां क्रोध हैं। वहां परम सन्नाटा है, परम मौन है, परम शांति है। वहां परम शून्यता है। वहां मन ही न बचा तो ये तो मन की ही लक्षणाएं हैं-क्रोध और करूणा, प्रेम और घृणा। ये सब तो द्वंद्व मन के ही हैं। जहां मन ही नहीं वहां कैसा द्वंद्व!
लेकिन तुम अपने हाथ से अपने को नुकसान पहुंचा सकते हो। तुम ही अपने को नुकसान पहुंचाओगे। तुम ही को भीतर पाखंड पकड़ रहा है। मैं पाखंड का इतना विरोध करता हूं और मेरे संन्यासी होकर भी तुम पाखंडी ही रहोगे! यह पाखंड है कि तुम यहां दिखाओ कि संन्यासी हो और इंदौर लौट जाओ और वहां दिखाते रहो कि हमें संन्यासी से कुछ लेना-देना नहीं है।
मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूं जो छिप कर मेरी किताबें पढ़ेंगे, जो मुझसे राजी हैं; मगर किसी के सामने कह न सकेंगे, किसी के सामने प्रगट न कर सकेंगे। सामने तो मेरी निंदा करेंगे। इतनी हिम्मत नहीं है, इतना साहस नहीं है!
और अब तुम कह रहे हो कि मेरी उपरोक्त मनःस्थिति पर प्रकाश डालने की क्या अनुकम्पा... --साफ ही है, इसमें क्या प्रकाश डालना है और? अंधेरा ही अंधेरा है।
जीवन में प्रामाणिक होना सीखो। संन्यास नहीं तो संन्यास नहींं, कोई हर्ज नहीं। लेकिन प्रामाणिक जो होनी ही चाहिए। एक सचाई तो होनी ही चाहिए। अभी भी तुम नाम संन्यास का ही उपयोग कर रहे हो। वह नाम भी तुम छोड़ दो। वह तुम्हें शोभा नहीं देता। लौट जाओ अपने पुराने नाम पर, वही ठीक है-लल्लूमल कल्लूमल जो भी तुम रहे हो! चंद्रप्रभू बड़ा प्यारा नाम है, इसको खराब न करो। इसको मैं किसी और को दूंगा। यह किसी और के काम आएगा। माला लौटा दी, कपड़े पहनना बंद कर दिए हैं, अब यह नाम को क्यों पकड़े हुए हो? इसको भी जाने दो। जैसे थे वैसे ही ठीक। "पुनःमूषको भव!" फिर से चूहे हो जाओ।
तुमने चूहे की कहानी तो सुनी है न, कि चूहे ने बहुत परेशान होकर हनुमान चालीसा पढ़ा और बहुत हनुमान जी की भक्ति की! आखिर हनुमान जी को प्रगट होना पड़ा। कहा: "क्यों रे चूहे के बच्चे, क्यों मेरे पीछे पड़ा है? और तू गणेश का वाहन है तो हमको क्यों सताता है? गणेश जी से ही क्यों नहीं बात करता?"

तो चूहे ने कहा: "गणेश जी सुनते नहीं, ऊपर ही छाती पर चढे. रहते हैं। बोली निकले तब! इतना भारी-भरकम शरीर, बोली निकलने ही नहीं देते। प्राण निकले जा रहे हैं, बोली कहां से निकले? इसलिए तुम्हें याद किया है। इतनी- सी कृपा करो कि मुझे बिल्ली बना दो। मैं चूहा रहते रहते थक गया। एक तो गणेश जी सता रहे हैं और दूसरी यह बिल्ली। अगर गणेश जी पीछा छोड़ते हैं तो बिल्ली पीछे पड़ जाती है।"
हनुमान जी ने अपना पीछा छुड़ाने के लिए कहा: "ठीक है, तू बिल्ली हो जा।"
बस वह तो दो दिन बाद फिर हनुमान चालीसा पढ़ने लगा, और जोर-जोर से म्याऊं-म्याऊं मचायी उसने! हनुमान जी फिर प्रगट हुए कि भाई तू कैसा आदमी है। अब तो शांति रख!
उसने कहा कि यह बिल्ली होने से काम नही चलेगा, मुहल्ले भर के कुत्ते मेरे पीछे लगे हैं। तुम मुझे कुत्ता बना दो!
"चल कुत्ता बन जा"-उन्होंने कहा-"मगर अब मेरा पिण्ड छोड़। और भी काम मुझे पड़े हैं दूसरे। हजारों मेरे भक्त हैं और सबका मुझे ध्यान रखना पड़ता है।"
मगर वह तो दो दिन बाद फिर पढ़ने लगा हनुमान चालिसा। अब और जोर जोर से भौंकने लगा। हनुमान जी ने कहा कि भाई तू चुप होगा कि नहीं? अब क्या तकलीफ आ गयी?
उसने कहा कि नहीं चलेगा यह। जब से कुत्ता हो गया हूं, तब से और मुसीबत
आ गयी है। जो देखो वही डंडा मारता है! जहां जाता हूं वहीं से लोग भागते हैं, दुत्कारते हैं। चैन से रहना मुश्किल है। और बाकी कुत्ते भी हमला करते हैं। कुत्तों में भी बड़ी कसा-कसी चलती है, बड़ी खींचतान मची हुई है, बड़ी राजनीति है। आप तो कृपा करके मुझे चूहा बना दों। वही अच्छा था। कम से कम गणेश जी का सत्संग भी रहता था। और ऐसी कुछ अड़चन न थी। अड़चनें बढ़ती चली गयी। तो उन्होंने कहा: "ठीक है भैया, तू फिर से चूहा हो जा। मगर अब हनुमान चालीसा मत पड़ना। कितबिया लौटा दे।"
चंद्रप्रभू, अब तुम फिर से चूहे हो जाओ। इंदौरी चूहे ऐसे भी बहुत प्रसिद्ध चूहे होते हैं। मगर तुम्हें एक बहाना दिखा, तुमने देखा कि जब रूस में हो सकते हैं लोग संन्यासी बिना कपड़े और बिना माला के, तो इंदौर में क्यों नहीं!
और तुम कहते हो: "मैं भीतर से भी संन्यासी नहीं हूं।"
तो तुम किस लिए नाहक के उपद्रव में पड़े हो? यहां भी आने की क्या जरूरत है? क्यों परेशान हो रहे हो? क्यों मेरा समय खराब करना, क्यों अपना समय खराब करना? यहां तो जीवन दांव पर लगाने की बात है। यहां तो जुआरियों का काम है।

आखिरी प्रश्न: भगवान,
मैं उन्नीस सौ चौसठ से आपका प्रेमी हूं। आश्रम में चार बार आ चुका
हूं और आपकी साठ पुस्तकें पढ़ चुका हूं। आप मुझे पूर्णतः सही लगते हैं परंतु आज तक संन्यास के लिए ह्द्य में भाव नहीं उठा। मेरी श्रद्धा और निष्ठा पर संदेह न करें और बताएं कि क्या मेर लिए इस जीवन में कोई संभावना है?
विलास कुमार,
जरूर संभावना है। मुझे भी तो पंडितों की जरूरत पड़ेगी न! जल्दी ही तुम पंडित विलासकुमार शास्त्री हो जाओगें अब और क्या कमी रह गयी? साठ पुस्तकें पढ़ चुके, कंठस्थ ही हो चुकी होंगी। उन्नीस सौ चौसठ से प्रेम कर रहे हो, अब तक तो प्रेम भी पक चुका होगां फसल कटने का वक्त आ गया होगा।
और कहते हो कि आप मुझे पूर्णतः सही लगते हैं। मगर यह "पूर्णतःसही लगना" सिर्फ खोपड़ी में ही लग रहा होगा। क्योंकि तुम कहते हो: "संन्यास का भाव नहीं उठता।"ह्दय है भी, टटोल कर देखो! धक्धकहोती है कि नहीं? कहीं खोपड़ी में ही तो नहीं जी रहे हो? नहीं तो भाव उठे कहां! भाव के लिए ह्दय चाहिए

और कैसे प्रेमी हो कि भाव नहीं उठता! और उन्नीस सौ चौसठ.गजब की साधना
कर रहे हो! प्रेम की साधना चल रही हैं उन्नीस सौ चौसठ से! भाव कब उठेगा? भाव का क्या अर्थ होता है! प्रेम ही तो भाव है।
संन्यास का क्या अर्थ है? संन्यास का इतना ही अर्थ है कि तुम मेरे प्रेम में पड़े हो और तुम मेरे रंग में रंग गये हो। संन्यास का इतना ही तो अर्थ है कि तुम मेरे साथ चल पड़े हो अनंत की यात्रा पर, कि तुम मेरे साथ खतरे उठाने को राजी हो, कि तुम मेरी नाव में बैठ गये हो श्रद्धापूर्वक, कि डुबाऊंगा भी तो ठीक। डुबाऊंगा भी, तो भी उबरना होगा। डूबने में भी अगर उबरना दिखाई पड़ने लगे, तो ही प्रेम है।
प्रेम तो पागलपन है! और अगर तुममें इतना पागलपन भी नहीं है कि तुम संन्यासी हो सको, तो फिर एक ही उपाय बचता है कि तुम पंडित हो जाना, शास्त्री हो जाना। और उसी तैयारी में तुम लगे हो। जरूरत पड़ेगी। मेरे जाने के बाद कई पंडित और कई शास्त्री इकट्ठे होने वाले हैं। वह सदा से काम रहा है उनका। उसमें तुम्हारा भी नंबर रहेगा। तुम अपने कार्य में लगे रहो। घबड़ाओ मत। इतनी ही संभावना है तुम्हारे लिए, इससे ज्यादा नहीं।
और तुम मुझसे कह रहे हो: "मेरी श्रद्धा और निष्ठा पर संदेह न करें।"
मैं नही करता संदेह, लेकिन तुम्हें अपनी निष्ठा और अपनी श्रद्धा पर भरोसा है? तुम्हें भरोसा है? तुम्हें अपनी श्रद्धा पर श्रद्धा है? तुम्हें अपने प्रेम पर भरोसा है? तो फिर छलांग ले लो। मैं क्यों संदेह करूं? मैं तो साफ बात कह देता हूं, दो टूक बात कह देता हूं, कि अभी तुम्हारा मुझसे संबंध खोपड़ी का है। और खोपड़ी का कोई संबंध संबंध नहीं होता।
बहुत लोग हैं इस देश में जो किताबें पढ़ते हैं, जो विचारों से सहमत हैं। लेकिन यह मामला विचार से सहमत होने का नहीं है। यह मामला तो ह्द्य से ह्द्य के मिलाने का है, ह्द्य से ह्द्य के जुड़ाने का है। यह तो दीवानापन का रास्ता है। यह तो पागलों का रास्ता है। यह तो मतवालों का रास्ता है। यह तो शमा जल रही है, परवानों को पुकारा जा रहा है, पंडितों को नहीं।
तुम्हारी संभावना पंडित होने की है। और मेरी दृष्टि में पंडित होना अर्थात सबसे बड़ी दुर्गति। वह महापाप है। उससे बड़ा कोई पाप नहीं है।

आज इतना ही।

उड़ियो पंख पसार
दसवां प्रवचन

कोई ताजा हवा चली है अभी

पहला प्रश्न: ओशो,

दिल में एक लहर सी उठी है अभी कोई ताजा हवा चली है अभी

शोर बरपा है खाना ए दिल में
कोई दीवार सी गिरी है अभी

भरी दुनिया में जी नहीं लगता
जाने किस चीज की कमी है अभी

कुछ तो नाजुक मिजाज हैं हम भी
और यह चोट भी नई है अभी

कोई ताजा हवा चली है अभी
दिल में कोई लहर सी उठी है अभी!

प्रज्ञा! दुनिया में तो जी किसी का कभी लगा नहीं, लग सकता भी नहीं। दुनिया में सब है--धन है, पद है, प्रतिष्ठा है। लेकिन कुछ कमी बनी ही रहती है, क्योंकि स्वंय की सत्ता दुनिया में नहीं है। और स्वंय की सत्ता में छिपा है सत्य। सत्य की कमी बनी रहती है।
दुनिया सपना है। सपने में सब हो, पर सत्य नहीं है। और सपनों से किसका पेट भरा? और सपनों से किसकी तृप्ति हुई? सपने कितना ही भरमाएं, कितना ही भटकाएं, भर तो नहीं सकते; आदमी खाली का खाली रह जाता है। धन भी एक सपना है। बहुत धन हो तो भी सपना है।
सपने की परिभाषा समझो। वह जो आज है और कल नहीं हो सकता है, वही सपना है। जो शाश्वत नहीं है, वही सपना है। जो क्षणभंगुर है, वही सपना है। जो पानी का बबूला है कि आकाश में खिंच गया, इंद्रधनुष है, वही सपना है। जो टूटेगा ही टूटेगा। जो छूटेगा ही छूटेगा। लाख करो उपाय, लाख व्यवस्थाएं जुटाओ, सब आयोजन असफल हो जाएंगे। सपने को कोई कभी बचा नहीं पाया। अंततः हाथ में राख भी नहीं बचती। सपना यूं तिरोहित हो जाता है, जैसे सुबह के ओस-कण धुप में विलीन हो जाते हैं। पीछे कुछ भी नहीं छूटता।
पद की दौड़ है। यह हो जाऊं-हो भी जाओ तो कुछ सार नहीं है। न हो जाओ तो दुख है। न हो जाओ तो हार की पीड़ा है! न हो जाओ तो विषाद है। न हो जाओ तो संताप में जलोगे। और हो जाओ तो कुछ मिलता नहीं। बड़ा अदभुत द्वंद्व है! दुख ही दुख है। हारो तो दुख है, जीतो तो दुख है। पद पर जो पहुंच जाते हैं, उनकी पीड़ा उनसे भी ज्यादा है जो नहीं पहुंच पाते। जो नहीं पहुंच पाते उनको कम से कम आशा तो होती है। जो पहुंच गये, उनकी तो आशा भी गयी। जो पहुंच गये उनको तो पता चल गया कि बस व्यर्थ दौड़े। और अब किससे कहें! अब कहने में भी बात उचित नहीं मालूम पड़ती। कहेंगे तो लोग हसेंगे। कहेंगे तो लोग कहेंगे: "हमने तो पहले ही कहा था!" कहेंगे तो लोग कहेंगे कि व्यर्थ तुम दौड़े, नाहक आपाधापी की। तो अब चुप रह जाना ही उचित है। अब जो हुआ हुआ। अब ऊपर से एक मुखौटा लगा कर मुस्कुराते रहना ही उचित है। अब तो यही दिखाना उचित है कि पा लिया सब, तृप्ति हो गयी, महत्वाकांक्षा पूरी हो गई। अब तो झूठ को बनाए रखने में ही सार है। नहीं तो जिंदगी भर मूर्खता की, इसकी लोग घोषणा करेंगे। जिंदगी तो गयी ही गयी, अब अपने को और मूर्ख कहलवाने से क्या सार है!
इसलिए जो पद पर हैं उनके भीतर की पीड़ा बहुत है-उनसे ज्यादा जो पद पर नहीं हैं।

धनी ज्यादा रोता है निर्धन से। निर्धन तो अभी इस आशा में है-जुटा लूंगा, जुड़ा लूंगा; अभी जिंदगी पड़ी है, और दौड़ूंगा, और श्रम करूंगा। धनी कहां जाए? वह तो ऐसे मोड़ पर आ गया है जिसके आगे रास्ता ही समाप्त हो जाता है, वह तो बुरी तरह डूब गया।
इस दुनिया में सब है, लेकिन सब सपने जैसा है। सत्य भीतर है, बाहर नहीं है। जो बाहर है उसका नाम दुनिया और जो सत्य है, वह है तुम्हारी सत्ता।
तू कहती है--
"भरी दुनिया में जी नहीं लगता
जाने किस चीज की कमी है अभी!"

अच्छा है कि कमी एहसास होने लगी। धन्यभागी हैं वे जिन्हें कमी एहसास होने लगती है। और जिन्हें जल्दी एहसास हो जाए, उन पर परमात्मा की अनुकम्पा है।
तू तो अभी युवा है। यही घड़ी है कि कोई जाग जाए तो जिंदगी व्यर्थ जाने
से बच सकती है; कोई जाग जाए तो बाहर की यात्रा अंतर्यात्रा बन सकती है। और जागने की पहली शुरूवात यूं ही होती है कि एक कमी लगती है। बुढ़ापे में तो सभी को लगती है, मगर तब बहुत देर हो गयी होती है। और कुछ तो ऐसे मूढ़ हैं कि उन्हें बुढ़ापे में भी नहीं लगती। उन्हें मरते-मरते तक नहीं लगती। मरते- मरते तक भी उनकी चेष्टा यही होती है कि किसी तरह कुछ जो कमी रह गयी हो उसे पूरा कर लें। मरते-मरते भी दौड़ने से संलग्न रहते हैं, आखिरी दांव लगाने में लगे रहते हैं। मरते-मरते भी धक्का मुक्की कर लें!
मुल्ला नसरूद्दीन बुढ़ापे में तंग आकर अस्पताल में भर्ती हो गया। एक युवा और सुंदर नर्स उसके वार्ड में डयूटी पर थी। एक दिन उस नर्स ने मुल्ला से कहा कि कल से मेरी डयूटी जनाना वार्ड में लगेगी। इस पर मुल्ला ने कहा: "मेरी बदली भी तब जनाना वार्ड में करा दो।"
नर्स ने कहा: "आपको जनाना वार्ड में शर्म नहीं आएगी?"
मुल्ला ने कहा: "शर्म की क्या बात है! वहां तो मैं पैदा ही हुआ था।" बुढ़ापे तक भी मूर्खता मिटती नहीं। वही राग, वही रंग! दीवाला निकलने के करीब आ जाता है, मगर अभी भी जलाए जाते हैं दीए-इस आशा में कि शायद एक दीवाली और मना लें! सब टूट चुका, सब फूट चुक; लेकिन फिर भी एक हाथ और मार लें! कौन जाने जो अब तक नहीं लगा हाथ, अब लग जाए!
मुल्ला नसरुद्दी एक नुमाइश में गया था लखनऊ में। बूढ़ा हो गया है। पहन रखा है चूड़ीदार पाजामा, अचकन। शाल डाल रखी है। गांधीवादी टोपी लगा रखी है। बिल्कुल नेता मालूम हो रहा है। बुढ़ापे में लोग चूड़ीदार पाजामा इसीलिए पहनते हैं, उससे जवानी की चुस्ती मालूम पड़ती है, उससे जवानी को धोखा मालूम पड़ता है। अब जोर से कस लोगे पैरों को तो खाल कितनी ही ढीली पड़ गयी हो, कम से कम बाहर से तो चुस्ती दिखाई पड़ेगी। और इतने कसे रहोगे तो खुद भी थोड़ी तेजी से चलोगे कि जल्दी घर पहुंच जाएं, कि कब इस चूड़ीदार पाजामे से छुटकारा हो। बड़ी तेजी से चला जा रहा था। एक भीड़ में एक सुंदर युवती को देखकर जी नहीं माना। यूं तो अपने को बहुत रोका, फिर भी एक धक्का मार ही दिया। युवती ने लौट कर देखा-शुद्ध खादीधारी नेता है! सब बाल सफेद हो गये हैं। कहा: "शर्म नहीं आती? बाल सफेद हो गये और अभी भी यह ढ़ंग!"
नसरूद्दीन ने कहा: "बाल सफेद हो गये हों, मगर दिल तो अभी भी काला है। दिल की तरफ देखो।"
दिल काला ही बना रहता है; वह सफेद होता ही नहीं। न सफेद खादी से होता है, न सफेद बालों से होता है। दिल तो काला ही बना होता है। जब तक कि भीतर का दीया न जले तब तक काला ही बना रहता है। तब तक तो वहां काजल ही काजल है। तब तक तो वहां धुआं ही धुआं है।
प्रज्ञा, तू तो अभी युवा है। यही घड़ी है। अगर कोई जाग आए तो अभी समय है। जो श्रम बाहर की यात्रा में लगे, वही श्रम भीतर की यात्रा में लग सकता है। बाहर तो धन नहीं मिलता, लेकिन भीतर मिल सकता है। धन तो नहीं, ध्यान मिलेगा। मगर ध्यान ही धन है। पद तो नहीं लेकिन परमात्मा मिलेगा। पर परमात्मा ही तो परमपद है! कमी मिट जाएगी।

लेकिन भीतर की यात्रा के कुछ सूत्र समझ लेने चाहिए। पहला तो सूत्र यह
है कि भीतर की यात्रा पर किसी लोभ के कारण नहीं जाना चाहिए, क्योंकि लोभ तो बाहर की यात्रा का हिस्सा है। लोभ अगर है तो तुम भीतर जा ही नहीं रहे। तुम चाहे लोभ के कारण ध्यान करने बैठे हो, तो भी तुम्हारी बहिर्यात्रा चल रही है। क्योंकि लोभ बहिर्यात्रा में ही ले जा सकता है। वह गाड़ी बाहर की तरफ ही जाती है। महत्त्वाकांक्षा अगर सिर पर सवार है तो तुम चाहे ध्यान करो, चाहे पूजा, चाहे प्रार्थना-कुछ न होगा, क्योंकि महत्त्वाकांक्षा का जहर इन सबकी गर्दन घोंट देगा, इनको मार ड़ालेगा, महत्त्वाकांक्षा तो दिल्ली की तरफ जाती है-दिल की तरफ नहीं। वह यात्रा बहिर्मुखी है, अंतर्मुखी नहीं। अभी मैंने कुछ दिन पहले डॉक्टर मुंशीसिंह को कहा था न कि आ गये हो भूले-भटके तो अब हिम्मत करो। अभी यूं आधे-आधे, यहां-वहां, अधूरे-अधूरे कुछ कुछ करते हे होओगे, इसलिए बात बनी नहीं। अब पूरे उतर जाओ। अगर उतरना ही है तो पूरे उतर जाओ। यह सौदा जुआरियों का है, व्यवसायियों का नहीं है। उन्होंने सोचा कि चलो पूरे ही उतर कर देख लें। वे दूसरे दिन ही संन्यास हो गये। दूसरे दिन बड़ी शान से उन्होंने पत्र लिखा कि आपने कहा तो मैं संन्यासी हो गया। मगर एक ही दिन चला संन्यास! इसलिए मैंने उनके प्रश्न का दूसरे दिन उत्तर नहीं दिया, क्योंकि मैंने कहा जरा दो-चार दिन देख तो लूं! यह ज्यादा चलने वाला नहीं है। चौबीस घंटे बाद ही वे पंहुच गये कि अगर साल भर में परमात्मा की प्राप्ति नहीं हुई तो मैं संन्यास छोड़ दूंगा। तो उनको खबर दी गयी: "बेहतर है तुम अभी ही छोड़ दो, क्योंकि शर्तो से कोई संन्यासी नहीं होता।" वे परमात्मा को अल्टीमेटम दे रहे हैं कि साल भर में अगर प्राप्ति न हुई तो संन्यास छोड़ दूंगा! ऐसा लगता है कि इन्हें परमात्मा की कम जरूरत है, परमात्मा को इनकी ज्यादा जरूरत है, कि डॉक्टर मुंशीसिंह अगर नहीं मोक्ष को प्राप्त हुए तो परमात्मा जार-जार रोएगा, कि छाती पीटेगा, कि हे मुंशीसिंह, कहा हो? तुम्हारे बिना जी नहीं लगता, कि तुम आओ तो... ।"
"दिल में एक लहर सी उठी है अभी
कोई ताजा हवा चली है अभी!
शोर बरपा है खाना-ए दिल में
कोई दीवार सी गिरी है अभी।"
... कि परमात्मा भी फिर गुनगुनाए, कि उसकी जिंदगी में भी मौसम आए! मुंशीसिंह आएं तो मौसम आए!
और डॉक्टर की तो उसको भी जरूरत पड़ती ही होगी। ऐसे मुंशीसिंह मुझे कोई असली डॉक्टर नहीं मालूम पड़ते, क्योंकि अपने दस्तखत में उन्होंने पहले दिन तो लिखा था: "मुंशीसिंह डॉक्टर"। वह तो मैंने सिर्फ शिष्टाचारवश "डॉक्टर मुंशीसिंह" कहा। वे डॉक्टर ऐसे मालूम पड़ते हैं, जैसे हमारी-"पदमा इंजीनियर"! कभी बाप-दादे कोई इंजीनियर रहे होंगे! इतना तो पक्का है कि पदमा इंजीनियर नहीं है। लेकिन अब वह उपनाम ही हो गया-इंजीनियर। जैसे कोई शर्मा, कोई वर्मा-ऐसे पदमा इंजीनियर। ऐसे ही ये मुंशीसिंह डॉक्टर मालूम पड़ते हैं, क्योंकि डॉक्टर होते जो पहले डॉक्टर लिखा जाता है न कि पीछे- मुंशीसिंह डॉक्टर! पीछे जब कोई लिखता है तो उसका मतलब ही साफ हैं। मगर जब से मैंने डॉक्टर मुंशीसिंह कहा, तब से वे भी आगे लिखने लगे; उनने सोचा कि जब चल ही रही है बात तो फिर काहे को पीछे लिखो! उनने भी आगे लिखना शुरू कर दिया, कि जब मुफ्त में ही बात बनी जा रही है तो बन ही जाने दो। कभी बाप-दादे कोई रहे होंगे डॉक्टर। वे भी मैं नहींं समझता कि आदमियों के डॉक्टर रहे हों।
चौबीस घंटे में ही शर्तबंदी शुरू कर दी उन्होंने कि एक साल, ठीक एक साल! अगर नहीं परमात्मा की उपलब्धि हुई, अगर निर्वाण का अनुभव नहीं हुआ, अगर समाधि न लगी, तो बस संन्यास छोड़ दूंगा!
लोभ से संन्यास? लोभ से ध्यान? यह मोक्ष भी फिर मोक्ष न रहा। यह परमात्मा भी फिर परमात्मा न रहा। यह सब दुकानदारी ही हो गयी। यह बहिर्यात्रा ही रही फिर। ये तो मौज की बातें हैं, ये तो मस्ती की बातें हैं। और जब छोड़ने की बात पहले से ही तय है तो क्या तुम पूरे उतरे पाओगे?

तुम चौबीस घंटे हिसाब लगाते रहोगे कि अभी तक नहीं हुआ, अभी तक नहीं हुआ, चार दिन निकल गये, पांच दिन निकल गये, सात दिन निकल गये, यह एक सप्ताह हुआ, यह चार सप्ताह हुए, यह एक महीना गया, अब ग्यारह महीने ही बचे! अभी तक कुछ तो मिल जाना चाहिए था! न मिलता पूरा-पूरा, तोला भर मिलता, दो तोला मिलता, कुछ तो मिलता! रत्ती मासा कुछ तो मिलता! कुछ आसार तो नजर आते! न मिलता, कम से कम पैरों की आवाज तो सुनाई पड़ती! एक महीना यूं ही गया! और ग्यारह महीने ही बचे!
ये बचकानी बातें हैं। ये छोटे-छोटे बच्चों जैसी बातें है। परमात्मा कोई खिलौना हैं? तुम्हारी आकांक्षाओं और तुम्हारे लोभ और तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा की दौड़ से तुम उसे पा लोगे? पागल हो गये हो!
प्रज्ञा, अच्छा है कि तु अभी यूवा है। अगर दुनिया में कमी मालूम होने लगी है... --यही तो मैं चाहता हूं कि दुनिया में कमी मालूम होने लगे। इसलिए तो नहीं चाहता कि तुम दुनिया छोड़ो। दुनिया छोड़ दोगे तो दुनिया की कमी कैसे मालूम होगी? वह जो जंगल में बैठ जाता है, उसको दुनिया में बहुत रस आता है। वह जो पहाड़ में, गुफा में बैठ जाता है, उसको यह शक बना ही रहता है कि पता नहीं दुनिया में क्या मजा चल रहा है! कही मैं भूल तो नहीं कर बैठा!
एक जैन मुनि, "कनक विजय" एक बार मेरे पास मेहमान हुए। देखा कि मुझसे सीधी सच्ची बातें की जा सकती हैं। दो-तीन दिन तक तो अध्यात्म की बातें चलीं, फिर धीरे-धीरे उन्होंने असली बातें कहीं। उन्होंने कहा: "आपसे असली बातें कही जा सकती हैं। अब मैं आपसे सच कहूं, तो मैं केवल नौ साल का था तब मेरी मां मर गयी। मां के मरने से पिता संन्यासी हो गये।"
इस देश में स्त्री मर जाए तो फिर करो क्या-मूंड़-मूंड़ाए भये संन्यासी! फिर वे सिर मुंड़ा कर संन्यासी हो गये। और नौ साल का ही एक बेटा था घर में, वह क्या करे? सो उन्होंने उसको भी संन्यास दिलवा दिया। तो नौ साल में कनक विजय मुनि हो गये। अब नौ साल का बच्चा संन्यासी हो जाए, घर छोड़ दे-और जैन मुनि! तुम उसकी दुर्दशा समझ सकते हो। न उसने वे मिठाइयां खायीं जो सभी बच्चे खाते हैं। न उसने आइस्क्रीम चखी जो सभी बच्चे चखते हैं। न कोकाकोला पीया, न चाय न कॉफी, न चमचम न संदेश, कुछ भी नहीं। उसकी तुम तकलीफ समझ सकते हो। वह नौ साल पर अटका रह गया। उसने कुछ नहीं देखा। मदारी के खेल नहीं देखे। सरकस नहीं देखी, सिनेमा नहीं देखा।
वे मुझसे कहने लगे: "आप से सच्ची बातें कह सकता हूं। मेरे मन में सदा
यह उठता है कि सिनेमा में क्या होता होगा! लोंगो की भीड़ लगी देखता हूं, मार-पीट होती देखता हूं दरवाजों पर, कतारें लगी हैं सड़कों पर दूर-दूर तक। जरूर कुछ तो होता होगा। भीतर क्या होता है? मैं किसी से पूछ भी नहीं सकता कि लोग क्या कहेंगे, कि सत्तर साल का जैन मुनि और पूछे कि सिनेमा में क्या होता है। तो लोग कहेंगे-यह कैसा अध्यात्म, यह कैसी तपश्चर्या, यह कैसी जिज्ञासा! अरे ब्रम्हज्ञान की बातें करो, आत्मज्ञान की बातें करो। मैं आत्मज्ञान की बातें करो। मैं आत्मज्ञान समझाता हूं लोंगो को, ब्रम्हज्ञान समझाता हूं। मोक्ष-मार्ग बताता हूं। जिनवाणी समझाता हूं। अब मैं किससे पूछूं। जिससे पूछूं वही संदेह की नजर से देखेगा। मगर आपसे पूछ सकता हूं। सिनेमा में क्या होता है?"
मैंने कहा: "तुम चिंता न करो। मैं तुम्हें सिनेमा भिजवाए देता हूं।" उन्होंने कहा: "आप क्या कहते हैं! कोई देख लेगा!"
मैंने कहा: "तुम उसकी भी फिक्र न करो। कन्टोन्मेंट एरिया में कोई जैन नहीं रहता वहां।" मिलिट्री में जैन वैसे भी भरती नहीं होते, हो सकते नहीं। मिलिट्री की तो बात दूर, जैन खेतीबाड़ी नहीं करते, क्योंकि पौधे वगैरह काटना पड़े, उखाड़ना पड़े, हत्या हो जाए! पौधे में भी तो जीवन है। मिलिट्री की तो तुम बात ही छोड़ दो, वहां कहां जैन वगैरह का सवाल! तो तुमको वहां भिजवा देता हूं देखने। एक ही अड़चन है कि वहां हिंदी फिल्म नहीं चलती, अंग्रेजी फिल्म चलती है।"
उन्होंने कहा: "फिल्म कोई भी भाषा में हो, क्या फिकिर! एक दफा देख तो लूं कि क्या होता है। समझ में नहीं आएगी तो कोई बात नहीं।"

तो मेरे पड़ोस में ही मेरे एक भक्त रहते थे-जगसीभाई। उनको मैंने बुलवाया मैंने कहा कि ऐसा करो जगसीभाई, इनको ले जाओ कंटोन्मेंट एरिया की एक टाकीज में, इनको बिठा कर... --ठीक बाक्स में ऊपर बिठा देना, ताकि कोई देखे-दाखे भी नहीं। जगसीभाई भी बहुत घबड़ाए। वे भी जैन थे। वे कहने लगे: "हालांकि मैं आपको मानता हूं और मेरा अब कोई रस नहीं रहा है जैन धर्म में और यह सब रूढ़िवाद में, यह दकियानूसीपन में। मगर यह हिम्मत तो मैं भी नहीं कर सकता! आपने भी खूब मुझे बुलवाया। आप किसी और को बुलवा लेते। आप भी तरकीब से चोट करते हैं!"
मैनें कहा: "मैंने सोचा एक पत्थर से दो पक्षी मारो। यह तो कनक विजय तो मारे ही जा रहे हैं, जगसीभाई को भी मारो! तुम्हारा भी पता चल जाएगा कि दकियानूसीपन से कितना छुटकारा हुआ।"
उन्होंने कहा कि अगर मेरी पत्नी वगैरह को पता चल गया, फिर क्या होगा? मैंने कहा: "वह फिर देखेंगे। जब ये नहीं डर रहे हैं मुनि होकर, तो तुम क्या डर रहे हो जगसीभाई? अरे पत्नी को ही पता चलेगा न।"
"अब पत्नी बड़ी धार्मिक है। वह जीना हराम कर देगी मेरा। मेरे बच्चों को पता चल गया तो वे मुश्किल खड़ी कर देंगे।"
मैंने कहा: "किसी को पता क्यों चले! इनको गाड़ी में बिठाओ।"
कहा: "कहते क्या हैं आप! गाड़ी में बिठाऊं! मुनि महाराज को!"
मैंने कहा: "जगसीभाई, रहे तुम वही के वही! अरे जब सिनेमा दिखाने ले जा रहे हो तो क्या पैदल ले जाओगे? सारे गांव में खबर हो जाएगी कि ये कहां जा रहे हैं मुनि महाराज! और पीछे कुछ श्रावक हो लिए तो और मुसीबत हो जाएगी।" कहा: "यह बात भी ठीक है। अपनी गाड़ी मैं नहीं ला सकता, क्योंकि बच्चे पूछेंगे, पत्नी पूछेगी-कहां जा रहे हो?"
तो मैंने कहा: "तुम मेरी गाड़ी ले जाओ।" उनको मैंने अपनी गाड़ी दी। देखा उनके हाथ-पैर कंप रहे हैं। मैंने कहा: "जगसीभाई, तुम शराब पी जाते हो, तब भी हाथ पैर नहीं कंपते!" शराब पीने की उनको आदत थी। मैंने कहा: "तब तुमको जैन धर्म नहीं याद आता! और जब ये मुनि महाराज खुद ही जाने को तैयार हैं तो तुम क्यों परेशान हो रहे हो? मगर अगर ऐसे कंपते हाथ से ले गये तो कहीं एक्सीड़ेंट वगैरह मत कर देना; नहींं तो तुम भी फंसोगे, मुनि महाराज भी फंस जाएंगे। मुझे तो कोई अड़चन नहीं है। मेरी तो थोड़ी और बदनामी होगी, तो थोड़ा और नाम हो जाएगा, इसमें कोई हर्जा नहीं।"
मैंने कहा कि मैं खुद ले चलता हूं, तुम्हें टाकीज छोड़ आता हूं। इस हालत में तुम न ले जा सकोगे। रास्ते में कोई जैन दिख गया या कुछ हो गया तो तुम एकदम होश खो दोगे।
तो मैं उनको ले जा कर टाकीज तक दोनों को छोड़ आया। मुनि महाराज को उन्होंने जा कर बिठा दिया। वे देख कर आ गये। लौट कर आ कर बोले कि कुछ भी नहीं हैं वहां, लेकिन मैं कितना परेशान रहता था! बस इसी का खयाल उठता था कि क्या हैं वहां! अब आपसे क्या छिपाना! यही छोटी छोटी चीजें मुझे परेशान कर रही हैं-आइस्क्रीम, कोकाकोला, फेंटा!
मैंने कहा: "तुम सब, जो भी तुम्हें परेशान कर रहा हो, तुम बोलो-और जगसीभाई! मैं दोंनो को ही निपटा लेता हूं। तुम्हें शराब पीनी है-जगसीभाई खुद भी पीते हैं, तुमको भी पिलांएगे। तुम सभी चख लो, एक दफा का झंझट मिटा लो। सिनेमा देख आए, सिनेमा से छुटकारा हो गया।"
उन्होंने कहा: "हां, बिल्कुल छुटकारा हो गया। अब मुझे कोई मतलब नहीं। देख लिया, कुछ नहीं, बेकार में परेशान था।"
यह आदमी नौ वर्ष की उम्र पर अटका रह गया। नौ वर्ष के बच्चे की जिज्ञासा। इसका कोई कसूर नहीं है। इसका क्या कसूर? नौ वर्ष के बच्चे को अटका दिया तुमने। मगर जो भी भागेगा जिंदगी से वह कहीं न कहीं अटक जाएगा। वह लौट-लौट कर देखता रहेगा कि पता नहीं वहां क्या हो रहा है! यहां गुफा में तो कुछ भी नहीं हो रहा है। खबरें पहुंचती रहेंगी कि अब टेलीविजन आ गया, रंगीन टेलीविजन आ गया! और अब कैबरे नृत्य होने लगा! अब बैठे गुफा में हैं, अब कैबरे नृत्य क्या है! अब इनको तो मरने के बाद स्वर्ग में अप्सराएं वगैरह मेनका, उर्वशी अगर नाचती होंगी अभी भी... --हालांकि अब तक बूढ़ी हो

चुकी होंगी, बहुत बूढ़ी हो चुकी होंगी। लाखों साल हो गये, लाखों साल की बुढ़िएं नाच रही हों बड़ा मुश्किल है। और कैबरे नृत्य तो क्या खाक करती होंगी! और करती भी होंगी तो क्या जंचता होगा? स्ट्रिप-टीज़ क्या है! अब बैठो, मरने के बाद देखना। अप्पसराएं करें तो करें। मगर अप्सराओं की हालतें अब तक इतनी खराब हो गयी होंगी, दांत सब गिर चुके होंगे। अब स्ट्रिप-टीज़ भी क्या देखोगे?
मैंने सुना है, अमरीका की एक होटल में एक बुढ़िया बहुत दुखी ठहरी हुई थी। दुख उसका यह था कि उस पर कोई नजर ही नहीं डालता।
स्त्रियां तीन तरह की होती हैं: एक, जिन पर लोग नजर डालते हैं; दूसरी, जिनको लोग नजर-अंदाज करते हैं; और तीसरी, जिनसे नजर बचाते हैं। उसकी हालत तीसरी कोटि में थी। लोग नजरे बचाते थे। वह जिधर जाए, इधर-उधर देखने लगें लोग। और रोज कैबरे चल रहा है, स्ट्रिप-टीज़ हो रहा है-और छोकरियां कल की! बुढ़िया को बहुत दुख हुआ, कल की छोकरीयां मुझे हरा रही हैं! एक दिन उसे बहुत गुस्सा आया। अपनी सहेली से जो कि खुद भी बुढ़िया थी, उसने कहा: "आज मैं भी कुछ करके दिखाती हूं।" उसने सारे कपड़े उतार दिए। नंग-धड़ंग होटल में घुस गयी कि अब तो देखेंगे, अब तो देखना ही पड़ेगा। स्त्री कितना ही चेष्टा करे, उसके मन में यह भाव बना ही रहता कि कोई देखे। कोई न देखे तो उसे बड़ा दुख होता है। वह अप्सरा हो कि न हो, पृथ्वी की हो कि स्वर्ग की, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। कोई न देखे तो बड़ा दुख होता है। जिस दिन स्त्रियों को लोग नहीं देखते, उस दिन स्त्रियों को लगने लगता है कि बस अब काम से गये।
बुढ़ापे का मतलबही यह होता है कि अब कोई नहीं देखता, बुढ़ापा आ गया। नंग-धड़ंग! ... --अमरीका में ही यह घटना घट सकती है--... वह घुस गयी होटल में। उसकी सहेली भी नंग-धड़ंग! दोनों बुढ़िंए। होंगी अस्सी के पार। किसी ने नहीं देखा, सिर्फ दो आदमियों ने देखा। और दोनों एक दूसरे से बोले कि कुछ भी हो, जो भी इन्हें पहनना हो पहनें, मगर इन बाइयों ने जो भी पहना है, कम से कम उस पर लोहा तो कर लिया करें! क्या पहने चली आ रहीं हैं! पहनने की तो स्वतंत्रता है मनुष्य को, जो भी पहनना चाहे पहने, मगर कम से कम लोहा तो कर लेना चाहिए! ये किस प्रकार का कपड़ा पहने हुए हैं! वे नंग-धड़ंग हैं! इससे भी गयी-बीती हालत हो गयी होगी वहां। अब तो लोहा भी करोगे मेनका को रख कर, तो भी कुछ उसमें से सार निकलेगा नहीं। और जल-भुन जाएगी।
अब ये बैठे हैं गुफा में, सोच रहे हैं कि उर्वशी मिलेगी कि मेनका मिलेगी? और यहां से भाग गये हैं और स्वर्ग की आशाएं लगाए बैठे हैं कि वहां प्राप्ति होगी। मगर प्राप्ति क्या-वही जो यहां छोड़ गये हैं! कुछ छूटा नहीं है। वही दौड़ चल रही है अभी भी मन में। अभी राम राम जप रहे हैं, मगर प्रयोजन क्या है राम राम जपने का? प्रयोजन वही है कि जो यहां छोड़ गये हैं वह बड़े पैमाने पर मिल जाए। जब तक मिलने की कोई भी इच्छा है, जब तक कोई भी लोभ ईश्वर को पाने का ही क्यों न हो; वह लोभ आनंद को पाने का ही क्यों न हो-ये सब नाम ही हैं। लोभ बड़ा चालबाज है! वह हर चीज पर चिपका जाता है। वह हर विषय को पकड़ लेता है। तुम जो भी विषय दे दो... मोक्ष, तो वह कहेगा ठीक है मोक्ष सही, हम इससे ही जुड़े जाते हैं।
अब ये मुंशीराम डॉक्टर, चौबीस घंटे में ही इनको लोभ पकड़ गया कि एक साल
के भीतर परमात्मा-उनलब्धि होनी चाहिए। नहीं हुई तो संन्यास छोड़ देंगे। यह संन्यास हुआ? यह ध्यान हुआ? ऐसे तुम ध्यान करोगे? इसी लोभ की वृत्ति से ये भटके होंगे, परेशान रहे होंगे। ये भटकते ही रहेंगे। इनकी जिंदगी में कभी यह घटना नहीं आएगी कि कह सकें कि-
"दिल में एक लहर सी उठी है अभी
कोई ताजा हवा चली है अभी।"
ये लोभ की गंदी हवाएं ही इनकी जिंदगी में बहती रहेंगी। ये अहंकार और महत्त्वकांक्षा की गंदी हवाएं ही इनकी जिंदगी को घेरे रहेंगी। इनके भीतर कोई दीवार कभी नहीं गिरेगी।
"शोर बरपा है खाना-ए दिल में
कोई दीवार सी गिरी है अभी।"

मगर प्रज्ञा, तू अभी युवा है। यही क्षण है। संसार छोड़ना नहीं है, भागना नहीं है। यहीं रहना हैं, ताकि इससे ठीक से मुक्ति हो जाए। देख कर ही मुक्ति होती है। अनुभव से मुक्ति होती है। और तुझे दिखाई पड़ने लगा है कि... "भरी दुनिया में जी नहीं लगता
जाने किस चीज की कमी है अभी।"
... तो बस अंतर्यात्रा का पहला कदम इस तरह ही उठता है। मगर अब खयाल रखना, बाहर ले जाने वाली कोई भी वृत्ति को जरा सी भी गुंजाइश मत देना। जरा भी बीज मत बोना-लोभ के, महत्त्वकांक्षा के, अहंकार के।
संन्यास अलोभ है। संन्यास महत्त्वकांक्षा-मुक्ति है। संन्यास वासना
का अतिक्रमण है। संन्यास इच्छा की व्यर्थता को समझ लेने में है। और तब अपने-आप चेतना ऐसे भीतर सरकने लगती है। कुछ करना नहीं होता; प्रयास नहीं करना होता, सहज!
और चोंटे तो बहुत लगेंगी। मेरे पास रहने का अर्थ ही यह है कि चोट पर चोट पड़ेंगी, क्योंकि तुमने जो भी बनाया है अब तक, उसे मैं तोड़ूंगा सब रेत के घर तोड़ दूंगा। और तुम्हारे ताश के महल गिरा दूंगा।
तू कहती है-
"कुछ तो नाजुक मिजाज हैं हम भी
और यह चोट भी नयी है अभी।"
चोट तो लगेगी, क्योंकि तेरी धारणाएं टूटेंगी, मान्यताएं टूटेंगी, सिद्धांत टूटेंगे, आधारशिलाएं खिसकेंगी। और नाजुक मिजाज कौन नहीं है? सभी नाजुक मिजाज हैं। और कौन है जिनको चोट नहीं लगेगी? मेरे पास चोट न लगे, यह असंभव है। उसको ही नहीं लग सकती चोट, जिसको कुछ समझ में ही न आए। उसको ही चोट नहीं लग सकती, जिसकी खाल इतनी मोटी हो कि बुद्धि तक कुछ भी न पंहुचे। उसको चोट नहीं लग सकती, जो सुन भी रहा है और नहीं भी सुन रहा है; जो यूं ही चला आया है; जो झपकियां ले रहा है, नद्ध में है; जो आया ही नहीं है वस्तुतः सिर्फ शरीर की तरह यहां मौजूद है। लेकिन जो यहां आत्मा की तरह मौजूद है, उस पर तो चोट पर चोट पड़ेगी। और जो जितना योग्य होता है उसे मैं उतनी ही ज्यादा चोटें मारूंगा। क्योंकि जो जितना योग्य है, जितना पात्र है, उसकी उतनी ही आवश्यकता ज्यादा है। उसमें उतने ही रूपांतरण की संभावना है। उसकी तो गर्दन काटी जाएगी। उसको जो बिल्कुल ही टुकड़े-टुकड़े काट दिया जाएगा, ताकि जो शुद्धतम है वही शेष रह जाए। जो नहीं टूट सकता है वही बचे। शेष सब तोड़ दिया जाएगा। जो अखंड़ है वही बचे; शेष सब खंड़ित कर दिया जाएगा।
तो घबड़ाना मत। चोटों से भयभीत न होना। जब एक चोट पड़े तो धन्यवाद देना। वही शिष्य की कला है। वही शिष्य होने की कला है कि सदगुरू जब चोट करे तो शिष्य धन्यवाद दे सके, कृतार्थता प्रगट कर सके। और जो उतनी कृतार्थता प्रकट करता है उसके जीवन में रूपांतरण निश्चित है।

दूसरा प्रश्न: भगवान,
मने खबर नथी--हूं कौण छूं! अहियां शूं करूं छू?

रंजन!
तेरा नाम रंजन--और तू पड़ गई है एक भंजक के हाथ में। और तेरा काम--इस मधुशाला के द्वार पर लोगों का स्वागत करना। और क्या जानना है? तू पूछती है : "मने खबर नथी--हूं कौण छूं!"
जब भी ऐसा सवाल उठे, आईने में अपनी तस्वीर देख ली और कहा कि अरे ठीक, यही मैं ही तो हूं--रंजन भारती! और "अहियां शूं करूं छूं!" करना क्या है? करने को कुछ नहीं है। यहां करने का सवाल ही नहीं है। मगर यह खतरा होने वाला है।
संत महाराज ने पूछा है कि "अंग्रेजी और हिंदी मुझे ज्यादा आती नहीं और सुनते-सुनते मैं थक भी गया हूं। अब तो दिल में एक भाव उठ रहा है कि पंजाबी बोलना शुरू कर दूं। आपकी आज्ञा की जरूरत है। सदगुरु साहब, आज्ञा दो!"
संत महाराज, बोलो, पंजाबी बोलो। कोई हर्जा नहीं है। कोई चिंता न करो।

मैं पंजाब जाता था तो कई लोग मुझसे पंजाबी में बात करते थे। मुझे पंजाबी का क ख ग नहीं आता। जब मैं पहली दफा पंजाब गया और अमृतसर के एक वेदांत सम्मेलन में सम्मिलित हुआ, तो पंजाबी का एक अखबार अपने संपादक को भेजा। वे मुझसे पंजाबी में आकर बात करने लगे। जिनके घर मैं मेहमान था, वे बेचारे जरा परेशान हुए। वे जानते थे कि मुझे पंजाबी आती नहीं। मगर वे और भी इसमें हैरान हुए कि मैं कुछ कह ही नहीं रहा, वे पंजाबी में कहते हैं और मैं उनको जवाब दिए जा रहा हूं। वे बड़े हैरान हुए कि शायद पंजाबी आती है या बात क्या है! संपादक तो इतना तृप्त होकर गये कि उन्होंने दूसरे दिन अखबार में जो सुर्खी छापी वह यह थी कि "एशिया के सबसे बड़े वेदांती।" क्योंकि वे कुछ भी पूछें, मैं वेदांत की ही छांनू! मुझे पता नहींं वे क्या पूछ रहे हैं। मैं तो वेदांत की ही बात करूं। सो उन्होंने देखा हैं... "एशिया के सबसे बड़े वेदांती।"
जो मेरे मेजबान थे, वे कहने लगे कि आपने हमें चकित कर दिया। हमें मालूम नहीं था आपको पंजाबी आती है!
मैंने कहा: "किस मूरख को आती है!"
उन्होंने कहा: "आप जवाब तो ऐसे दे रहे थे... ।"
मैंने कहा: "जवाब में मुझे क्या फर्क पड़ता है? तुम किसी भाषा में पूछो, मुझे जो कहना है वह मैं वही कहता हूं।"
गुजरात जाता था, लोग गुजराती में आकर बातें करते थे। करते रहो! मुझे
जो कहना है वही मैं कहूंगा! इस देश भर में घूमता था, सब तरह की भाषाएं सुननी पड़ती थीं। कौन फिकर करता है कि तुम क्या कह रहे हो! इतना मुझे मालूम है कि देश में ऐसी गहन मूढ़ता है कि लोग सिवाय ब्रह्मज्ञान के और कुछ बात ही नहीं करते। तो कुछ भी पूछो, मैं ब्रह्मज्ञान ही छेड़ दूं।
तो तुम फिकर न करो संत महाराज! इससे लोग तुमको पहुंचा हुआ सिद्ध समझेंगे। कोई अंग्रेजी बोले, हिन्दी बोले और कुछ बोले, तुम पंजाबी बोलो। दिल खोल कर पंजाबी बोलो। पंजाबी बोलने का मजा ही और है! जैसे लड़ाई-झगड़ा करना हो तो जो पंजाबी में हो सकता है, वह किसी दूसरी भाषा में हो ही नहीं सकता। अब उसी लड़ाई-झगड़े को गुजराती में करो तो ऐसा लगे जैसे प्रेम की वार्ता चल रही है। गुजराती में जान ही निकल जाती है। सब शब्द गोल-गोल हो जाते हैं गुजराती मे। उनमें से धार मर जाती है। और पंजाबी में तो एकदम धार होती है--कृपाण!
तो वह जो मैंने तुमसे कहा कि तुम्हारा नाम असली में अंट-शंट महाराज है, तो लोग कहेंगे कि है, बिल्कुल ठीक है। तुम अपने दिल में दबाओ मत, दमन के मैं बिल्कुल खिलाफ हूं! और सबसे पहले तुम "रंजन" से शुरू करो सत्संग। रंजन बोले गुजराती, तुम बोलो पंजाबी। यह कितना ही पूछे "मने खबर नथी, हूं कौण छूं", तुम इसको बताओ पंजाबी में। यह कितना ही कहे "अहियां शूं करूं", फिकीर ही मत करो। और ज्यादा गड़बड़ करे तो भांगड़ा नृत्य!
एक बार जेल में तीन व्यक्ति मिले। एक बोला कि जानते हो दोस्तो, मैं इस जेल में तब से हूं जब बम्बई में रेलगाड़ी का चलना शुरू ही शुरू हुआ था। दूसरा बोला कि बस, अरे मैं तो इस जेल में तब से हूं जब बम्बई में घोड़ागाड़ी का चलना पहली बार ही शुरू हुआ था। तीसरा बोला कि भाई, यह घोड़ागाड़ी क्या चीज होती है?
दिल खोल कर हांको! जब हांक ही रहे हो... । और ब्रह्मज्ञान है ही क्या- हाकना! इसको कहते हैं ब्रह्मचर्चा।
दो मछलीमार घर की तरफ लौट रहे हैं, एक ने कहा: "आज गजब हो गया! एक ऐसी मछली मैंने पकड़ी, इतनी बड़ी मछली न तो मैंने देखी, न सुनी। गजब की मछली थी। इतिहास में भी ऐसी मछली का उल्लेख नहीं है। मेरी नाव छोटी पड़ गयी। मछली को खींच कर लाना घाट तक मुश्किल खड़ा हो गया।"
दूसरे ने कहाः "मछली तो आज मैंने भी गजब की पकड़ी। हालांकि बड़ी तो नहीं
थी इतनी, थी तो छोटी, लेकिन जब मैंने उसे काटा तो क्या देखा कि उसके भीतर एक लालटेन मिली। और लालटेन पर लिखा था कि नेपोलियन की लालटेन! और इतना ही नहीं, लालटेन अभी भी जल रही थी!"

दूसरे ने कहा कि देखो भैया, तुम अगर लालटेन बुझा दो तो मैं अपनी मछली
की साइज तुम जितनी छोटी कहो उतनी कर सकता हूं। मगर लालटेन बुझा दो, देखो लालटेन बुझा दो! यह काफी है कि नेपोलियन के जमाने की लालटेन थी, मगर कम से कम लालटेन बुझा दो।
जब गपशप ही मार रह हो, तो फिर क्या! और यह तो होने वाना है। यहां कम से
कम पचास भाषाओं को जानने वाले लोग हैं। नये कम्यून में इस तरह का इंतजाम कर देंगे। कुछ सत्संग के स्थल बना देंगे, जहां अपनी-अपनी भाषा में छेड़ो। कोई किसी के सुनने की जरूरत नहीं-सत्संग में कोई किसी की सुनता है! अपनी- अपनी छेड़ो। कोई गुजराती बोल रहा है, कोई पंजाबी बोल रहा है, कोई बंगाली बोल रहा है, कोई मद्रासी बोल रहा है, कोई मराठी बोल रहा है। कोई चीनी, कोई जापानी, कोई जर्मन, कोईफ्रेंच, कोई इटेलियन, जो जिसके दिल में आए। पचास भाषाएं तो कम से कम बोलने वाले लोग अभी हैं। कम्यून बनते-बनते कम से कम सौ भाषांए बोलने वाले लोग तो हमारे पास होंगे ही। मजा आ जाएगा! ऐसा सत्संग कभी संसार में हुआ ही नहीं होगा। जो भी एक दफा उस सत्संग में पहुंच जाएगा, बेहोश ही होकर लौटेगा। होश-हवास खो देगा। अगर जिंदा लौट आए तो बहुत। बेहोश हो जाए, वह तो ठीक; मगर जिंदा लौट आए, वह भी बहुत।
अब यह रंजन को देखो, इसको गुजराती में प्रश्न पूछने का सूझा है। मगर प्यारा प्रश्न पूछा है। इसको जवाब पंजाबी में चाहिए। संत महाराज, मुझ पर कृपा करो और इसको जवाब दो।

तीसरा प्रश्न: भगवान,
आप सांत्वना का विरोध करते हैं तो क्या पुनर्जन्म भी एक प्रकार की सांत्वना ही नहीं है? जो कुछ है बस यही जन्म है, इसके बाद कुछ भीनहीं है-इस विचार से यह विचार कि आत्मा अमर है, शरीर ही नष्ट होता है, हम नया जन्म लेंगे, इस दुनिया में हमें वापिस आना है--ऐसा सोचने से कुछ राहत और तसल्ली महसूस होती है।

प्रेम वीतराग!
अज्ञान में तो तुम जो भी मानो, सभी सांत्वना है। परमात्मा भी सांत्वना है, मोक्ष भी सांत्वना है, आत्मा की अमरता भी सात्वंना है, पुनर्जन्म भी सांत्वना है। अज्ञान में तो तुम मानते ही इसलिए हो कि तुम्हारे भीतर भय है, घबड़ाहट है, चिंता है। उस चिंता को कैसे छिपाओ? उस भय को कैसे दबाओ? उस घबड़ाहट को कैसे मिटाओ? ये सब अच्छे-अच्छे शब्द, ये प्यारी-प्यारी धारणाएं तुम्हें सहारा देती हैं। ये विश्वास कम से कम चलने योग्य तुम्हें बल दे देते हैं। कम से कम जिंदगी में घसिट तो लेते हो! नृत्य तो इनसे पैदा नहीं हो सकता, क्योंकि तुम लाख विश्वास करो, भीतर तो तुम जानते ही हो कि मुझे पता नहींं है।
तो सांत्वना ऊपर ही ऊपर रहेगी, लिपी पुती रहेगी। जैसे कब्रों को कोई खूब खूबसूरती से लीप दे पोत दे, मगर है तो कब्र ही, भीतर तो सड़ी लाश है। जीसस ने बहुत बार कहा है कि तुम्हारी मान्यताएं कब्रों की तरह हैं, जिन पर सफेदचुना पोत दिया गया है, जो देखने में दूर से चमकती हैं, चांदनी रात में उनकी चमक देखते बनती है! मगर भीतर क्या है? अस्थि-पंजर हैं और कुछ भी नहीं! यही बात नहीं है सांत्वना-पुनर्जन्म; तुम जो भी मानते हो अज्ञान में, सभी सांत्वना है। क्योंकि तुम अशांत हो और अशांत को कुछ न कुछ सहार चाहिए। कहते हैं, डूबते को तिनके का सहारा। अब तिनके से कोई बचता नहीं है। सब जानते हैं तिनके से कोई नहीं बच सकता। लेकिन डूबते को तिनके का सहारा। तिनका भी मिल जाए तो वह सोचता है शायद बच जाऊं। "शायद" भी मन को राहत देता है।
मौत घबड़ाती है सभी को, इसलिए तो दुनिया में इतने लोग आत्मा की अमरता कोमानते हैं। इससे तुम मत समझ लेना कि इतने धार्मिक लोग हैं दुनिया में। इतने धार्मिक लोग होते दुनिया में तो यह पृथ्वी स्वर्ग हो गयी होती। और यह भी तुमने गौर किया कि जितने कायर लोग होते हैं वे सभी आत्मा की अमरता में मानते हैं! इस देश से कायर तुम देश खोज सकोगे कहीं? हजारों साल तक गुलाम

रहा यह देश और आत्मा की अमरता में मानता है। आत्मा की अमरता में मानने वाले लोंगो को कोई गुलाम बना सकता है? क्या मिटा लोगे जिसकी आत्मा अमर है उसका तुम? शरीर छीन लो तो छीन लो, मगर वह अपनी स्वतंत्रता तो नहीं दे देगा। लेकिन हजारों वर्ष तक यह मुल्क गुलाम बना रहा। और कोई भी छोटी-मोटी कौमें आईं और इसको गुलाम बना लिया। तुर्क आए, मुगल आए, हूण आए, अंग्रेज आए, पुर्तगाली आए-जो आया। जो नहीं आए, उनकी गलती। आते तो वे भी हमको गुलाम बनाते। जिसने भी आने की मेहनत उठायी, हम उसी के गुलाम बनने को तैयार थे। और आत्मा की अमरता को मानने वाले ये धार्मिक लोग, जो कहते हैं आत्मा मरती ही नहीं, कभी नहीं मरती! अरे यह देह ही नश्वर है, आत्मा तो अविनश्वर! यह देह तो मिट्टी है, आत्मा जो चैतन्य है! आत्मा तो परमात्मस्वरूप है! देह तो आज है, कल नहीं है: मिट्टी का घड़ा है, टूट ही जाएगा। और भीतर जो आकाश है इसके, वह तो कभी फूटने वाला नहीं ऐसे बड़े-बड़े ज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी-इनको गुलाम बनाया जा सका?
मैं इसमें कारण देखता हूं। यह कायरों की कौम हो गई। यह कमजोरों की कौम
हो गई। तुम्हारी आत्मा का भरोसा तुम्हारे आध्यात्मिक अनुभव पर आधारित नहीं है, तुम्हारे भय पर आधारित है। तुम डरे हुए लोग हो। तुम घबड़ाए हुए लोग हो। तुम भयभीत हो। तुम मानना चाहते हो कि आत्मा अमर है--दो कारणों से। एक तो मौत तुम्हें खूब घबड़ा रही है। इतना दुनिया में कोई मौत से नहीं घबड़ाया हुआ। लोग कहते हैं: जब आएगी तब देख लेंगे। उनमें कम से कम तुमसे ज्यादा जान है। कहते हैं कि जब आएगी तब देख लेंगे। अभी तो आयी नहीं। उनको तुम कहते हो-नास्तिक, भौतिकवादी, पदार्थवादी। तुमने न मालूम कौन कौन से निंदा के शब्द खोज रखे हैं! सच बात इतनी है कि तुम कायर हो और वे कायर नहीं हैं। मगर अपनी कायरता को तुम बड़े अच्छे शब्दों में छिपाते हो।
पांच हजार साल में तुमने एक ही तो काम किया है--अच्छे अच्छे शब्दों में अपने को छिपाने की कला तुमने सीखी है। तुम इसमें बड़े निष्णात हो गये हो। तुम महात्मा हो गये हो। इस कार्य में तुमने बड़ी सिद्धि पा ली है। इसमें एक ही तो सिद्धि है तुम्हारी! सारी दुनिया पापी है, एक तुम्हीं महात्मा हो! और कारण? कारण, क्योंकि तुम आत्मा की अमरता मानते हो। तुम परमात्मा को मानते हो। ये लोग परमात्मा को नहीं मानते। अरे ये सब भौतिकवादी हैं!
मगर तुम गौर से देखो, उन भौतिकवादियों ने जिंदगी को सुंदर बनाने के लिए सब कुछ किया। तुमने क्या किया? तुम्हारे पास आज जो भी कुछ है, वह भी उनके कारण है। अगर तुम्हारे पास रास्ते हैं, तो उनके कारण। तुम्हारे पास रेलगाड़ी है तो उनके कारण। अगर हवाई जहाज है तो उनके कारण। अगर कारखाने हैं तो उनके कारण। अगर मशीनें हैं तो उनके कारण। जो कुछ तुम्हारे पास है, भौतिकवादियों के कारण है। और तुम्हारे पास अपने कारण क्या है? बस यही थोथे शब्द हैं तुम्हारे पास।
और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ये बातें गलत हैं। यह खयाल रखनां मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आत्मा अमर नहीं है, यह ध्यान रखना। आत्मा निश्चित अमर है, लेकिन तुम्हारी मान्यता झूठी है। मान्यताएं झूठी होती हैं, अनुभव सच्चे होते हैं। बुद्ध जब कहें तो समझना कि सच बात है। महावीर जब कहें तो समझना कि सच बात हैं। महावीर जब कहें तो समझना कि सच बात हैं। नानक जब कहें तो समझना सच बात हैं। कबीर जब कहें तो समझना कि सच बात है। लेकिन तुम्हारी बातों में क्या रखा है!
मेरे गांव में एक कबीरपंथी महंत थे। कबीरपंथियों का एक अड्डा था उनका--एक बड़ा पुराना अड्डा। स्वामी साहबदास उनके महंत थे। मैंने दुनिया में बहुत तरह के बोलने वाले लोग देखे, मगर उन जैसा बोर करने वाला नहीं कोई देखा। वे अद्वितीय थे! उस कला में वे ऐसे पारंगत थे किसी का भी सिर खा जाएं। जिसके पीछे पड़ जाएं, उसको मानना ही पड़े, स्वीकार ही करना पड़े--सिर्फ इस वजह से कि उनसे छुटकारा पाने का और कोई उपाय नहीं।
मेरे पिता से उनकी दोस्ती थी, सो अक्सर मेरे घर आते थे वे। और वे हमेशा आत्मा अमर... और मैं भूत प्रेत से नहीं डरता! मैं सुन-सुन कर थक गया उनकी यह

बकवास कि भूत प्रेत से नहीं डरता, और भूत प्रेत कुछ भी नहीं, और आत्मा अमर है और मैं क्यों भूत-प्रेत से डरूं!
मेरे मकान के पीछे आंगन में एक नीम का वृक्ष था और पास से एक गली गुजरती थी, जिससे वे गुजरते थे। एक रात मैंने कहा कि अब इनका सिद्धांत देख ही लेना चाहिए। सो मैं नीम पर चढ़ कर बैठ गया। एक खाली पीपा ले लिया। और जब वे नीचे आए तो जोर जोर से कुछ जंतर-मंतर पढ़ रहे थे। वह गली सन्नाटे से भरी थी, अंधेरे में थी। तब वहां बिजली भी नहीं थी और उस गली में कोई लालटेन भी नहीं लगी थी म्यूनिसिपल की तरफ से। वहां से जो भी निकलता था, अक्सर धार्मिक हो जाता था। कोई रामराम कहता हुआ निकलता, कोई जय बंसीवाले बाबा की, कोई कुछ कोई कुछ! वहां घबड़ाहट लगती थी। और उस नीम की बड़ी ख्याति थी कि उस नीम में भूत-प्रेत हैं।
मैं उसके ऊपर बैठ गया। वे लालटेन लिए चले आ रहे थे। मैंने पहले तो वह डब्बा बजाया। जैसे ही मैंने डब्बा बजाया, वे एकदम चौंक कर खड़े हो गये। अब जाना तो उनको था ही। कब तक खड़े रहते! जोर जोर से मंतर पढ़ा, कुछ जादू-मंतर मेरी तरफ फेंका। उनने देखा। अंधेरे में कुछ दिखायी तो पड़े नहीं। जैसे ही वे कदम बढ़ाएं, मैं डब्बा बजा दूं। फिर तो वे चिल्ला कर बोले: "तू कौन है, भूत है प्रेत है, कौन है?" मैं कुछ बोलू न, बस डब्बा बजा दूं, जब वे पूछें डब्बा बजा दूं। उनकी हिम्मत टूटती गयी। मगर उनको निकलना तो था ही, आखिर अपने आश्रम पहुंचना है। और बिना वहां से निकले वे पहुंच सकते नहीं थे। और कोई रास्ता नहीं। सो उन्होंने हिम्मत करके दौड़ने की कोशिश की। जब वे दौड़े, मैंने डब्बा गिरा दिया। डब्बे का गिरना था कि उनके हाथ से लालटेन छूट गयी। लालटेन गिरी वे गिरे, मैं ऊपर से उनके ऊपर कूद पड़ा। फिर तो क्या चीख-पुकार उन्होंने मचायी कि अरे बचाओ, अरे मारा गया! शोरगुल में मैं उनकी लालटेन और डब्बा ले भागा। और लोग आ गये, उनको उठाया कि क्या हुआ साहबदास जी? उन्होंने कहाः "कुछ हुआ नहीं। कुछ पता नहीं, पैर फिसल गया क्या हुआ।" उन्होंने बातें बनायीं। फिर वे मेरे पिता के पीछे पड़े रहते कि यह नीम का झाड़ कटवा दो। जब भी वे भूत-प्रेत की बात करते या आत्मा की अमरता की कि मैं किसी से नहीं ड़रता, तो मैं कहता लालटेन, डंडा! वे एकदम चुप हो जाते। मेरी तरफ घूर-घूर कर देखते। इसको लालटेन और डंडे का कैसे पता हैं। और उनका चुप हो जाना... और मेरे पिता भी सोचते कि बात क्या है, जब भी यह लालटेन और डंडा कहता है तब स्वामीजी एकदम चुप हो जाते हैं।
आखिर एक दिन साहबदास जी से नहीं रहा गया। कहा: "क्या लालटेन, क्या डंडा? क्या बार-बार लालटेन और डण्डा लगा रखा है? जब भी मैं ब्रम्हज्ञान की बात करता हूं, तुम लालटेन और डंडा!"
मैनें कहाः "जाऊं?" सो मैं तो रखे ही हुआ था वह। मैं उनकी लालटेन ले आया, टूटी-फूटी वह लालटेन उनकी दुनिया जानती थी। और डण्डा ले आया। मैंने कहा: "ये कहां से आए? और झाड़ पर कौन डब्बा बजा रहा था? वह मैं ही हूं! और अब तुम इस घर में भूल कर भी "भूत-प्रेत से नहीं डरता हूं", यह बात नहीं करना। यह बकवास बंद करो। और नीम नहीं कटेगी, क्योंकि उस नीम से मुझे और लोंगो को भी रास्ते पर लगाना है।"
मगर मेरे पिता ने वह नीम कटवा दी। उन्होंने देखा कि यह और न मालूम किस-किसको डरवाए, किसको गिरवा दे, किसी का हाथ-पैर टूट जाए, कुछ हो जाए। उस नीम को काटने वाला न मिले। कौन काटे, क्योंकि उसकी तो बड़ी अफवाह उड़ चुकी थी। और जब से साहबदास जी गिरे थे... । आखिर वे मुझसे बोले... मेरे पिता मुझसे बोले कि तू ही किसी को ढूंढ़ कर ला, यह नीम को कटवाना है। मगर कोई काटने को राजी नहीं।
मैंने कहा: "कोई काट भी नहीं सकता मेरे बिना उसको। जो भी काटेगा उसको मैं सताऊंगा।"
मगर साहबदास का अध्यात्म-ज्ञान उस दिन से बंद हो गया। वह उन्होंने मेरे घर ही आना बंद कर दिया। जब तक मैं अपने गांव रहा, वे नहीं आते-जाते थे। जब मैं चला गया विश्वविद्यालय तब उनका फिर अध्यात्म ज्ञान शुरू हो गया। जब भी छुट्टियों में मैं आता, मैं उनसे मिलने जाता कि कहिए साहबदास जी, कैसा चल रहा है? कहते: "सब ठीक चल रहा है!"

मैंने कहाः "है कोई नीम को काटने वाला? कोई काटने वाला मिल नहीं सकता! कहां गयी तुम्हारी आत्मा की अमरता और ब्रह्मज्ञान और कबीरदास की साखियां? सब पर पानी फिर गया! इस जरा से डब्बे ने! खाली डब्बा था। मगर सब चौपट हो गये एकदम तुम!"
ये जो भयभीत लोग हैं, कायर लोग हैं, यह बातें बड़ी ऊंची करते रहते हैं। इनकी ऊंची बातें इनके भीतर कुछ छिपाने का आयोजन है।
तुम्हारे महात्मागण संसार की निंदा करते हैं-सिर्फ इसलिए कि संसार
का आकर्षण मन में है। संसार को गालियां देते हैं, स्त्रियों को गालियों देते हैं--सिर्फ इसलिए कि स्त्रियों का आकर्षण मन में है। वही उनको सता रही हैं।
तुम पूछते हो प्रेम वीतराग: "आप सांत्वना का विरोध करते हैं।" निश्चित विरोध करता हूं! "तो क्या पुनर्जन्म भी एक प्रकार की सांत्वना ही नहीं है?" तुम्हारे लिए यह सांत्वना है, मेरे लिए नहीं। इस भेद को तुम ख्याल में ले लो। मेरे लिए पुनर्जन्म एक अनुभव है, एक सत्य है। और मैं चाहूंगा कि तुम्हारे लिए भी अनुभव बनना चाहिए, सत्य बनना चाहिए। तुम्हारे लिए तो आत्मा भी सिर्फ एक बकवास है। तुम्हें पता ही नहीं कुछ। कभी भीतर गये नहीं, कभी अपने से पहचान नहीं हुई, कभी अपने को जाना नहीं। तुम क्या आत्मा की बातें करोगे! गीता पढ़ ली तो तुम समझे कि आत्मा का अनुभव हो गया? उपनिशद में कहा हुआ है अहं ब्रम्हास्मि, सो तुम भी दोहराने लगे रोज रोज अहं ब्रम्हास्मि! सो दोहराते दोहराते यह भ्रांति तुमको होने लगी कि मैं भी ब्रम्ह हूं।
यह सब भ्रम है, ब्रह्म वगैरह कुछ भी नहीं। अहं ब्रह्मास्मि! तुमको पता नहीं है अभी।
और लोगों को सांत्वना की जरूरत है, सत्य की जरूरत नहीं। क्योंकि सत्य
को पाने के लिए श्रम करना पड़ता है, सांत्वना मुफ्त मिल जाती है।
किसी के घर कोई मर जाता है, तब तुम देखो वहां क्या ज्ञान-चर्चा छिड़ती है! मरघट पर कभी गये? लोग मरघट पर ले जाते हैं किसी को, वहां देखो क्या ब्रह्मचर्चा छिड़ती है! गांव भर के बदमाश, लुच्चे-लफंगे सब ब्रह्मचर्चा करते हैं वहां, कि आत्मा अमर है, अरे बेचारा मुक्त हो गया संसार से, जाल-जंजाल से, भवसागर से! अच्छा ही हुआ मुक्त हो गया। संसार में रखा ही क्या है! किसने क्या पा लिया है! यह तो दुख की गांठ है, कट गयी।
मैं भी जाता था मरघट। मुझे मरघट जाने का बचपन से शौक रहा-कोई भी मरे, जिंदगी में मेरी उससे कोई पहचान भी न रही हो, न दोस्ती न दुश्मनी।
दुनिया में तीन ही तरह के तो लोग होते हैं। एक तो दोस्त, जो कभी भी दुश्मन हो सकते हैं और अक्सर दुश्मन हो जाते हैं। और दूसरे संबंधी, जो कि जन्मजात दुश्मन होते हैं; उनको तो दुश्मन होना पड़ता नहीं कभी। बस ये तीन ही तरह के तो लोग होते हैं। सच पूछो तो दो ही तरह के लोग: एक दुश्मन, जो किसी कारण से दुश्मन; और एक अकारण दुश्मन, संबंधी। और तीसरे दोस्त, जो दुश्मनी की तैयारी कर रहे हैं। मैं इसकी फिकीर ही नहीं करता था-कौन मरा। जो भी मरे, मुझे तो मरघट जाना हैं, क्योंकि मुझे इसमें ज्यादा रस था कि लोग वहां क्या बातें कर रहे हैं! बड़ी मजे की बात, वहां लोग एकदम ज्ञान की बातें छेंड़े! पीठ किए बैठे हैं, लाश जल रही है और वे ज्ञान की बातें कर रहे हैं। वे अपने को भी समझा रहे हैं, जो मर गया उसके घर वालों को भी समझा रहे हैं। और यही काम जब उनके घर कोई मर जाता है तो दूसरे करते हैं। यह काम सभी को करना पड़ता है। एक दूसरे को राहत दिलाना, यही तो समाज का काम है, यही तो कृत्य है।
युद्ध में एक व्यक्ति मारा गया। युवा था अभी। उसके पिता बहुत दुखी थे। मुल्ला नसरुद्दीन, जिनका काम ही सबके साथ सहानुभूति प्रगट करना है, उनके घर गये। मातम छाया हुआ था सारे घर में। मां रो रही थी, पिता रो रहा था। उस युवक मृतक की पत्नी रो रही थी, बच्चे रो रहे थे। एक ही बेटा था-घर का दीया बुझ गया था! हाथ की बुढ़ापे की लकड़ी छूट गयी थी।

नसरुद्दीन को तो कुछ सहानुभूति प्रकट करनी थी, कुछ सूत्र तो होना चाहिए सहानुभूति प्रकट करने का--सो नसरुद्दीन ने पूछा पिता से: "अरे भई, गोली कहां लगी थी?"
रोते हुए बाप ने कहा: "ठीक बायीं आंख के नीचे।"
नसरुद्दीन ने बड़ी सहानुभूति से कहा: "चलो गनीमत रही, कम से कम आंख तो
बच गयी! ईश्वर की बड़ी कृपा थी आपके बेटे पर, आंख के नीचे गोली लगी। आंख में ही लग जाती तो?"
अब बेटा मर ही गया, अब कहां गोली लगी, इससे क्या लेना-देना? मगर कुछ सहानुभूति में तो कहना चाहिए, कहीं से सूत्र तो मिलना चाहिए। "आत्मा अमर है! ईश्वर का प्यारा हो गया तुम्हारा बेटा!" जैसे अब तक प्यारा नहीं था, अभी-अभी प्यारा हो गया, अचानक प्यारा हो गया! और औरों के बेटे क्यों प्यारें नहीं हो रहे, इन्हीं का बेटा क्यों प्यारा हो गया?"
कम उम्र में कोई मर जाए तो लोग कहते हैं कि ईश्वर उनको जल्दी उठा लेता
है जिनको प्यार करता है। तो उनको पैदा ही काहे को करता है? तो जिनको बहुत प्यार करता है उनको पैदा ही नहीं करता होगा, या पैदा करते ही उठा लेता होगा। और जिनको सत्तर-सत्तर अस्सी-अस्सी साल, नब्बे-नब्बे साल जिलाता है, उनसे क्या दुश्मनी है कि मरो जीओ, कि नहीं उठाते सड़ो! जो पक्की उम्र में मरते हैं, सौ साल के होकर, तो कहते हैं कि अहा, क्या ईश्वर का धन्यवाद था, पूरी उम्र पाकर मरा! अरे कोई कच्ची उम्र में मरा?
कोई भी बहाना चाहिए सांत्वना के लिए। लेकिन इन सारी बातों से जीवन में कोई रूपांतरण तो नहीं होते। हां, लीपी-पोती हो जाती है। ऊपर-ऊपर रंग-रोगन हो जाता है। और हमारा सारा धर्म, जिसका हम बहुत शोरगुल मचाए रखते हैं, और क्या है? हमारा सारा धर्म इसी तरह का है।
मेरी चेष्टा यहां है कि तुम्हें विश्वास न दूं, तुम्हें अनुभव दूं। इसलिए मैं नहीं कहता कि मैं जो कह रहा हूं उस पर विश्वास करो। मैं कहता हूं : "मैं जो कह रहा हूं, उसका अनुभव हो, फिर विश्वास की जरूरत ही नहीं होती।
अनुभव काफी है। विश्वास की जरूरत तो उन्हीं को होती है, जिनको अनुभव नहीं।
और जिनको विश्वास है उनको अनुभव नहीं। और जिनको अनुभव है उनको क्या करना विश्वास का? विश्वास तो थोथा ही होता है। ज्ञानी को विश्वास नहीं होता। ज्ञानी जानता है।
तुमसे कोई यह तो नहीं पूछता कि सूरज पर विश्वास है या नहीं? कोई नहीं पूछता। कोईझगड़ा भी खड़ा नहीं करता। कोई यह भी नहीं कहता कि "मुझे विश्वास नहीं है सूरज पर, कि हम तो नास्तिक हैं! कहां है सूरज, हम नहीं मानते।" सब मानते हैं, क्योंकि सबको दिखाई पड़ रहा है। जिस दिन परमात्मा भी तुम्हें इस तरह अनुभव हो, उस दिन विश्वास का सवाल नहीं उठता। तब तक तो सभी सांत्वनाएं हैं।
और सांत्वना से सावधान रहना। यह जहर है सांत्वना। यह नद्ध की दवा है, जिसको लेकर पड़ रहो, राहत मिली जाती है, मगर क्रांति नहीं होती। और क्रांति चाहिए, राहत नहीं। राहत तो बहुत हो चुकीं कितने जन्मों से तो राहत ही राहत में जी रहे हो! यह जन्म भी यूं ही गवां दोगे।

एक कण भी अपने अनुभव का काफी है; पूरे हिमालय जैसे पहाड़ का विश्वास भी
एक कण अनुभव से छोटा है। एक बूंद अनुभव काफी है। पुरे सागर के विश्वास से ज्यादा बड़ा है एक बूंद अनुभव, क्योंकि एक बूंद अनुभव भी मुक्तिदायी है। तुम्हारा सत्य ही तुम्हें मुक्त करेगा; किसी दूसरे को सत्य तुम्हें मुक्त नहीं कर सकता है।

चौथा प्रश्न: ओशो, एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि जैसे आप बैठते हैं ठीक वैसे ही पूरे दो घंटा बैठे रहते हैं। आपके शरीर का कोई अंग हिलता ही नहीं, केवल एक हाथ हिलता है। और हम पांच मिनिट भी शांत नहीं बैठ पाते।

अमृत कृष्ण! वह एक हाथ भी तुम्हारी वजह से हिलाना पड़ता है। तुम्हारी अशांति के कारण। नहीं तो उसको भी हिलाने की कोई जरूरत नहीं है। तुम अगर शांत बैठ जाओ तो वह हाथ भी न हिले।
तुम्हारा मन अशांत है तो उसकी प्रतिछाया शरीर पर भी पड़ती है। तुम्हारा शरीर तो तुम्हारे मन के अनुकूल होता है; उसकी छाया है।
आनंद ने बुद्ध से पूछा है कि आप जैसे सोते हैं, जिस करवट सोते हैं, रात
भर उसी करवट सोए रहते हैं! आनंद कई रात बैठ कर देखता रहा--यह कैसे होता होगा! स्वाभाविक है उसकी जिज्ञासा। उसने कहा: "मैंने हर तरह से आपको जांचा। आप जैसे सोते हैं, पैर जिस पैर पर रख लिया, रात भर रखे रहते हैं। आप सोते हैं कि रात में यह भी हिसाब लगाए रखते हैं कि पांव उसी पर रहे, बदले नहीं। करवट नहीं बदलते!
बुद्ध ने कहाः "आनंद, जब मन शांत हो जाए तो शरीर को भी अशांत रहने को कोई कारण नहीं रह जाता।"
मुझे कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ रही है यूं बैठने में। मगर कोई जरूरत नहीं है। लोग बैठे-बैठे करवटें बदलते रहते हैं। लोग कुर्सी पर बैठे रहते हैं और पैर चलाते रहते हैं, पैर हिलाते रहते हैं; जैसे चल रहे हों! जैसे साइकिल चला रहे हों! बैठे कुर्सी पर हैं, मगर उनके प्राण भीतर भागे जा रहे हैं।
मन चंचल है, मन गतिमान है। उसकी छाया शरीर पर भी पड़ेगी। जब मन शांत हो जाएगा तो शरीर भी शांत हो जाएगा। जरूरत होगी तो हिलाओगे, नहीं जरूरत होगी तो क्या हिलाना है? इसमें कुछ रहस्य नहीं है, सीधी सादी बात है यह।
तुम जरूर अशांत होते हो। वह मैं जानता हूं। पांच मिनट भी शांत बैठना मुश्किल है। असल में पांच मिनट भी अगर तुम शांत बैठना चाहो तो हजार बाधाएं आती हैं। कहीं पैर में झुनझुनी चढ़ेगी, कहीं पैर मुर्दा होने लगेगा, कहीं पीठ में चींटियां चढ़ने लगेंगी। और खोजोगे तो कोई चींटी वगैरह नहीं है! बड़ा मजा यह है! कई दफा देख चुके कि चींटी वगैरह कुछ भी नहीं है, मगर कल्पित चींटीयां चढ़ने लगती हैं। न मालूम कहां-कहां के खयाल आएंगे! हजार-हजार तरह की बातें उठेंगी कि यह कर लूं वह कर लूं, इधर देख लूं उधर देख लूं। मन कहेगा : "क्या बुद्धू की तरह बैठे हो! अरे उठो, कुछ कर गुजरो! चार दिन की जिंदगी है, ऐसे ही चले जओगे? इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण-अक्षरों में नाम लिख जाए, ऐसा कुछ कर जाओ। ऐसे बैठे रहे तो चूक जाओगे। दूसरे हाथ मारे ले रहे हैं।"
तुम्हारा मन भागा-भागा है, इसलिए शरीर भागा-भागा है। और लोग क्या करतें हैं? लोग उल्टा करते हैं। लोग शरीर को थिर करने कोशिश करते हैं। इसलिए लोग योगासन सीखते हैं कि शरीर को थिर कर लें, तो मन थिर हो जाएगा। वे उलटी बात करने की कोशिश कर रहे हैं। यह नहीं हो सकता। शरीर को थिर करने से मन थिर नहीं होता। मन थिर हो जाए तो शरीर अपने से थिर हो जाता है।
मैंने कभी कोई योगासन नहीं सीखे। जरूरत ही नहीं है। ध्यान पर्याप्त है। और शरीर को अगर बिठालने की कोशिश में लगे रहे तो सफल हो सकते हो। सरकस में लोग सफल हो जाते हैं, मगर उनको तुम योगी समझते हो? सरकस में लोग शरीर से क्या-क्या नहीं कर गुजरते! सब कुछ करके दिखला देते हैं। लेकिन उससे तुम यह मत समझ लेना कि वे योगी हो गये। उनकी जिंदगी वही है, जो तुम्हारी है। शायद उससे गयी-बीती हो।
तुम अगर आसन भी सीख गये तो कभी कुछ न होगा। लेकिन अगर भीतर मन ठहर गया
तो सब अपने से ठहर जाता है।

पांचवा प्रश्न: ओशो, एम. एल. ए. बनने का सबसे सस्ता, सरल और टिकाऊ उपाय क्या है?

भैया मदनमोहन अग्रवाल! बस नाम में जरा सा हेर-फेर कर लो! या तो मदनलाल अग्रवाल, या मोहनलाल अग्रवाल कर लो। और फिर अग्रेंजी में शार्ट फार्म करके लिखो--एम. एल. ए. हो जाएगा। यह उपाय सस्ता भी है और सरल भी है। हल्दी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए! साथ ही टिकाऊ भी है, क्योंकि चुनाव लड़-लड़ कर

जो एम. एल. ए. बनते हैं वे बेचारे तो पांच साल बाद फिर एम. एल. ए. नहीं रह जाते, या तो भूतपूर्व हो जाता हैं। उससे तो न ही हुए होते तो ही अच्छा था। एम. एल. ए. के भूत कोई एम. पी. के भूत, कोई मिनिस्टर के भूत! इस समय इतने भूत हैं देश में जिसका हिसाब नहीं। भूत-प्रेतों से ही तो देश सताया जा रहा है। अगर तुमने एक बार नाम बदला तो फिर सदा के लिए एम. एल. ए. हो गये, कोई तुम्हें भूतपूर्व नहीं बना सकता। तुम हमेशा अभूतपूर्व रहोगे! सरल सी तरकीब बता दीः चुनाव लड़ना नहीं, कोईझझंट में पड़ना नहीं; बस नाम बदल लो। और नाम बदलने में क्या लगता है? कोर्ट में चले जाओ। आज ही कर लो, कल पर मत छोड़ना। कल का क्या भरोसा, बचो न बचो, कम से कम एम. एल. ए. हो कर मरो। मर भी जाओगे तो लोग कहेंगे एम. एल. ए. थे, बड़े पहुंचे हुए पुरुष थे!
अब ये मदनमोहन अग्रवाल हैं, अगर यह पांच मिनिट भी शांत बैठना चाहेंगे
तो कैसे बैठेंगे! इनको एम. एल. ए. होना है! इनका चित्त तो दिल्ली की तरफ भागा हुआ है। इनको यहां चैन नहीं पड़ सकती। ये तो दिल्ली जाकर रहेंगे। इनको तो राजधानी चाहिए। ये जहां भी रहेंगे वहीं से इनकी दौड़ जारी रहेगी। बैठेंगे भी तो बैठ नहीं सकते निश्चिंत। निश्चिंत कैसे बैठेंगे--समय गंवा रहे हो! मन कहेगा: "इतनी देर में तो दस-पांच वोटरों से मिल लेते। चुनाव ही लड़ लो।" औरचुनाव लड़ने में करना ही क्या पड़ता है-दांत निपोरना आना चाहिए। बस दांत निपोर कर खड़े हो गये किसी के भी सामने। किसी के भी चरण छुओ, झोली फैलाओ, कि भैया वोट दे देना एक। दे दोगे तो बच जाऊंगा, नहीं दोगे तो मर जाऊंगा। वोट दे देना, नहीं तो अनशन कर दूंगा, सत्याग्रह कर दूंगा, आत्महत्या कर लूंगा! और करना ही क्या पड़ता है? छोटे-मोटे लोंगो से लेकर बड़े-बड़े लोग तक क्या करते हैं?
तुम देखते थे अटलबिहारी वाजपेयी कुछ दिन के लिए विदेश मंत्री हो गये थे, तो भागते फिरते थे एक राजधानी से दूसरी राजधानी। सारी दुनिया में उनका नाम मालूम है क्या हो गया था--दांत निपोर! क्योंकि के दांत निपोरे ही रहते थे। तुमने उनकी तस्वीरें देखीं उस समय की? उनका मुंह देख कर ऐसा लगे कि इस आदमी में जान भी है कि नहीं? इसके प्राण निकल चुके हैं? क्या मामला है? राजनीतिज्ञ होने के लिए वह कला चाहिए। दो आदमियों को मैं जानता हूं:
एक अटलबिहारी वाजपेयी दांत निपोरने में बहुत कुशल थे; एक डाक्टर कर्णसिंह। उनका नाम क्यों डाक्टर कर्णसिंह रखा था, यही समझ में नहीं आता। डाक्टर दांत सिंह रखना चाहिए था। जब तक इंदिरा गांधी ताकत में थीं, तब तक वे हमेशा दांत निपोरे स्वागत के लिए तैयार रहते थे। इंदिरा ताकत के बाहर गयीं कि वे दांत निपोर कर दूसरों के साथ हो गये। दांत निपोरने वालों का कोई भरोसा भी नहीं। चमचे होते हैं ये।
ध्यान रखना, आजकल चमचों के भी दांत होते हैं! चमचों से जरा सावधान रहना। अगर वे पकड़ लें तो छोड़ते नहीं फिर, दांत वाले चमचे हैं! और ऐसा पकड़ते हैं कि चूस ही लेंगे।
अब तुमको भी यही बेचैनी पड़ी है! कुछ और नहीं करना जिंदगी में? कुछ फिजूल के काम में लगना है? एम. एल. ए. होकर क्या करोगे? जो हो गये हैं वे क्या कर रहे है? नाहक कुटोगे-पिओगे, और क्या होगा? जूते वगैरह फेंकने। पार्लियामेंट में जाकर, कुछ दृश्य उपस्थित करना है? कुछ होश की बातें करो कुछ समझदारी की बातें करो। जीवन का कुछ सदुपयोग कर लो। जीवन में कुछ जानने योग्य है, कुछ पाने योग्य है--वह तुम्हारे भीतर है।

आखिरी प्रश्न: ओशो, मैं तो आपको समझने की कोशिश में थक गया। कुछ समझ
में नहीं आता। अब क्या करूं?

रूपचंद! तुमसे कहा किसने कि मुझे समझो? समझने की कोशिश करोगे, थक ही जाओगे। क्योंकि यह काम यहां समझदारों का है ही नहीं। यह काम दीवानों का है, परवानों का है। यह बस्ती मस्तों की है। यहां कोई पंडित बनाने को थोड़े ही मैं बैठा हूं।
और तुम क्या समझोगे अभी? तुम पहले से ही काफी समझे बैठे होओगे। उसी में तालमेल बिठा रहे होओगे। उसी मैं जुगाड़ बिठा रहे होओगे। ऐसा तो आदमी

खोजना मुश्किल है जो पहले से समझे न बैठा हो। बस वहीं से अड़चन शुरू हो जाती है। अज्ञानी को समझना कठिन नहीं है, ज्ञानी को समझना मुश्किल हो जाता है। तुम ज्ञानी मालूम पड़ते हो। तुम छुपे रूस्तम हो--छिपे पंडित!
"अरे चंदूलाल, करोड़पति सेठ धन्नालाल की मौत पर तुम क्यों आंसू बहा रहे हो?" ने पूछा। "क्या वे तुम्हारे करीब के रिश्तेदार थे?"
चंदूलाल ने दहाड़ मार कर रोते हुए कहा: "नहीं थे, इसीलिए तो रो रहा हूं!"
अपनी-अपनी समझ। तुम अपनी समझ लेकर यहां आओगे तो मैं जो कह रहा हूं, वह नहीं समझ सकते।
एक प्रसिद्ध विदेशी डाक्टर अपने विश्वभ्रमण के दौरान भारत आया। मरीजों का तांता लग गया उसके पास। एक मरीज ने अपनी बीमारी बतलाते हुए कहा कि उसे नद्ध नहीं आती। विदेशी डाक्टर ने आश्चर्यचकित होकर कहा: "नहीं- नहीं, ऐसा तो हो ही नहीं सकता। तुम्हें जरूर भ्रम हुआ है। तुमने नद्ध में ही समझा होगा कि तुम्हें नद्ध नहीं आती, क्योंकि मुझे तो अच्छी तरह से मालूम है कि भारत में लोग सोने के सिवा कुछ भी नहीं करते। कोई दूसरी तकलीफ?"
पहले ही से अगर तय करके आया है आदमी, तो वह यह मानेगा ही नहीं कि यह बीमारी तुम्हे हो सकती हैं। असंभव! तो तुमने नद्ध में ही सपना देखा होगा कि मुझे नद्ध नहीं आती।
रूपचंद, अपनी समझ दरवाजे के बाहर छोड़ कर आओ। फिर तुम देखोगे, बातें मेरी बहुत सीधी-साफ हैं। इतनी सीधी-साफ बात कभी कही नहीं गयी है जैसी मैं तुमसे कह रहा हूं। दो टूक है।
नसरुद्दीन तेजी से एक जानवरों को बेचने वाली दुकान में घुसा और दुकानदार से बोला: "महोदय मुझे पांच सौ खटमल और करीबन दो हजार मच्छर चाहिए।"
दुकानदार तो चौंका और बोला कि महोदय, मिल तो जाएंगे, मगर आप उनका करेंगे क्या? नसरुद्दीन बोला जनाब दरअसल बात यह है कि मकान मुझे उसी हालत में छोड़ना चाहिए जैसा कि वह किराए पर लेने के वक्त था।
तो वह खटमल और मच्छर और चुहे सब इकट्ठे कर रहा है। दीवालें खोद रहा है, फर्श में गड्ढे बना रहा है, छप्पर तोड़ रहा है। पूर्व-अवस्था में करके जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान को किसी कारणवश अदालत जाना पड़ा। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि क्या आप बताएंगी, आपकी उम्र क्या है?
गुलजान बोली: "जी यही बाईस साल, कुछ महिने।"
मजिस्ट्रेट ने शक से पूछा: "बाईस साल कुछ महिने! आखिर कितने महिने?" "बाईस साल चौरासी महिने।" गुलजान ने जवाब दिया।"
तुम्हारी धारणाओं का मुझे पता नहीं, कौन सी बातें अड़चन दे रही हैं। लेकिन जरूर कुछ धारणाएं होंगी, अन्यथा मैं कोई कठिन बात कह रहा हूं? सीधी- सीधी बात कह रहा हूं, सरल सी बात कह रहा हूं कि मन को साक्षी-भाव से देखना है, ताकि तुम धीरे-धीरे मन से हट जाओ और साक्षी हो जाओ। मन से हट जाओ और अपनी अवस्था में पहुंच जाओ। अब इससे सरल और क्या है?
मुल्ला नसरुद्दीन का नयी-नयी शादी हुई। सुहागरात की रात गुलजान ने जल्दी से अपने कपड़े उतारे, साज-संवार की, बिस्तर पर लेट गयी। लेकिन नसरुद्दीन खिड़की के पास कुर्सी रख कर बैठा है सो बैठा है। थोड़ी देर गुलजान ने राह देखी।... जीवन भर की प्रतीक्षा, और इसको क्या हुआ है! आखिर उसने कहा कि नसरुद्दीन, बिस्तर पर नहीं आना है? सुहागरात नहीं मनानी है? नसरुद्दीन ने कहा: "वही मना रहा हूं। तू सो जा, बीच में बकवास न कर! मेरी मां ने मुझसे कहा था कि सुहागरात की रात बस एक ही बार आती है, सो खिड़की के पास बैठ कर रात को देख रहा हूं। आत रात सोऊंगा नहीं। यह रात फिर दुबारा नहीं आनी। तू सो जा। तुझसे तो कल मिल लेंगे। मगर यह सुहागरात की रात, यह चांद, ये तारे, ये फिर दुबारा नहीं आने। मेरी मां ने बार बार मुझे जता कर कहा था कि बेटा नसरुद्दीन, सुहागरात एक ही बार आती है। अब तू दखलंदाजी न कर।"

जरूर रूपचंद कुछ अदभुत समझ ले कर तुम यहां आए होओगे। हिंदू की समझ, मुसलमान की समझ, ईसाई की, जैन की, पता नहीं कौन सी समझ! कौन सी किताबें तुम्हारी खोपड़ी में भरी हैं, पता नहीं! कौन-सी दीवालों को पार करके मेरे शब्द तुम्हारे भीतर पहुंच रहे हैं, पता नहीं! मगर दीवारें होगी।
तुम बहरे हो, अन्यथा मैं जो कह रहा हूं इसको समझने के लिए क्या कोई बहुत बड़ी गणित, विज्ञान, कोई बहुत बड़ी कला चाहिए? दो और दो चार होते हैं, ऐसी सीधी बात कह रहा हूं।
रात को होटल का कमरा बहुत ठंडा हो गया था। चंदूलाल एक कम्बल के नीचे ठिठुरा जा रहा था। तो उसने सोचा कि एक कंबल बुलाने के लिए उसने रिसेप्शनिस्ट को फोन किया: "सुनिए मिस, मुझे बहुत सर्दी लग रही है। आपकी बड़ी मेहरबानी होगी अगर आप... "
चंदूलाल पूरी बात भी नहीं कह पाया था कि जवाब मिला: "अच्छा-अच्छा, मैं अभी दो मिनिट के अंदर आपकी खिदमत में पेश होती हूं। तब तक आप कपड़े वगैरह उतार कर तैयार रहिए।"
तुम अपनी समझ छोड़ो। मेरी बातें तो सीधी-साफ हैं।
तुम पूछते हो: "मैं तो आपको समझने की कोशिश करते थक गया।"
अच्छा हुआ थक गये। अगर सच में थक गये हो तो अब छोड़ दो अपनी समझ। अब और न लड़ो। अब गिर जाने दो अपनी समझ को। उसी की वजह से कुछ समझ में नहीं आ रहा है। और अब पूछ रहे हो: "अब क्या करूं?"
जब समझ में ही नहीं आ रहा है तो क्या करोगे? मैं जो कहूंगा वह भी समझ में नहीं आएगा। मैं जो करने को कहूंगा वह भी समझ में नही आएगा। कुछ का कुछ समझ लोगे। पहले अपनी समझ गिरा दो।
यहां तो यूं आओ जैसे निर्दोष बच्चे हो। यहां तो यूं बैठो जैसे कुछ मालूम नहीं! और फिर देखो बातें कैसी सीधी उतर जाती हैं और कैसे हृदय तक चली जाती हैं! फिर देखो, जैसा प्रज्ञा को हुआ है वैसा ही तुम्हें भी हो सकता है--

दिल में एक लहर सी उठी है अभी
कोई ताजा हवा चली है अभी।

शोर बरपा है खाना-ए दिल में
कोई दीवार सी गिरी है अभी।

भरी दुनिया में जी नहीं लगता जाने किस चीज की कमी है अभी।

कुछ तो नाजुक मिजाज हैं हम भी और यह चोट भी नयी है अभी।

दिल में एक लहर सी उठी है अभी कोई ताजा हवा चली है अभी।

आज इतना ही।